भारतीय सिक्के

वासुदेव उपाध्याय, एम० ए०

भारतदर्पण ग्रन्थमाला
(ग्रन्थ संख्या ७)
प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस, प्रयाग

प्रथम संस्करण
सम्वत् २००५

मुद्रक
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्राक्कथन

प्राचीन भारतीय साहित्य के अनेक प्रकार से समृद्ध होने पर भी वास्तविक रूप से उस समय का इतिहास लेखबद्ध नहीं मिलता। यद्यपि प्राचीन इतिहास क्रमबद्ध रूप में उपलब्ध नहीं है तथापि तत्कालीन सामग्रियों को एकत्र कर सुन्दर इतिहास लिखे गए हैं। साहित्य तथा पुरातत्व सम्बन्धी सामग्रियों की सहायता से इतिहास लिखने का प्रयत्न हो रहा है। पुरातत्व विषयक साधनों से भारतीय इतिहास के गौरव की बातें सभी के सामने आ रही हैं। इतिहास के मनन में जहां साहित्य दुर्बोध है उस स्थान पर पुरातत्व उसे स्पष्ट कर देता है। इसलिए भारत की प्राचीन इतिहास की जानकारी के लिए पुरातत्व विषय का अध्ययन अनिवार्य सा हो गया है। मुद्राशास्त्र पुरातत्व का एक प्रधान अंग है जिसके अध्ययन की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हो चुका है। अंग्रेजी भाषा में इस विषय पर संतोष जनक कार्य भी हुआ है। सिक्के इतिहास तैयार करने के एक महत्वपूर्ण उपकरण माने गये हैं। विशेष कर प्राचीन भारतीय सिक्के तो अनेक भाषाओं तथा कई देशों के इतिहास से सम्बन्ध रखते हैं। मुद्रा शास्त्र द्वारा तत्कालीन देश की आर्थिक अवस्था का परिज्ञान ही नहीं होता वरन राजनैतिक तथा धार्मिक विचारधारा का भी पता लगता है। प्राचीन समय में हिन्दू शासकों ने सिक्कों को स्थूल कारणों से निर्माण कराया था परन्तु मुसलमानों ने उसमें धार्मिकता की भावना आरोपित की।

भारतीय भाषाओं में अभी तक मुद्रा विषयक मौलिक निबंध लिखने की कमी रही है तथा इस विषय का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन कर विद्वानों ने लिखने की ओर ध्यान नहीं दिया है। अंग्रेजी में मुद्रा शास्त्र विषय पर प्रकाश डालने वाले अनेक सूची पत्र हैं परन्तु प्रस्तुत ग्रंथ की तरह समस्त राजनैतिक तथा सांस्कृतिक विचारधाराओं को लेकर लिखी पुस्तक की कमी है। श्री राखालदास बनर्जी द्वारा बंगला में लिखित पुस्तक का हिन्दी अनुवाद 'प्राचीनमुद्रा' के नाम से प्रकाशित हुआ है जो मार्ग प्रदर्शक का कार्य करता है। आजकल मुद्रा शास्त्र का अध्ययन बहुत आगे बढ़ गया है। इस कारण एक ऐसी नयी पुस्तक की आवश्यकता थी जो सर्वांगीण होते हुए वैज्ञानिक ढंग से लिखी गयी हो। इस ग्रंथ द्वारा उस अभाव की पूर्ति करने की चेष्टा की गयी है। इसके पढ़ने से सर्वसाधारण को पता लग जायगा कि मुद्रा के अध्ययन से लुप्त इतिहास का उद्धार किस प्रकार से किया जा सकता है। हिन्दी में अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। सम्भवतः प्रथम

पुस्तक होने के कारण लिखने के ढंग में दोष हो। कुछ त्रुटियां तथा अशुद्धियां भी रह गयी थीं जिन्हें सुधार दिया गया है। जहां तक हो सका है विवादग्रस्त विषयों का समावेश नहीं किया गया है। अतः सम्भव है कि किसी विद्वान को मेरा मत मान्य न हो अथवा उन्हें वह अशुद्ध जान पड़े।

इस स्थान पर पुस्तक की योजना पर दो शब्द कहना आवश्यक प्रतीत होता है। प्राचीन भारतीय सिक्कों का निर्माण अनेक परिस्थितियों में होता रहा। बाहरी तथा भीतरी कारणों से उनमें परिवर्तन तथा परिवर्द्धन होते रहे। इस ग्रंथ में उन समस्त विषयो को ध्यान में रख कर ऐतिहासिक युग से लेकर उत्तरापथ तथा दक्षिण भारत में मुसलमानों के विजय काल तक के हिन्दू सिक्कों का विवरण दिया गया है। प्रस्तुत ग्रंथ का अधिक अंश प्राचीन सिक्कों के वर्णन में व्यय किया गया है। इस बात को स्पष्टतया दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि राजनैतिक स्थिति तथा आर्थिक अवस्था का प्रभाव तत्कालीन सिक्के तथा मुद्रानीति पर कितना पडा है। शासकों ने उन परिस्थितियो को सामने रख कर ही अपनी मुद्रानीति स्थिर की तथा विभिन्न प्रकार के सिक्के चलाए। इसी को ध्यान में रख कर प्रत्येक अध्याय के आरंभ में राज्यवंश के सिक्कों से पूर्व उस काल का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। तत्पश्चात् उन शासको द्वारा प्रचलित सिक्कों के आकार, तौल, धातु तथा ढंग का वर्णन किया गया है। स्थान स्थान पर विशेष बातें भी दी गयी हैं। मुसलमान कालीन सिक्कों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। उस समय का राजनैतिक तथा आर्थिक इतिहास का संक्षिप्त विवरण दिया गया है ताकि मुस्लिम सिक्कों की शैली, तौल आदि विषयों को समझने में सहायता मिले। "भारतीय सिक्के" नाम को चरितार्थ करने के लिए मुसलमान और कम्पनी के सिक्कों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है ताकि सर्वसाधारण को भारत में प्रचलित सभी सिक्कों से परिचय हो जाय। इससे यह भी पता लगता है कि मुस्लिम शासक कितना इस्लामी क्षेत्र से तथा कितना भारत से प्रभावित हुए थे। मुसलमान शासकों ने हिन्दू राजाओं के सिक्कों का ही अनुकरण किया और अपने धर्म के कारण हिन्दू चिन्हों को हटाकर कलमा का प्रवेश किया। आर्थिक अवस्था के कारण उनकी नीति तथा तौल धातु आदि में परिवर्तन होते रहे। अन्यथा कोई आमूल रूप से भिन्नता न आ सकी। इसी तरह मुसलमान रियासतों ने भी मुगल सिक्कों का अनुकरण किया और उसी तरह के सिक्के वहां चलाए गये। उनमें कुछ भी नवीनता न होने के कारण रियासती सिक्कों का वृतांत अत्यन्त सूक्ष्म रूप में दिया गया है। कम्पनी के शासनकाल में उसके अधिनायकों ने मुगल बादशाह

शाहआलम द्वितीय के सिक्के में थोड़ा परिवर्तन कर यंत्रद्वारा सिक्का तैयार करने की प्रथा निकाली। उनके द्वारा प्रचलित सिक्के कम्पनी की जीवन कथा तथा कूटनीति पर प्रकाश डालते हैं। इन सब बातों के विवरण में कहां तक सफलता मिली है यह विज्ञ पाठक ही बतला सकते हैं। यह ग्रंथ अर्द्ध पारिभाषिक शैली को ध्यान में रख कर लिखा गया है ताकि साधारण पढ़े लिखे लोग भी इससे लाभ उठा सकें। इन सिक्कों के ऐतिहासिक वर्णन में मुद्रा सूचीपत्रों के पृष्ठों के संकेत किसी प्रकार सहायक न होते अतः उनके उल्लेख मे कोई विशेष लाभ दिखलाई न पड़ा। इस कारण जान बूझ कर पृष्ठों के नीचे टीका तथा निर्देश आदि को छोड़ दिया गया है। उनकी अनुपस्थिति से विषय के समझने मे किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं होता।

पूरे ग्रंथ को पंद्रह अध्यायों में विभक्त किया गया है। मुख्य विषय पर आने से पूर्व सिक्कों के अध्ययन से जितनी बातें ज्ञात हो सकती हैं उन सब का सम्बन्धित विवरण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। इस विषय-प्रवेश में सिक्कों के विकास पर एक दृष्टि डाली गयी है। राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से सिक्कों के अध्ययन से जो महत्वपूर्ण बातें ज्ञात हो सकी हैं उन सब का समावेश प्रथम अध्याय मे किया गया है। आर्थिक, साहित्यिक तथा धार्मिक दृष्टि से सिक्कों का अध्ययन सर्व प्रथम बार इस ग्रंथ में मिलेगा। उसके पश्चात भारत मे प्रचलित सिक्कों का ऐतिहासिक वर्णन कालक्रमानुसार किया गया है। भारत में यूनानी राजाओ के सिक्को को विदेशी सिक्को का नाम दिया गया है और तत्पश्चात उनके अनुकरण पर जो सिक्के बनने लगे उन सब का क्रमशः विवरण देने का प्रयत्न किया गया है। यों तो प्रत्येक अध्याय में अमुक वंश का संक्षिप्त इतिहास भी मिलेगा परन्तु उनकी विशेषताओ और अन्य ऐतिहासिक वृतांत को भी सम्मुख रखने का प्रयास किया गया है। गुप्तकाल मे भारतीय संस्कृति की उन्नति के द्योतक सिक्के भी हैं जिन्हे साम्राज्य के उत्कर्ष काल मे गुप्त नरेशों ने नये ढंग से तैयार कराया था। इस तरह कुमारगुप्त के राज्यकाल में चौदह प्रकार के सिक्के बनते रहे। इस बात को ध्यान में रखकर उनके प्रत्येक ढंग का पृथक पृथक वर्णन दिया गया है। प्राचीन ढंग का ही मध्यकालीन नरेश भी किसी न किसी रूप में अनुकरण करते रहे। उनका प्रभाव मुस्लिम सिक्कों पर भी दिखलाई पड़ता है। दसवें तथा ग्यारहवें अध्याय में मुसलमान कालीन इतिहास तथा आर्थिक अवस्था का संक्षिप्त परिचय और बाद में मुस्लिम शासकों के सिक्को का वर्णन किया गया है।

प्राचीन सिक्कों पर जिस ओर राजा की आकृति बनी है उसे अग्रभाग (obverse side) तथा उससे विपरीत यानी दूसरी तरफ (Reverse side) को पृष्ठभाग के नाम से उल्लिखित किया गया है। प्रारम्भ में साधारण जानकारी के लिए ऊपरी भाग, निचला भाग अथवा एक ओर तथा दूसरी ओर आदि शब्दों का प्रयोग भी मिलेगा परन्तु जिस स्थान पर सिक्कों के ढंग या प्रकार का वर्णन है वहां अग्रभाग तथा पृष्ठभाग शब्दों को ही उचित प्रयोग समझ कर रक्खा गया है। मुस्लिम सिक्कों में दोनों तरफ लेख होने के कारण उन शब्दों के स्थान पर एक ओर तथा दूसरी ओर शब्द प्रयोग में लाये गये है।

इस पुस्तक के लिए चित्र संग्रह करने में नयी दिल्ली के सेन्ट्रल एशियन संग्रहालय के अध्यक्ष डा० वासुदेव शरण जी अगरवाल तथा मथुरा संग्रहालय के अध्यक्ष श्री कृष्णदत्त जी वाजपेयी से बड़ी सहायता मिली है। अतएव मैं इन मित्रों का आभार मानता हूं। मैं उन सभी अधिकारी वर्ग का आभारी हूँ जिनकी पुस्तकों की सहायता से चित्र सुलभ हो सके। भरतपुर राज्य के अधिकारी धन्यवाद के पात्र है जिनकी आज्ञा से बयाना ढेर के दो सिक्को का चित्र मुझे मिल सका। मेरे गुरु डा० अलतेकर तथा बम्बई संग्रहालय के अध्यक्ष डा० मोतीचन्द ने अपनी सम्मति तथा सुझाव देकर पुस्तक की प्रगति में सदा योग दिया है जिसके लिए मैं हृदय से कृतज्ञ हूं। पुस्तक की कवर डिजाइन डा० मोतीचन्द ने अपनी देखरेख में तैयार करायी है जिस कारण मैं उनका बड़ा अनुग्रहीत हूं।

इन शब्दों को समाप्त करने से पूर्व मैं अपने पूजनीय भ्राता पं० बलदेव जी उपाध्याय (प्रोफेसर, काशी विश्वविद्यालय) का साधुवाद करता हूं जिन्होंने मेरे जीवन को इस ओर मोड़ा और भारतीय संस्कृति के अध्ययन में लगन पैदा किया। उन्हीं की शुभकामना से यह ग्रंथ समाप्त हो सका है। मेरे अनुज कृष्णदेव जी उपाध्याय (एम० ए०, शास्त्री) आशीर्वाद के भाजन है जिन्होंने पुस्तक के प्रूफ देखने में पर्याप्त सहायता की है। मैं श्री वाचस्पति जी पाठक तथा रायबहादुर ब्रजमोहन जी व्यास को कैसे भूल सकता हूं जिनके सक्रिय सहयोग से ही यह ग्रंथ चित्रों के साथ सुन्दर रीति से छप कर तैयार हो सका है।

प्रयाग
गंगा दशहरा
सं० २००५ वि०

वासुदेव उपाध्याय

विषय-सूची

	विषय	पृष्ठ

	विषय	पृष्ठ
	अवध के सिक्के	२४७—४८
अध्याय १५	भारत में कम्पनी के सिक्के	२४९—२५९
	ईस्ट इंडिया कम्पनी के सिक्के	२४६—२५७
	भारत में पुर्तगाली सिक्के	२५७—२५८
	भारतीय फ्रान्सिसी सिक्के	२५८—२५९

चित्र-सूची

भारत का मानचित्र

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश

सिक्के का क्रमिक विकास

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक नियमों का पालन करते हुए वह अपनी भी उन्नति करता है तथा समाज को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करता है। मानव जाति के इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि प्रारम्भिक समय में वह जंगली जीवन व्यतीत करता था। समाज में स्थिर होकर काम करने की भावना न थी। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करता था। मानव सभ्यता के शुरू में प्रत्येक प्राणी की जरूरतें भी कम रहा करती थीं। उस जंगलीपन की अवस्था में प्रकृति से अपनी आवश्यकता पूरा करता था। चूँकि उसे किसी से विशेष सम्पर्क न था अतः मनुष्य स्वतंत्र रूप से अपना जीवन बीताया करता था। जब तक कि उसे भोजन मिलता रहा और अपने तन को किसी प्रकार ढक लेता था उस समय तक वह संतोषी था। एक परिवार या जाति के रूप में हो जाने पर भी वह परिपूर्ण था। उसका सामाजिक जीवन अधिक विस्तृत न था। उन आदिम निवासियों को जितनी चीज़ों की आवश्यकता पड़ती थी, अपने परिवार के निर्वाह के लिए उनका उत्पादन तथा संग्रह प्रत्येक को करना पड़ता था। परिवार के लोगों ने अपने अपने काम को बाँट लिया था। भोजन, वस्त्र तथा घर आदि जिन चीज़ों की आवश्यकता होती थी, उनका निर्माण तथा संग्रह प्रत्येक प्राणी को करना पड़ता था। समयान्तर में वे जंगली जातियाँ अथवा परिवार एक स्थान पर बस गये और खेती का काम करने लगा। सभ्यता के उस शैशवावस्था में भी मानव समाज में श्रम-विभाग प्रारम्भ हुआ। कोई आदमी खेत में काम करता और अन्न पैदा करता था। कोई कपास बोकर रुई से सूत तथा सूत से वस्त्र तैयार करता था। किसी के जिम्मे मकान या कुटिया तैयार करने का काम सौंपा गया था। कोई लोहे आदि धातुओं से पदार्थ तैयार करता रहा। इस प्रकार परिवार के सभी आदमी किसी न किसी काम में लगे रहते थे। बहुत समय के बाद सुरक्षा तथा सुभीते के लिए बहुत से परिवार मिलकर एक स्थान पर निवास करने लगे। इस युग में कोई व्यक्ति कपड़ा बनाने में दक्ष था तो उसे कपड़ा बुनने का ही काम

उस समूह ने एक बड़े परिवार या जाति का रूप धारण कर लिया था। यदि किसी को खास चीज़ों से प्रेम हो जाता तो सब उस व्यक्ति को उसी कार्य में लगने के लिए सलाह दिया करते थे। इस प्रकार उस युग में श्रम-विभाग से सब लोगों को सुविधा थी। हर एक प्राणी को आवश्यक वस्तुएँ मिल जाती और अधिक परेशानी न उठानी पड़ती थी। परन्तु सभ्यता के विकास से मानव प्राणी की आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं। कुछ विद्वानों का मत है कि जिस समय एक जाति दूसरे स्थान के लोगों से सम्पर्क में आने लगी उसी समय से एक दूसरे की चीज़ों को देखकर इच्छाएँ उत्पन्न हुईं। एक स्थान का परिवार दूसरे की चीज़ों को चाहने लगा। अतएव उस इच्छा की पूर्ति के लिए अपनी किसी चीज़ को उसके बदले में देने का विचार आ गया। इस प्रकार अदल-बदल (barter) का एक नया तरीका समाज में आया जो किसी को पहले ज्ञात न था। इस अदल बदल से दोनों समूहों का लाभ था। आपस में सब जातियाँ एक वस्तु से दूसरी वस्तु को बदलकर अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने लगीं। मुद्राशास्त्र के ज्ञाता सिक्कों के इतिहास का प्रारम्भ यहीं से बतलाते हैं। सिक्कों के क्रमिक विकास या उन्नति की यह पहली सीढ़ी है। यद्यपि अदल-बदल का तरीका बहुत पुराना है और मानव जाति की असभ्य अवस्था का सूचक है परन्तु यह आज भी सर्वत्र किसी न किसी रूप में वर्तमान है। समाज से इसे निकाल बाहर करना कठिन है। भारतवर्ष में तो प्रत्येक कृषक के घर में यह तरीका काम में लाया जाता है। कृषक कपड़ा खरीदकर उसकी कीमत अनाज में दे देता है। किसान की स्त्रियाँ गृहस्थी के सामान खरीदकर अनाज उस व्यक्ति को देती हैं। शाक तरकारियाँ अनाज के बराबर तौल कर देहातों में बेचा जाता है। घर के नौकरों को दिन भर की मजदूरी में अनाज ही दिया जाता है। शहरों में भी औरतें पुराने कपड़े देकर उसके बदले में बरतन अथवा सीसे का सामान खरीदती हैं। गाँवों में गरीब आदमी जब ऋण से लद जाता है तो अपना जानवर देकर कर्ज से मुक्त हो जाता है। ये सब बातें साफ बतलाती हैं कि बीसवीं सदी में भी सभ्यता के शिखर पर पहुँचकर अदल बदल का तरीका समाज में प्रचलित है। एंडर्सन महोदय ने बतलाया है कि भारत क्या अमेरिका ऐसे अपूर्व व्यापारिक देश मे भी वर्तमान समय में अदल बदल का तरीका काम में लाया जाता है। मिश्र देश के सकारा कब्र पर बाजार में इसी तरीके पर चलने वाले लोगों की तसवीरें बनी हैं। जैसा कहा गया है प्राचीन समय में अदल-बदल की तरीके को सर्वत्र काम में लाया गया था। ज्यों ज्यों समाज का कार्य-क्षेत्र बढ़ता गया यही तरीका सब जगह कार्यान्वित किया गया। मानव समाज के प्रारम्भिक व्यापार में भी

बदल बदल के मार्ग को ही सुगम समझा गया। मुद्राशास्त्रवेत्ताओं ने इस तरीके में कुछ कठिनाइयाँ देखीं जिनका कोई उपाय न मिल पाया। पहली कठिनाई यह थी कि किस प्रकार से यह निश्चित किया जाय की बेचने वाले तथा खरीदने वालों की अदल बदल की सामग्री में किसी भी अंश में भेद न हो। उदाहरण के लिए यह कहा जा सकता है कि एक गज कपड़े के लिए पाँच सेर अन्न बिल्कुल ठीक है कम या अधिक। इसका निर्णय करना कठिन था। क्या भाव रक्खा जाय कि अमुक चीज के लिए इतने परिमाण में अन्न दे दिया जाय। दोनों में किस प्रकार का अनुपात स्थिर किया जावे। तीसरी सब से अधिक कठिनाई यह ज्ञात होती थी कि यदि एक व्यक्ति को किसी चीज का कुछ भाग बेच दिया जावे तो अन्य भागों की क्या दशा होगी। अथवा कभी कभी तो अमुक वस्तु का टुकड़ा नहीं किया जा सकता था और बिना आवश्यकता के अधिक माल खरीदना पड़ता था। इन तमाम कठिनाइयों के होते हुए भी अदल बदल के अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं था जिस को काम में लाया जावे। कुछ समय के बाद एक नयी समस्या सामने आयी। जब दो चीजों के मुकाबिले में एक की कीमत अधिक समझी गयी उस समय उनका अदल बदल उचित नहीं समझा गया। इसलिए लोगों ने एक वस्तु को दूसरे से सीधे तौर पर अदल बदल न कर एक तीसरी मध्यस्थ वस्तु को काम मे लाना प्रारम्भ किया जो विनिमय का साधन (Medium of Exchange) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस साधन को सब वस्तुओं की कीमत का मापक (Standard) समझा गया। मानव समाज के इतिहासकारों ने साफ़ तौर से लिखा है कि आदिम मनुष्य साफ पत्थर के हथियार को साधन समझते थे क्योंकि पुराने समय में वह पत्थर हथियार का काम करता था। उसी समय शिकार की वस्तुएँ या चमड़ा भी साधन के रूप में काम में लाया जाता था। योरप की तमाम सभ्य जातियों ने चमड़े को साधन बनाकर अपना काम सिद्ध किया। अमेरिका में भारतीय (Red Indian) अभी रोंयें को काम में लाते हैं। भारतवर्ष में जब यहाँ के निवासी गाँवों में बस गए, खेती का काम करने लगे तो जानवरों को अदल बदल के साधन मान लिया। गाय, भेड़ तथा बकरियाँ चीजों के बदले में दी जाती रहीं। यह सिक्कों के क्रमिक विकास की दूसरी सीढ़ी थी। सीधे तौर पर एक सामान से दूसरे को न बदल कर जानवरों के साधन द्वारा उन वस्तुओं का मूल्य आँका जाता। खरीदने वाला उस चीज के बदले में किसी संख्या में जानवर देता था। यह उसकी इच्छा पर निर्भर न था परन्तु उस वस्तु के पाने का यही एक मार्ग था। इस क्रमिक विकास के दोनों सीढ़ियों में भेद काफी था। प्रारम्भिक अवस्था में एक व्यक्ति अपनी वस्तु का

बिना मूल्य आँके दूसरे को अदल बदल में दे दिया करता था। इसको एक प्रकार का दोनों तरफ का भेंट कह सकते हैं। परन्तु व्यापार तथा बुद्धि की बढ़ती के कारण लोगों ने मूल्य को बिना समझे बूझे अदल-बदल करना रोक दिया। मूल्य-वान वस्तु की इच्छा रखकर कम मूल्य की चीज को कोई बदल नहीं सकता था अतएव किसी प्रकार का साधन ढूँढ़ा गया जिससे इच्छित वस्तु को प्राप्त कर सके। यही साधन विकास की दूसरी सीढ़ी है।

भारतवर्ष में बहुत प्राचीन समय से यह तरीका चला आ रहा था। वैदिक युग में भी अदल बदल का वर्णन मिलता है। पशुपालन तथा खेती के समय में गाय को साधन माना गया। ऋग्वेद में तथा ब्राह्मण ग्रंथों में गाय (साधन) के द्वारा ही वस्तुओं के बिक्री का वर्णन मिलता है परन्तु अन्न भी कभी कभी अदल-बदल में दिया जाता था। ईसा पूर्व हजारवें वर्ष में गाय ही व्यापार तथा विनिमय का साधन समझी जाती थी। संसार के अन्य देशों में भी पहले यही हालत थी। योरप, अमेरिका, मेक्सिको तथा चीन में अनाज विनिमय का साधन समझा जाता था। असभ्य जातियों में मछली, तम्बाकू, नारियल आदि भी साधन के लिए प्रयोग किए जाते थे।

सिक्कों के क्रमिक विकास की तीसरी सीढ़ी उस अवस्था को मानते हैं जब विनिमय के साधन धातुएँ समझी जाने लगीं। सभ्यता की उन्नति में मनुष्यों ने आभूषण को भी अपनाया। धातुओं के प्रचुर प्रचार का यह एक प्रभाव है कि प्रत्येक देशों में स्त्रियों ने मूल्यवान धातुओं को आभूषण के रूप में संग्रह किया। भारत में सोना चाँदी का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। ईसा पूर्व तीन हजार वर्ष पुराने खण्डहरों (हरप्पा तथा मोहं-जो-दड़ो नामक प्राचीन स्थान) में सोने, चाँदी, ताम्बे आदि की वस्तुएँ तथा आभूषण मिले हैं जिससे प्रगट होता है कि भारतवासी आज से पाँच हजार वर्ष से ही इन धातुओं का प्रयोग कर रहे हैं। ऋग्वेद में भी हार आदि आभूषणों का उल्लेख मिलता है। अतएव यह निश्चित है कि भारतवर्ष में धातुएँ भी विनिमय के लिए प्रयोग की जाती थीं। ज्यों समाज में नियम जटिल होते गये लोग अधिक सभ्य कहलाने लगे, उस समय से विनिमय का साधन धातुएँ मानी जाने लगीं। जिस देश में जो धातु अधिक मात्रा में मिलती थी वही साधन बन गयी। भारत में गाय तथा अनाज के बदले में सोना का प्रयोग होने लगा। इस देश में सदा से सोने की अधिकता रही है। किसी चीज को खरीदने वाला उसके मूल्य के बराबर धातु तौल कर उस व्यक्ति को दे देता और चीज खरीद लेता था। जब लोगों को सोना की कीमत अधिक मालूम हुई और थोड़ी मात्रा में तौल कर दिया

आने लगा उसी समय से वे किसी सस्ती धातु को ढूँढ़ने लगे । इस प्रकार सोने के बदले में चाँदी और पीछे ताँबे का प्रयोग होने लगा । व्यापार तथा विनिमय में इस कारण बड़ी सुविधा हुई । इनका (धातु) प्रयोग बढ़ने लगा । यद्यपि अदल बदल के तरीके का अंत न हो पाया था परन्तु सदा इस बात की कोशिश की जाती कि अमुक वस्तु को बेच कर इतनी तौल में धातु मिलनी चाहिए । बेचने वाले व्यक्तिको धातु संग्रह करना सरल हो गया । पहले के विनिमय के साधन में असुविधा थी । धातु के साधन द्वारा संग्रह करना अधिक सुखकर हो गया । बेबिलोनिया में चाँदी का अधिक प्रयोग किया जाता था । ताम्बे सोने की वहाँ कमी थी पर भारत में प्रत्येक धातु का प्रयोग होने लगा । जिस समय समाज में विनिमय के उपकरण-स्वरूप धातुओं का व्यवहार आरम्भ हुआ उस समय सुवर्ण-चूर अथवा आकार रहित धातुपिण्ड का व्यवहार होता था । भारत में कुछ स्थानों पर सुवर्णचूर भी विनिमय में व्यवहार किया जाता था । धातुओं के प्रयोग में साथ यह एक कठिनाई थी कि वह धातु शुद्ध है या नहीं । इसकी परीक्षा तथा तौल में अधिक समय लगता था । अतएव बुद्धिमानों ने विनिमय के लिए किसी नये मार्ग को ढूँढ़ना प्रारम्भ किया । धातु के इन्हीं उपकरण का नाम सिक्का है । यही अंतिम साधन निकाला गया । यही उस विकास की चौथी सीढ़ी है जब व्यापार के सुविधे के लिए धातु के सिक्के तैयार होने लगे । यह साधन स्वतंत्र रूप से लीडिया (एशिया माइनर) भारतवर्ष तथा चीन में प्रारम्भ किया गया । विनिमय के उस उपकरण अथवा साधन को सिक्का कहना शुरू किया गया जो धातु पिण्ड से तैयार किया जाता था । उसके तौल तथा शुद्धता की जिम्मेदारी एक व्यक्ति पर रहती थी । उस पर जिम्मेदार अधिकारी के कुछ विशेष चिन्ह बने रहते थे । वह अधिकारी ठप्पा से उस पर शुद्धता के चिन्ह डालता था तब वह सिक्के के नाम से प्रसिद्ध होता और विनिमय का साधन समझा जाता था । धीरे-धीरे उनकी शकल भी निश्चित कर दी गयी । इसके कारण व्यापार तथा विनिमय में बड़ी ही सुविधा हो गयी । भारत में इस प्रकार के सिक्के ईसा पूर्व ८०० वर्ष से प्रचलित हैं जिनका नमूना आज भी मौजूद है । यों तो साहित्यिक प्रमाणों से सिक्कों का प्रारम्भ बहुत प्राचीन साबित किया जाता है । यद्यपि भारत में सोने की अधिकता थी परन्तु खुदाई में अधिक चाँदी के ही प्राचीन सिक्के निकले हैं । इन सिक्कों पर विभिन्न प्रकार के चिह्न मिलते हैं जो पृथक पृथक व्यक्ति से या संस्थाओं से सम्बन्धित किए जाते हैं । इस तरह समाज में सिक्कों का प्रयोग व्यापार में विनमय का साधन मान कर किया गया । शनैः शनैः उनकी आकृति, चिह्न तथा लेख आदि पर लोगों का ध्यान गया जिससे वे एक सुन्दर रूप में आ गए ।

(२) सिक्के तैयार करनेवाली संस्था

प्रारम्भ में यह बतलाया जा चुका है कि सिक्कों के प्रचलन से पूर्व स्वर्ण-चूर्ण तथा हिरण्य-पिण्ड काम में लाया जाता था। गाय विनिमय के प्रधान साधनों में से समझी जाती थी। संस्कृति तथा व्यापार की उन्नति के साथ सिक्कों का समावेश समाज में किया गया और सभी ने इसका स्वागत किया। भारतवर्ष में सिक्कों के प्रचार के लिए राजा तथा व्यापारी-मण्डल (श्रेणी) दोनों को दिलचस्पी थी। शासक सुव्यवस्था तथा समाज के हित साधन में लगे रहने के कारण उनके जीवन में सुख पैदा करता। व्यापारी गण व्यवसाय तथा क्रय-विक्रय के लिए सिक्कों को आवश्यक समझने लगे। देश की समृद्धि के लिए वाणिज्य की उन्नति परमावश्यक समझी जाती है। इस तरह राजा तथा प्रजा (अधिकतर श्रेणियाँ) सिक्कों के तैयार करने में सम्बन्धित थे। व्यापारियों ने शुद्ध धातु तथा निश्चित तौल के बराबर सिक्कों के तैयार करने की जरूरत देखी। इन सब बातों पर विचार करते हुए यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अमुक प्रकार के सिक्के तैयार करने की जिम्मेदारी किस पर थी ? किस संस्था का यह कार्य था ? उसके क्या अधिकार थे ? जनता के उस कार्य पर शासक का कितना नियंत्रण था आदि प्रश्नों पर विचार करने का प्रयत्न किया जायगा।

भारतीय सिक्के की उत्पत्ति का प्रारम्भिक इतिहास अच्छी तरह से ज्ञात नहीं है। किस व्यक्ति अथवा संस्था ने इनको जन्म दिया, यह ठीक तरह से कहा नहीं जा सकता। विद्वानों का अनुमान है और कुछ सीमा तक ठीक भी है कि व्यापारी संघ (श्रेणी) ने वाणिज्य के सुविधा तथा लेन देन में सरलता के लिए सिक्के सर्वप्रथम तैयार कराए। शासक इस ओर उदासीन था। उसने सिक्के तैयार करने की किसी प्रकार की आज्ञा न प्रकाशित की और जनता द्वारा यह कार्य अधिक समय तक चलता रहा। राजकीय कार्यों में इसकी गणना मौर्य काल से पूर्व नहीं होती रही। यह माना जा सकता है कि जो व्यापारिक श्रेणियाँ (संघ) सिक्के तैयार करने में लगी थी उन्हें शासक का मौखिक आदेश तथा सहानुभूति अवश्य मिलती रही। व्यापार की उन्नति, सिक्कों का प्रचार तथा अन्य सार्वजनिक कार्य की अतीव महत्ता मिलने पर राजा का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। उनके सामने राजा के आवश्यक कार्यों में सिक्का तैयार करने का काम भी उपस्थित हो गया। इसलिए राजा की ओर से सहयोगी संस्था द्वारा नियंत्रण आरम्भ हुआ और अंत में चलकर जनता के हाथों से यह काम हटा लिया गया। राजकीय टकसाल में सिक्के तैयार किए जाने लगे।

ऊपर कहा गया है कि भारत में मौर्य शासकों से पूर्व जनता सिक्के तैयार करती थी। सब से प्राचीन सिक्के जिन्हें पंचमार्क या आहत (Punch Marked Coins) कहते हैं विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा तैयार किए जाते रहे। सम्भवतः राजा की आज्ञा से श्रेणियाँ और सुनार लोग सिक्के तैयार करते थे। पंचमार्क आहत (कर्षापण) सिक्कों के चिह्नों के अध्ययन से विद्वानों ने यही निर्णय किया है कि वे सिक्के जनता की किसी संस्था द्वारा अथवा विशेष व्यक्ति द्वारा तैयार किये जाते थे। पंचमार्क सिक्कों पर ऊपरी चिह्नों का यह अर्थ समझा जाता है कि वे उस संस्था के चिह्न थे जिन्होंने उसे तैयार किया था। जब वे सिक्के समाज में प्रचलित किए गए, उस समय उनकी धातु-शुद्धता की जाँच होती रही। जाँच करने के बाद उस सिक्के पर चिह्न (symbols) लगा दिया जाता था ताकि देखकर सभी उसे शुद्ध समझें। फिर वही सिक्का तीसरी संस्था के पास जाता तो वह भी जाँच करके (शुद्ध धातु है या नहीं) चिह्न लगा देती थी। इस प्रकार सिक्कों के दूसरी ओर वे चिह्न आज भी दिखलाई पड़ते हैं। पंचमार्क सिक्कों पर खुदे चिह्नों (इनका वर्णन आगे के परिच्छेद में किया जायगा) के अध्ययन कर विद्वानों ने सब बातों का अनुमान किया है। परन्तु कोई बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती। चिह्नों को देखकर कोई ऐतिहासिक सत्य का पता नहीं लग सकता और न निश्चित रूप से कोई मत स्थिर किया जा सकता है। सम्भवतः मौर्यकाल से पूर्व पंचमार्क सिक्कों के तैयार करने का भार जनता की किसी संस्था पर हो और राज्य की ओर से पुनः उन पर निशान लगा दिए गए हों। राजा को पहले सिक्के तैयार करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जो उस विषय के विशेषज्ञ थे उनकी सहायता अवांछनीय थी। बैंक तथा व्यापारी मण्डल की सहायता शासक के लिए आवश्यक थी। जब राजा के कर्मचारी इस शास्त्र सम्बन्धी कला (techmic) को समझ गए, उस समय से संस्था की सहायता अपेक्षित न रही और सरकारी टकसाल में सिक्के ढलने लगे।

प्राचीन भारतवर्ष में राजतंत्र तथा प्रजातंत्र दोनों शासन प्रणालियों की स्थिति मिलती है। मौर्य राजा चन्द्रगुप्त ने छोटे-छोटे राज्यों को मिटाकर साम्राज्य की भावना तथा एकराट की सत्ता स्थापित की। इससे पूर्व सारे कार्य केन्द्रीभूत नहीं थे। जनता शासन में काफी भाग लिया करती थी। राजतंत्र में भी सर्वसाधारण जनता का हाथ था। परन्तु मौर्य साम्राज्य की संस्थापना से सब बातें समाप्त हो गईं। शासन सम्बन्धी प्रत्येक आज्ञा केन्द्र से दी जाने लगी। कौटिल्य का अर्थशास्त्र उस समय की राजनैतिक परिस्थिति का विवरण देता है। चाणक्य ने केन्द्री-

भूत की नीति को अच्छी तरह से चलाया। सारे विभाग के अध्यक्ष नियुक्त किये गए जो अपने विभाग का कार्य-संचालन करते रहे। मुद्रानीति को भी चन्द्रगुप्त मौर्य ने हाथों में ले लिया। लक्षणाध्यक्ष (Head of Coinage System) नामक कर्मचारी को मुद्रा विभाग का प्रधान बनाया। उसकी देखरेख में सौवर्णिक टकसालघर का अध्यक्ष बनाया गया और सिक्के तैयार होने लगे। इसका तात्पर्य यह है कि मौर्यकाल से मुद्रानीति शासक के हाथों आ गयी। सिक्के तैयार करना राजा का कार्य माना जाने लगा। इतना होते हुए भी मौर्य सम्राट ने जनता को धातु ले जाकर राजकीय टकसालघर से रुपया ढलवाने की आज्ञा दी थी। कौटिल्य ने ऐसा ही वर्णन किया है कि—सौवर्णिकः पौरजान-पदानां रूप्य सुवर्णमावेश नीभिः कारयेत—कोई व्यक्ति चाँदी सोना देकर टकसालघर से सिक्का बनवा सकता था। परन्तु इस प्रकार के सिक्के कानूनी (legal tender) मुद्रा न समझे जाते थे। इन्हें व्यवहारिकी कहा जाता था और जनता में प्रचलन की आज्ञा थी। वह अवस्था गोरखपुरी ताम्बे के पैसे के सदृश माना जा सकता है। ताम्बे के पैसे सरकारी कर्मचारियों के आँख के सामने से गुजरते थे परन्तु उन्हें सरकारी खजाने में नहीं रक्खा जा सकता। जो मौर्य टकसाल घर में सिक्के तैयार किये जाते उन्हें कोश प्रवेश्य (legal tender) पुकारा जाता था। टामस महोदय ने लिखा है कि प्राचीन समय में बैंक के अधिकारी सिक्के तैयार करने की आज्ञा शासक से प्राप्त करते और राजा को विश्वास दिलाते थे कि उनके सिक्के ठीक तौल तथा शुद्ध धातु के तैयार किए जायेंगे। इस विश्वास के साथ बैंकों को सिक्का तैयार करने की आज्ञा दी जाती थी। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि मौर्यकाल में राजा के सिवाय सार्वजनिक संस्था भी सिक्के तैयार करती रहीं। कौटिल्य के मतानुसार बैंक कर्मचारियों की तरह सरकारी सुनार भी मुद्रा के विशिष्ट पद्धतियों का ज्ञान रखता था—तस्मात् वज्रमणि मुक्ता प्रवाल रूपाणां जाति रूपवर्ण प्रमाण (तौल) पुद्गल (बनावट) लक्षणान्युपलभेत् (अर्थ शा० २।१४)

मौर्य कालीन सिक्कों पर राजकीय चिह्न—सुमेरु पर्वत—मिला है जिसकी प्रामाणिकता सहगौरा ताम्रपत्र वाले चिह्न से सिद्ध की जाती है। नंदों ने भी अपने समय में तौल की प्रणाली निकाली। सम्भवतः उन्होंने भी सिक्के तैयार कराए। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रायः नन्दराजाओं के समय (ईसा पूर्व ४००) से ही मुद्रानीति पर राजा का हस्तक्षेप आरम्भ हो गया था। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य की सलाह से इस कार्य के लिए राजकीय विभाग खोला और राजकीय सिक्के को ही कानूनी सक्का बतलाया। इसका प्रभाव यह पड़ा कि देश-

क्षेत्र में, राजकीय कर या शुल्क (चुंगी) अदा करने के लिए सरकारी सिक्के का व्यवहार होने लगा और अनिवार्य भी था। इस प्रकार शनैः शनैः प्रजा के हाथ से हटाकर यह कार्य सर्वथा राजा के अधिकार का विषय बन गया।

जैसा कहा गया है कि बैंक के अधिकारी सिक्के तैयार करने की अनुमति पा चुके थे जो राजधानी में वणिक्संघ या निगम सभा के नाम से कार्य करते थे। निगम संस्था की सारी कार्यवाही कानूनी तरीके पर चलती रही। उनके तैयार किए गए सिक्के तक्षशिला में मिले हैं जिन पर नेगम लिखा है। यहाँ यह कहना उचित होगा कि सिक्कों पर लेख खुदवाने की परिपाटी भारत में ईसा पूर्व २०० वर्ष से चली। मौर्य सम्राटों ने भी चिह्न के सिवाय लेख नहीं अंकित कराए। अशोक ने शिलाओं तथा स्तम्भों पर अनेक लेख खुदवाया परन्तु सिक्कों पर लेख (legend) अंकित करने की ओर उसका ध्यान न गया। यह प्रथा उससे पीछे चलायी गयी। चूंकि निगम मंच ही नगर की आर्थिक परिस्थिति का संचालक था अतएव उसके चलाए अनेक सिक्के मिलते हैं। छोटे राज्यों के जनपद संस्था के भी सिक्के मिले हैं। राजन्य नामधारी जातियों के सिक्कों पर उनका नाम खुदा मिलता है। इनकी लिपि तथा शैली को देखकर ईसा पूर्व दूसरी सदी के सिक्के माने जाते हैं। इससे पूर्व के सिक्कों पर चिह्नों के द्वारा ही अनेक बातों (स्थान, संस्था आदि के चिह्न) का पता लगता है। मौर्यकाल में जनता के उन्हीं व्यवहारिकी सिक्कों के जाँच करने के लिए रूपादर्शक की नियुक्ति की गयी थी और वह सिक्कों के जाँचने के लिए आठ फीसदी शुल्क लिया करता था। मौर्य-साम्राज्य के अंत हो जाने पर प्रजातंत्र राज्यों को फिर अवसर मिला और स्वतंत्रता के प्रतीक सिक्कों को चलाना आरम्भ कर दिया। मालव, अर्जुनायन, यौधेय, कुणीन्द आदि प्रजा-तंत्र शासकों ने अच्छी तरह सिक्कों को तैयार कराया। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के ऐसे सिक्के बहुत मिलते हैं।

इतिहास यह बतलाता है कि साम्राज्य की भावना अशोक के साथ ही समाप्त हो गयी। कई शताब्दियों तक एक राष्ट्र कायम न हो सका। शातवहन दक्षिण भारत में फँसे रहे और कुषाण राजा उत्तर पश्चिम में सीमित रहे। कुषाण वंशी नरेशों ने विदेशी सिक्कों के अनुकरण पर अपनी मुद्रानीति को स्थिर किया परन्तु सोने की धातु का प्रयोग कर इस काम में जान भर दी। सम्भवतः उस समय से सिक्के तैयार करने का सारा भार शासक पर ही था। कुषाण राजाओं ने स्वयं सिक्कों को तैयार कराया और उपाधि सहित अपना नाम खुदवाया। कनिष्क के समय में परिस्थिति बदल गयी थी। पेशावर नामक स्थान अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्ग में स्थित था। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राशास्त्र में राजा के सिवाय जनता के चलाए सिक्के

२

कानूनी मुद्रा नहीं माने जा सकते थे। यही कारण है कि कुषाणों के समय से केवल राजकीय टकसाल में ही सिक्के ढाले जाने लगे। गुप्त सम्राटों के प्रादुर्भाव के समय से भारतीय राजनीति में अनेक परिवर्तन हुए। साम्राज्य स्थापित किया गया और सांस्कृतिक उन्नति चरम सीमा पर पहुँच गयी। सिक्कों से विदेशीपन को मिटाकर भारतीय ढंग पर लाया गया। उस समय के असंख्य सिक्के इस बात को प्रगट करते हैं कि सम्राट मुद्रानीति के परिचालक थे। राजकीय विभाग द्वारा सारा कार्य होता था जनता के सहयोग की आवश्यकता न थी। संस्थाओं को ऐसे अवसर न दिये गए जिससे सिक्के तैयार करने की अनुमति राजा को देना पड़े। गुप्तकाल से यह कार्य राजा के हाथों आ गया। इसका मुख्य कारण यही था कि समुद्रगुप्त ने अपने दिग्विजय में सारे प्रजातंत्र तथा छोटे राज्यों को समाप्त कर दिया। उनके राज्य साम्राज्य में मिला लिए गए। गुप्त सम्राटों के सामने कोई सिर न उठा सका। स्वभावतः स्वतंत्रता की देवी राजा के सुपुर्द कर दी गयी। अधीन शासकों के सामने सिक्के तैयार करने का प्रश्न ही न था। सम्राट के सिक्कों को सभी ने कानूनी मुद्रा समझा और अपनाया। गुप्तवंश के अंत हो जाने पर भारतवर्ष के कई टुकड़े हो गए। स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे शासक राज्य करने लगे। मध्य युग के आरम्भ में तमाम स्वतंत्र रियासतों ने सिक्के चलाए। उसका परिणाम जो कुछ भी हो परन्तु सभी को यह मानना पड़ेगा कि ईसवी सन् की तीसरी सदी से सिक्का तैयार करने का कार्य किसी संस्था (संघ) के पास न रहा। राजकीय विभागों का एक अंग बन गया।

(३) भारतीय मुद्रा की प्राचीनता

मुद्राशास्त्र के वेत्ताओं में बहुत समय तक इस विषय पर मतभेद रहा है कि संसार के किस देश मे सर्वप्रथम सिक्का चलाया गया। दूसरा प्रश्न यह है कि उस देश मे वह सिक्का प्राकृतिक रूप से उत्पन्न हुआ अथवा किसी देश के अनुकरण पर तैयार किया गया था। भारतीय सिक्कों के विषय में गहरा मतभेद रहा है और पश्चिमी विद्वान इसको मानने के लिए तैयार न थे कि भारतीय मुद्रा स्वदेशीय रीति से स्वतः उत्पन्न हो गयी। वे सदा इनमें अनुकरण ही देखते रहे। परन्तु ऐतिहासिक अनुसंधानों से तथा खुदाई में प्राप्य वस्तुओं के आधार पर यह सिद्ध हो गया है कि संसार के सिक्कों में भारतीय मुद्रा स्वतंत्र रीति से तैयार किया गया था और अब उनके अनुकरण का संदेह जाता रहा। इसी बात को सप्रमाण लिखने का प्रयत्न किया जायगा।

भारतीय मुद्रा की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए दो तरह के प्रमाण उपस्थित किए जाते हैं। एक तो स्वयं सिक्के हैं जिनके देखने से प्राचीनता की बात पुष्ट हो जाती है। दूसरा प्रमाण साहित्यिक है जो वेदों से लेकर संस्कृत साहित्य तक विस्तृत है। योरप के विद्वान भारतीय सिक्के को बैक्ट्रिया के ग्रीक सिक्कों का अनुकरण मानते थे। दूसरे विद्वानों का मत था कि जब भारत ने बेबिलोनिया से व्यापार आरम्भ किया उस समय से वहाँ के प्रचलित सिक्के की नकल पर भारत में मुद्रा तैयार किया गया। परन्तु सिक्कों की परीक्षा और अध्ययन से यह बात सारहीन मालूम पड़ती है। सर जान मार्शल ने १९१२ ई० में बीरमाऊंड नामक स्थान की खुदाई की। वहाँ से एक सिक्कों का ढेर मिला है जिसमें बैक्ट्रिया के राजा डियोडोरस का सिक्का था और अन्य सभी भारतीय सिक्के थे। उनमें डियोडोरस का सिक्का देखने में नया प्रगट होता है और अन्य सिक्के घिसे होने के कारण प्राचीन मालूम पड़ते हैं। ईसा पू० २५० वर्ष में डियोडोरस भारत में राज्य करता था। इसलिए भारतीय सिक्के उससे पुराने अवश्य हैं। प्राचीन इतिहास के जानने वालों से यह बात छिपी नहीं है कि सिकन्दर ने जब भारत पर आक्रमण किया तो उस मार्ग में तक्षशीला के राजा आम्भि ने यूनानी राजा का स्वागत किया और भेंट में चांदी के सिक्के (Signauts Argentum) दिए थे। लोगों की यह भी धारणा है कि सिकन्दर के भारत आने के पश्चात् यूनान से घनिष्ट सम्बन्ध आरम्भ हुआ। यदि यह बात सत्य है तो सिकन्दर के बाद ही यूनानी सिक्के भारत में आए होंगे। परन्तु ऊपर यह कहा गया है कि आम्भि ने चाँदी के सिक्के भेंट किए थे। इस अवस्था में यह बात स्वतः सिद्ध होती है कि सिकन्दर से पूर्व भारत में सिक्कों का प्रचार था। अतएव भारतीयों का यूनानी सिक्कों की नकल पर मुद्रा तैयार करने की बात अप्रमाणिक हो जाती है। यदि प्राचीन भारतीय सिक्कों को यूनानी सिक्कों से मुकाबिला किया जाय तो ऐसी बहुत सी समताएँ मिलती हैं जिससे ज्ञात होता है कि उन नरेशों ने भारतीय मुद्रा का अनुकरण किया है। बैक्ट्रिया के यूनानी राजा दिमितस के सिक्कों पर भारतीयता की झलक दिखाई पड़ती है। उस वंश के सिक्कों का आकार गोल था जब तक वे ताहिया से निकले गए थे पर जिस काल से उन्होंने हिन्दूकुश के दक्षिण का देश अपने राज्य में मिला लिया उसी समय से भारतीय शैली की नकल शुरू हो गयी। दिमितस ने भारतीय ढंग के चौकोर सिक्के तैयार कराए थे। इसका कारण भी साफ था कि विजित देश में यूनानी सिक्कों का प्रचार करना था अतएव वहाँ पहले से प्रचलित (सिक्के के) ढंग को अपना लेना भी आवश्यक था। उसने ब्राह्मी अक्षर का प्रयोग शुरू किया। यूनानी राजा पन्तलेव ने भारतीय लेख

के साथ चिह्नों को भी अपनाया। प्रचलित चिह्न वृषभ को अपने सिक्के पर स्थान दिया। अन्य चिह्नों को भी अंकित कराया। इस तरह विदेशी सिक्के परिस्थिति के कारण भारतीय ढंग को अपनाने लगे।

सारांश यह है कि यूनानी लोगों के सम्पर्क (सिकन्दर का आक्रमण-काल) से (यानी ईसा पूर्व ३२७ से) भारत में सिक्के बनते थे। इसके अतिरिक्त भारतीय कला में दो ऐसे चित्र खुदे हैं जिनमें सिक्कों का दृश्य दिखलाई पड़ता है। मध्य भारत में स्थित भरहुत की वेष्टनी पर एक चित्र अंकित है जिसमें गाड़ी से सिक्के उतार कर जमीन पर फैलाते हुए दिखलाए गये हैं। इसका भाव तत्सम्बन्धी कथानक से स्पष्ट हो जाता है। यह स्थान जहाँ चौकोर टुकड़े फैलाए जा रहे हैं, राजकुमार जेत का उद्यान था। उस वाटिका को श्रावस्ती का सेठ अनाथ पिण्डक मोल लेकर बौद्ध संघ को देना चाहता था। अपने हृदय के भाव को सेठ ने राजकुमार से प्रगट किया। राजकुमार ने उस उद्यान का इतना मूल्य माँगा जितना कि इच्छित पृथ्वी सिक्कों से ढक ली जाय। अनाथ ने मुँह माँगा दाम दिया और अपने सेवकों को आज्ञा दी कि जेतवन को कार्षापण (पुराने सिक्के) से ढक दो। इस चित्र में यही दिखलाया गया है कि सेठ के नौकर आज्ञा पाकर चौकोर टुकड़े (सिक्के) जमीन पर फैला रहे हैं। इसका अर्थ यह निकलता है कि भारत में प्राचीनतम सिक्के चौकोर होते थे। इसी प्रकार का दूसरा चित्र बोध गया मंदिर के स्तम्भों पर खुदा है। पृथ्वी पर चौकोर सिक्के बिछे हैं। इन सब प्रमाणों पर सब विद्वान एकमत होकर स्वीकार करते हैं कि भारतीय मुद्रा देशी है और स्वयं भारत में उत्पन्न हुई।

भारतीय इतिहास की जानकारी में साहित्य एक मुख्य साधन माना जाता है। प्रायः प्रत्येक विषय की जानकारी उनके अध्ययन से प्राप्त होती है। इसी साहित्य से भारतीय मुद्राशास्त्र की अनेक बातें मालूम पड़ती हैं। पिछले पृष्ठों में यह बतलाया जा चुका है कि प्राचीन भारत में गाय को विनिमय का साधन मानते थे अतः व्यापार का काम चलता था। वैदिक काल में ऐसे उल्लेख मिलते हैं परन्तु साथ ही साथ एक सोने के पिण्ड का वर्णन आता है जो निष्क नाम से प्रसिद्ध हुआ। वेदों में कई स्थानों पर निष्क को सोने का हार बतलाया गया है। वेदों के प्रसिद्ध टीकाकार सायण (यद्यपि वह चौदहवीं सदी में पैदा हुए थे परन्तु यही एक प्रामाणिक टीकाकार माने जाते हैं) ने भी 'निष्क सुवर्णं न अलंकृता ग्रीवा' निष्क को गले में पहनने वाला सोने के हार के रूप में लिखा है। उपनिषद् तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में भी निष्क को सोने का हार बतलाया गया है। परन्तु कुछ लोग यह मानने को तैयार नहीं हैं कि निष्क किसी प्रकार का आभूषण था। उनका
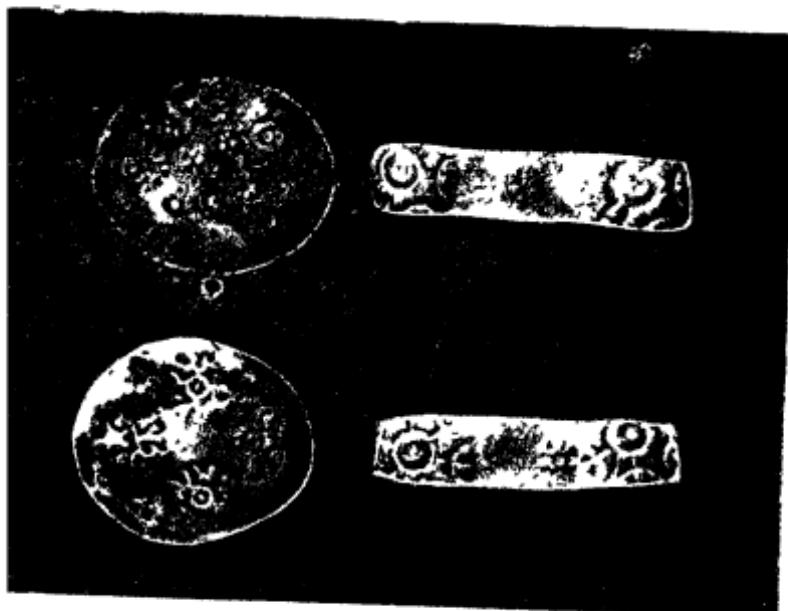
विचार है कि निष्क एक प्रकार के सोने के सिक्के का नाम था जिसे मिलाकर औरतों ने गले में पहनने योग्य आभूषण तैयार करा लिया जाता था। निष्क से आधुनिक समय का हार (बनाया गया) न समझना चाहिए परन्तु सिक्कों को लगाकर (छेदकर) पहनने का जो आभूषण बनता है उसे प्राचीन निष्क का प्रतीक कहा जा सकता है। अस्तु। यह विवादपूर्ण विषय है। ऋग्वेद में उल्लिखित निष्क को हार मान भी लें परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित निष्क को उस रूप में नहीं ले सकते ब्राह्मण काल में निष्क को सोने का पिण्ड (दस हिरण्य पिण्डान) मानते थे और सिक्के की तरह काम में लाते थे। संहिता में शतमान तथा कृष्णाल नामक सिक्कों का नाम पाया जाता है। सम्भवतः ये पिंड सर्वप्रथम एक तौल के धातु थे जो समयान्तर में उसी नाम के सिक्के पुकारे जाने लगे। कृष्णाल एक तरह का तौल (रत्ती) है। इसी तौल का सोना व्यवहार किया जाता रहा होगा। आगे चलकर सिक्के का यही नाम रख दिया और तौल वही पुरानी रक्खी। इस प्रकार सिक्कों के नाम बदते गए। यहीं पर कहना उचित होगा कि मासक तथा कार्षापण सिक्कों के नाम से प्रसिद्ध हुए जो प्रारम्भ में तौल के लिए व्यवहृत होता था। मासा से मासक तथा कर्ष तौल से कर्षापण का नाम दिया गया। वैदिकसाहित्य में दान का प्रकरण आता है। उस समय दान में देने वाले धातु-पिण्डों को सिक्कों के नाम से पुकार सकते हैं। शतपथ ब्राह्मण में राजसूय काण्ड में रथमोचनीय यज्ञ का वर्णन मिलता है। उसमें राजा के रथ के पहिये के नीचे दो गोलाकार शतमान बाँधे जाने का वर्णन पाया जाता है। राजा जनक के यज्ञ में कुरु पंचाल के ब्राह्मणों को बहुत सा धन दान में दिया गया। ऐसा कहा जाता है कि हर एक ब्राह्मण को तीन-तीन शतमान दिए गए। बृहदारण्यक उपनिषद में भी इसी यज्ञ का वर्णन मिलता है। इस वर्णन से प्रगट होता है कि शतमान चाँदी के सिक्के थे (प्रत्येक व्यक्ति ने दान में तीन सुवर्ण सिक्का देना अव्यवहारिक मालूम पड़ता है अतएव शतमान को चाँदी का सिक्का माना जाता है) वेदों में अन्यत्र दान का वर्णन (निष्क देने का) आता है। कात्यायन श्रौतसूत्र में यज्ञ की दक्षिणा में शतमान देने का उल्लेख पाया जाता है। इसलिए यह तो मानना ही पड़ेगा कि वैदिक काल में यदि मुहर वाले सिक्के न थे तौभी पिण्ड को सिक्के की तरह व्यवहार करते थे जो वास्तव में सिक्के से भिन्न नहीं समझे जा सकते। ईसा पूर्व एक हज़ार वर्ष में ब्राह्मण तथा सूत्र साहित्य के आरम्भ में सिक्कों को विशिष्ट रूप अवश्य मिल चुका था। शतमान सौ रत्ती सुवर्ण ८० रत्ती तथा कार्षापण ८० रत्ती के बराबर तैयार किए जाते थे। ब्राह्मण तथा बौद्ध साहित्य में और अधिक सिक्कों के नाम मिलते हैं। देश की आर्थिक उन्नति के साथ विनिमय के

लिए सिक्के भी नाना प्रकार के व ढंग के बनने लगे। जातक ग्रन्थों में (ईसा पू० ७००) निष्क, शतमान, कृष्णाल, सुवर्ण, तथा कर्षापण के नाम मिलते हैं। यद्यपि निश्चित रूप से यह प्रमाण नहीं मिले हैं कि ये सिक्के थे या तौल का नाम था परन्तु कथानकों से यही अभिप्राय निकलता है कि ये सिक्के के लिए प्रयुक्त किए जाते थे। कुहक जातक में वर्णन आता है कि एक गृहस्थ ने सौ निष्क एक साधु की निगरानी में रख दिया और सर्पराज चम्पेय सर्पों की करामात दिखा-कर रोज सौ कर्षापण पैदा करता था। कुरु जातक में एक सहस्र कर्षापण नए विद्यार्थी को देने का उल्लेख मिलता है। संखपाल जातक में एक धनवान व्यक्ति द्वारा बोधिसत्व को दुख में पाकर दान देने की कथा आती है। इस प्रकार के अनेक दृष्टांत मिलते हैं। जिनसे प्रगट होता है कि निष्क तथा कार्षापण क्रमशः सोने और ताम्बे के सिक्के थे। विनय पिटक में राजगृह में सिक्कों के प्रचलन का वर्णन मिलता है। बुद्धघोष ने सामंत पासादिका के रूपसूत्त पर जो टिप्पणी लिखी थी उसमें नैगम सभा द्वारा सिक्के तैयार करने का संदर्भ आता है। उन्होंने रूप को चित्रविचित्र आकृति का बतलाया है। बहुत सम्भव है कि उस समय के पंचमार्क सिक्कों के बारे में उसका संकेत हो। उसमें एक कथानक भी है जिससे ऊपर की बातें स्पष्ट होती है। वह यों है कि उपाली नामक स्त्री अपने पुत्र को शराफ का पेशा सिखलाना नहीं चाहती थी। जिसका अर्थ यह है कि सराफों द्वारा सिक्के अवश्य तैयार किए जाते थे। वैदिक तथा बौद्ध ग्रन्थों में ऐसे अनेक स्थल मिलते हैं जिन सब का वर्णन एक स्वतंत्र पुस्तक का रूप धारण कर सकता है। यहाँ पर अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से कुछ उल्लेख किया गया है जिससे तत्कालीन सिक्कों के बारे में कुछ ज्ञान हो जाय।

धार्मिक ग्रंथों के सिवाय वैयाकरण पाणिनि ने भी सिक्कों के विषय में अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है। पाणिनि के समय के विषय में विद्वानों में मतभेद है परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि ईसा पू० ५०० वर्ष में पाणिनि ने ग्रंथ की रचना की। तत्कालीन बातें उसी अष्टाध्यायी से मालूम पड़ती हैं। उनके मुद्रा विषय की चर्चा व्याकरण के सम्बन्ध में आई है। एक सूत्र है 'तेनक्रीतम्' यानी खरीदा गया। अन्यत्र उन्होंने लिखा है 'विभाषा कार्षापण सहस्राभ्या'' ताम्बे का पुराना सिक्का कार्षापण कहा जाता है। उसी पर टीका करते हुए पतंजलि ने उदाहरण दिया है कि पश्यति रूपतर्क कार्षापण दर्शयति—रूपतर्क कार्षापण की परीक्षा करता है। इसके अतिरिक्त शतमान तथा निष्क के भी नाम सूत्रों में आते हैं। उनके कथनानुसार सिक्का तभी समझा जायगा जब उस पर मोहर लगा दी जावे (रूप्या दाहत प्रशंसोर्यप) कासिकाकार ने भी

ठीक उसी बात को लिखा है कि आहत यानी मुहर (ठप्पा) से ही रूप्य बनता था। स्यात् वर्तमान शब्द रुपया उसी रूप्य से बना है।

उसी तरह ईसा पूर्व चौथी सदी में आचार्य चाणक्य ने एक राजनैतिक ग्रंथ—अर्थशास्त्र—लिखा जिसमें मौर्य कालीन सिक्कों तथा उनके तैयार करने की शैली का वर्णन किया है। चाणक्य ने सुवर्ण, धरण, शतमान, पाद, मासक तथा काकिनी आदि विभिन्न सिक्कों का वर्णन किया है। उस समय तो वैज्ञानिक ढंग से सिक्के तैयार किए जाते थे। उस विभाग का अध्यक्ष रहता था जो सारे कामों की निगरानी करता था। चाणक्य ने पण नामक एक नए सिक्के का नाम लिखा में जो प्राचीन कार्षापण के सदृश था। उसके सोलहवें भाग को मासक कहते थे। मासक की एक चौथाई को काकिनी का नाम दिया गया था। इस प्रकार के सारे सिक्के टकसाल में तैयार किए जाते थे। इस ढंग के सिक्के तक्षशीला आदि प्राचीन स्थानों की खुदाई में मिले हैं अतः साक्षात् प्रमाण होने के कारण चाणक्य वर्णित सिक्कों में तनिक संदेह नहीं रह जाता।

अंत में यह कहना युक्तिसंगत है कि भारतवर्ष में सिक्के ईसा पू० ८०० वर्ष से तैयार होते रहे। संसार में सब से प्राचीन सिक्कों के तैयार करने की चर्चा भारतीय साहित्य ही में मिलती है। पुरातत्व की खोदाई में प्राप्त सिक्के कथित बातों की पुष्टि करते हैं।

(४) सिक्कों का नामकरण

पहले इस विषय की चर्चा की जा चुकी है कि सिक्कों के स्थान पर विनिमय के लिए धातुचूर्ण तथा धातुपिण्ड का व्यवहार किया जाता था। सिक्के क्रमिक विकास के अंतिम रूप हैं। सर्वप्रथम तौल के नाम से ही सिक्के का नाम पुकारा जाता था। वैदिक साहित्य में निष्क शब्द से सोने का सिक्का प्रसिद्ध था। ब्राह्मण ग्रन्थों में शतमान शब्द का भी प्रयोग सिक्कों के लिए मिलता है। उस सिक्के की तौल सौ (शत) रत्ती के बराबर माना जाता था। समयान्तर में उसके चौथाई भाग को पाद के नाम से पुकारने लगे। प्राचीन समय में ताँबे के सिक्के को कार्षापण कहते थे क्योंकि उसकी तौल कर्ष (बीज का नाम) के द्वारा निकाला जाता था। ईसा की पूर्व की शताब्दियों में पाणिनि तथा चाणक्य ने कई प्रकार के सिक्कों का उल्लेख किया है। अष्टाध्यायी में शतमान तथा रूप्य आदि शब्द सिक्कों के लिए प्रयोग किये जाते रहे। कौटिल्य अर्थशास्त्र में चाणक्य ने कई तरह के नामों का उल्लेख किया है। चाँदी के सिक्कों के लिए पुराण या धरण शब्द बार-बार प्रयुक्त किए गए हैं। कौटिल्य ने मासक नाम के

सिक्के का उल्लेख किया है जो उस समय प्रचलित किए गए थे। मासक शब्द से तौल का भी अनुमान किया जाता है कि यह मुद्रा एक मासा तौल में था। अर्द्धमासक भी तैयार किया जाता था। आठवाँ भाग वाले सिक्के को 'काकिनी' कहते थे। यद्यपि इस तौल के सिक्के कम संख्या में प्रचलित थे परन्तु उनके बराबर 'काकिनी' तथा अर्द्धकाकिनी का प्रचार अवश्य था। कौड़ी के चलन के कारण ऐसे छोटे तौल के सिक्के कम संख्या में तैयार किए जाते थे।

जैसा कहा जाता है कि ताम्बे के सिक्के कार्षापण कहे जाते थे वही पाली भाषा में जातक तथा पिटक ग्रंथों में कहापन के नाम से विख्यात हुए। ईसा की पहली शताब्दी तक कहापन के नाम साहित्य में मिलते हैं। भारत में यूनानी शासकों के सिक्के 'अर्द्धद्रम' कहे जाते थे। इसी तौल का अनुकरण शक राजा करते रहे परन्तु नाम प्राचीन भारतीय ढंग का था। नासिक के लेख (पहली सदी) में नहपान के जमाता उषवदत्त ने कार्षापण तथा सुवर्ण का उल्लेख किया है जिससे प्रगट होता है कि चाँदी तथा सोने के सिक्कों को क्रमशः कार्षापण तथा सुवर्ण का नाम दिया गया था।

इससे यह भ्रम पैदा होता है कि कार्षापण से चाँदी के सिक्कों का बोध कैसे होने लगा जब कि चाँदी की मुद्रा पुराण या धरण तथा ताम्बे का कार्षापण के नाम से साहित्य में उल्लिखित थे। परन्तु स्मृति ग्रन्थों तथा सिक्कों के प्रचलन की परीक्षा से यह प्रगट होता है कि प्राचीन समय में एक धातु के सिक्के स्वतंत्र रूप से अमुक स्थान से प्रचलित थे। आजकल की तरह ताम्बे का सिक्का चाँदी का सहायक न था। चाँदी तथा ताम्बे की पृथक तौलमाप (Standard wtight) रही। किसी स्थान में चाँदी तथा किसी में ताम्बे के सिक्कों का व्यवहार किया जाता था। इसलिए कार्षापण के नाम से विभिन्न स्थान में चाँदी या ताम्बे के सिक्के पुकारे जाते थे।

कुषाण नरेशों के समय में सब सिक्के विदेशी अनुकरण पर तैयार किए गए थे परन्तु उनके नामकरण का कुछ पता नहीं चलता। गुप्त साम्राज्य के अभ्युदय से सिक्कों में भारतीयपन का प्रवेश हुआ। रोम राज्य के सोने के सिक्के दिनेरियस (Denarius) कहे जाते थे उन्हीं के नाम पर गुप्त सम्राटों ने दीनार रक्खा। गुप्त लेखों तथा साहित्य से इस बात की पुष्टि होती है। साँची के एक लेख में दीनार दान में देने का वर्णन मिलता है। पंचविंशति दीनारान् तथा दत्ताः दीनारान् दीनाराः द्वादश आदि लेखों में प्रयुक्त मिलते हैं। गुप्त राजा बुधगुप्त (छठी सदी) के दामोदरपुर ताम्रपत्र में दीनार सिक्के के लिए प्रयोग किया गया है। गुप्तकाल में दीनार के अतिरिक्त सुवर्ण शब्द का भी प्रयोग

सिक्के के लिए आया है। परन्तु दीनार का प्रयोग बहुत समय तक प्रचलित रहा। दसवीं सदी के मुसलमान यात्रियों सुलेमान तथा अलमसूदी ने दीनार शब्द का प्रयोग सिक्कों के लिए किया है। मध्य युग में छठीं सदी के बाद सोने के सिक्कों का प्रचार बन्द प्रायः हो गया। गांगेयदेव तथा चन्देल राजाओं ने कुछ सोने के सिक्के तैयार किये थे, जिनका तौल यूनानी द्रम (६२ ग्रेन) के बराबर था। इसीलिए वे सुवर्ण द्रम के नाम से विख्यात थे। पिछले गुप्त नरेशों के बाद सुवर्ण तौल को छोड़ कर मध्य युग में यूनानी विदेशी तौल को शासकों ने अपनाया। हूण सरदारों ने उसी द्रम तौल को अपनाया और तौल के सिवाय सिक्कों का विदेशी नाम भी द्रम रक्खा गया। मध्यकालीन प्रशस्तियों में द्रम का उल्लेख पाया जाता है। कभी-कभी तो शासक के नाम के साथ द्रम शब्द जुड़ा मिलता है। मिहिरभोज (९वीं सदी) के लेखों में आदिवाराह-द्रम के दान का वर्णन आता है। आदिवराह भोज के सिक्के का नाम था। प्रतिहारवंश के सियादोनी लेख में 'श्रीमदादिवाराह वाराह द्रम' श्री विग्रहपालीयद्रम का उल्लेख मिलता है जो द्रम के साथ राजा के संयुक्त नाम की पुष्टि करता है। मध्ययुग के लेखों के आधार पर मध्यकालीन सिक्कों के द्रम संज्ञा से प्रचलित होने की पुष्टि मिलती है। समयान्तर में द्रम से दाम बन गया जिसका अर्थ सिक्के से है। सभी के तौल में समता नहीं पायी जाती है।

(५) मुद्रा बनाने की रीति

प्राचीन भारतीय सिक्कों के सम्बन्ध में अनेक बातें जानने के पश्चात् यह आवश्यक है कि उनके बनाने की रीति पर विचार किया जाय। अभी तक जो कुछ अनुसंधान हो पाया है उसी के आधार पर ज्ञातव्य बातों का विवेचन किया जायेगा। इस बात के दुहराने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती कि भारतीय सिक्के सबसे प्राचीन समय 'ईसा पूर्व कई सदियों में' से तैयार किए जाते रहे। भारत में जितने प्रकार की मुद्राएं मिली हैं उनमें कार्षापण (पंचमार्क) ही प्राचीनतम है। ज्यों ज्यों कला की वृद्धि होती गयी, सिक्के बनाने की रीति में उन्नति होती गयी है। शासक के हाथ में इस कार्य के आने पर अधिकारी नियुक्त किए गए। उन्होंने सिक्के तैयार करने के लिए नए प्रकार की रीति का समावेश किया। इस तरह वर्तमान समय तक तीन प्रकार (रीति) से सिक्के तैयार करने का मार्ग ज्ञात हो चुका है। पहला तरीका कार्षापण बनाने का था।

विभिन्न रीतियाँ

इसमें ताम्बे या चाँदी की पतली चादर (पत्तर) तैयार की जाती थी और चौकोर टुकड़ा काट लिया जाता था। इसे फिर तौल कर नियमित वजन (Standard Weight)

के बराबर किया जाता था। तौल को ठीक करने के लिए उस टुकड़े के किसी भाग से अधिक मात्रा को पृथक कर दिया जाता था। इस ढंग से सिक्का उचित तौल का बन जाता था। चौकोर टुकड़े से कुछ काटने के कारण आकार में विभिन्नता आ जाती थी। उस सिक्के में कई कोण बन जाता था यही कारण है कि प्राचीन कार्षापण कई आकार के मिलते हैं। इसके पश्चात् चिन्ह (symbol) अंकित करने का कार्य सबसे प्रधान समझा जाता था। पंचमार्क सिक्कों के विभिन्न चिन्हों का वर्णन अगले परिच्छेद में किया जायगा। परन्तु यह कहना पर्याप्त न होगा कि उन चौकोर धातु पिण्ड (टुकड़े) पर चिन्ह अंकित करने की रीति भलीभाँति ज्ञात नहीं है। विद्वानों का इस विषय में मतभेद है। कुछ लोगों का मत है ये चिन्ह विभिन्न संस्थाओं द्वारा अंकित किये जाते थे। जब जब कार्षापण या पुराण के शुद्ध धातु की परीक्षा की जाती थी उस समय एक निशान लगा दिया जाता था। एलन का मत है कि पंचमार्क सिक्कों पर सारे चिन्ह एक साथ अंकित किए जाते थे। उस विवाद में न जाकर इतना कहना आवश्यक है कि वे चिन्ह छेनी (punch) से अंकित किए जाते रहे। उन चिन्हों की अधिकता, स्थान की कमी अथवा संगठित शिष्ट ढंग से काम न करने के कारण चिन्ह एक दूसरे को ढक लेते थे। यह बहुत ही साधारण रीति थी जिसमें अधिक कुशलता की आवश्यकता न थी। कहा जाता है कि प्राचीन समय में सुनार सिक्के तैयार करते थे। कार्षापण का 'पंचमार्क' नाम इसी कारण से प्रसिद्ध हुआ। इसे सब से सरल रीति कह सकते हैं। सुगमता के कारण कार्षापण किसी स्थान पर तैयार किए जाने लगे। ईरानी सिक्कों अथवा ग्रीक सिक्कों को देख कर पंचमार्क सिक्के गोल आकार के बनने लगे। अभी तक यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि गोल सिक्के किस रीति से तैयार किए जाते थे। परन्तु प्राचीन रीति में कुछ सुधार अवश्य किया गया वरन् नए रूप में उनको बदलना सम्भव न था।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से नयी रीति (साँचे में ढालकर) से सिक्के बनाने का पता चलता है। यह निश्चित है कि साँचे में ढालने का तरीका भारत में बहुत पहले ज्ञात था। डा० बीरबल सहानी ने बड़े परिश्रम के साथ सुन्दर शब्दों में सिक्के ढालने की रीति का वर्णन किया है। जितने साँचे अभी तक मिले हैं उनमें सबसे पुराना रोहतक (पंजाब) वाला साँचा ईसापूर्व पहली सदी का है। इससे भी दो सौ वर्ष पुराना काँसे का एक ठप्पा (die) एरण (मध्यप्रांत) में मिला है। यह कहना कठिन है कि साँचा (Mould) या ठप्पा में से कौन तरीका पहले का है। परन्तु ठप्पा (disc) ढालने (Casting) के

साँचे में ढालना

१

२
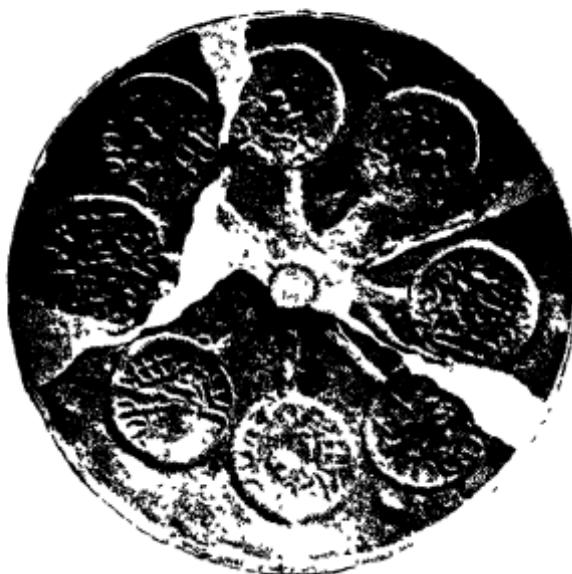
पश्चात् ही आरम्भ हुआ होगा। इस कारण एरण के ठप्पे से भी पूर्व (ईसा पूर्व तीसरी सदी) साँचे में ढालने की रीति को भारतीय अवश्य जानते होंगे।

साँचे की बनावट

आज तक जितने साँचे मिले हैं वे सब मिट्टी को पका कर तैयार किये गए थे। साँचे तैयार करके भट्ठी में रख दिए जाते थे। जब वह अच्छी तरह आग में पक कर लाल हो जाता तो नालियों से धातु को उसमें डाला जाता। वह धातु गल कर असली स्थान पर पहुँच जाती और विशिष्ठ आकार में फैल जाती। भट्ठी के ठंडे होने पर साँचे को तोड़ दिया जाता था और सिक्का उस स्थान से हटा लिया जाता। उसी छोटे स्थान में चिह्न तथा लेख धातु पर साँचे पर से अंकित हो जाते थे। यही संक्षेप में सिक्के ढालने का तरीका था।

साँचे बनाने से पूर्व मिट्टी में अक्सर धान का छिलका मिलाया जाता था। उसे गोलाकार धातु की चद्दर पर फैलाया जाता। चद्दर के बीच में एक कील लगी रहती थी ताकि मिट्टी के फैलाने पर भी केन्द्र में छेद बना रहे। उस मिट्टी के तह पर लोहे के नक्षत्र की तरह यंत्र से दबाव दिया जाता था जिससे उस गोल मिट्टी के तह पर कई पतली नालियाँ बन जाती थीं। प्रत्येक नाली के अंत में गोल सिक्के के चिह्न तथा लेख सहित साँचा बना रहता था। इस गोल सतह को मण्डल कहते थे। वास्तव में यही साँचा का एक भाग है जिसके मध्य में छिद्र मौजूद था। गली धातु इस केन्द्र से पतली नलियों द्वारा सिक्कों के असली स्थान पर पहुँचती थी। मिट्टी में जो चिह्न और लेख बने रहते थे वे सिक्के पर अंकित हो जाते थे। धूप में इस तरह चद्दर को सूखने दिया जाता। उसके बाद ही दूसरा मण्डल उस पर फैलाया जाता था।

निचले मण्डल पर जो कुछ अंकित होता था वह अग्र (obverse) या पृष्ठ भाग (Reverse side) का चित्र होता था। दूसरा मण्डल भी मिट्टी का तैयार किया जाता जिसके दोनों तरफ एक सी बनावट रहती थी। एक मण्डल के ऊपर दूसरा मण्डल इस प्रकार रक्खा जाता था कि केन्द्र से केन्द्र, नलियाँ से नलियाँ तथा सिक्के के स्थान से सिक्के का स्थान ठीक-ठीक बैठ जाय और पूरे साँचे का मुंह से मुंह मिला रहे। इस बनावट से गली धातु के बाहर निकल जाने की सम्भावना न रहती थी। सिक्के ढालने वाले की इच्छा पर यह निर्भर रहता कि मिट्टी के कितने तहमण्डल के रूप में एक साथ मिलाये जाँय। यदि दो से अधिक रक्खे जाते तो दूसरे और तीसरे के बीच में सफेद चूर्ण फैला देते ताकि मिट्टी चिपक न जाँय। पूरे साँचे में एक साथ कई सिक्के तैयार किए जाते। उस मिट्टी के मण्डल की आधी गहराई तक चिह्न तथा लेख

घुसे रहते थे। ढालते समय वे धातु पर उभड़ आते थे, जैसे आजकल ईंटे ढालने में लेख तथा तसवीरें मिट्टीपर उतर आती हैं।

उसका ठीक उलटा सिक्कों के साँचे में होता था। मिट्टी का बना साँचा भट्ठी में रक्खा जाता था। मण्डल के केन्द्र में जो छेद बना रहता था उसमें धातु छोड़ी जाती थी। वह गल कर विभिन्न सतह में फैल जाती थी।

ढालने का तरीका एक सतह में किरण की तरह जितनी फैली नलियाँ रहतीं उनसे होकर सिक्के के असली घर (Coin socket) में धातु पहुंच जाती थी। उस स्थान पर जो नमूना (चिह्न तथा लेख) मिट्टी की गहराई में प्रस्तुत रहता वही उस धातु के टुकड़े पर उतर आता या स्वतः अंकित हो जाता था। ठंडा होने पर मिट्टी के पूरे आकार को तोड़ दिया जाता था। जो चित्रित गोलाकार धातु-पिण्ड निकलता उसे सिक्का कहते थे। इस रीति से एक साथ कई सिक्के बनते रहे। वर्तमान काल में कई स्थानों की खुदाई से मिट्टी की मुद्राएं (seals) निकली हैं जिनकी पूरी परीक्षा कर यह निश्चय किया गया है कि वे एक सिक्का ढालने के यंत्र (साँचा) है। राजघाट (काशी) की खुदाई में ऐसे साँचे का एक टुकड़ा मिला है। उन पर आकृतियाँ तथा लेख मौजूद हैं जो अक्सर सिक्कों पर पाए जाते हैं। ऐसे दो भाग को मिलाकर धातु पिण्ड पर अग्र तथा पृष्ठ चित्र अंकित किया जाता था इस ढंग में भी धातु को गलाकर साँचे में सिक्के के वास्तविक स्थान (घर) पर पहुंचाया जाता था। साँचे के ठंढे होने पर बिना तोड़े सिक्का निकाल लिया जाता था। सांची, काशी तथा नालंदा में ऐसे साँचे का प्रयोग होता था। विद्वानों की धारणा है एक साथ कई सिक्कों के ढालने वाले पेचीदा ढंग को क्रमशः छोड़ दिया गया और एक बार एक सिक्का ढालने की रीति को प्रोत्साहन दिया गया। इस मिट्टी के साँचे में धातु इस प्रकार छोड़ो जाती कि सिक्का तैयार होने पर उसे ज्यों का त्यों रहने दिया जाता ताकि दुबारा उसी सांचे का प्रयोग किया जा सके। अतएव सांचे को नष्ट करने के कारण एकही सिक्का ढालना सुगम समझा गया। ब्राउन का कहना है कि ताम्बे के सिक्के ढालने का रिवाज़ भारत में ईसा पूर्व २०० वर्ष से चला आ रहा था। कुछ लोगों का अनुमान है कि सांचे लोहे, पत्थर या मिट्टी के बनते थे। अभी तक खुदाई में मिट्टी के साँचे मिले हैं। ईसा पूर्व तीसरी सदी में कौशाम्बी, अयोध्या तथा मथुरा आदि स्थानों पर सिक्के ढाले जाते रहे। इन जनपदों के साँचे में ढले सिक्के मिलते हैं। उनका आकार गोल है। ढालने के समय से चौकोर सिक्कों के स्थान पर गोल आकार में सिक्के बनाना सुगम तथा सरल माना गया, इसलिए उसके रूप में सुन्दर परिवर्तन
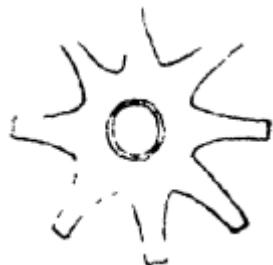
हो गया। साँचे के तरीके को बहुत-से व्यक्ति आज रखकर काम में लाया करते थे·जिसका प्रभाव तक्षशिला तथा मथुरा के साँचे में पाया जाता है।

तीसरी रीति टप्पे से सिक्के तैयार करने की थी जो आज तक काम में लाया जाती है। इस रीति से गरम धातु के टुकड़े पर ठप्पे के दबाव से चिन्ह तथा लेख गहराई में अंकित हो जाते थे। एक ओर ठप्पे के निशान से सिक्के तैयार करने की प्रथा डालने के बाद काम में लायी गयी। ईसापूर्व चार सौ वर्ष के पुराने सिक्के मिले हैं जिनपर एक ओर चिन्ह बना है। बोधिवृक्ष, स्वस्तिक या शेर की आकृति तक्षशिला के सिक्कों में मिलती है जो ठप्पे से तैयार किए जाते रहे। ईरानी

ठप्पा मारने का ढंग

सिक्कों को देखकर दोनों तरफ ठप्पा मारने का दोहरा तरीका प्रयोग किया गया। भारत में उसे अपनाकर विदेशीपन को घुसने न दिया गया। पहले नीचे के ठप्पे पर ऊपरी (obverse) सिक्के की पूरी आकृति खोदी जाती। उसके बाद गरम धातु को रखकर ऊपर से ठप्पे से दबाव डाला जाता जिसमें निचले भाग का नमूना बना रहता था। इस प्रकार के दोहरे ठप्पे में सिक्कों का सुन्दर गोल रूप बन जाता। गान्धार में सबसे पहले दोहरे ठप्पे से सिक्के तैयार होने लगे। इन सिक्कों पर हाथी, शेर, नन्दि अथवा अन्य धार्मिक चिन्ह भारतीयता के द्योतक हैं जिनको यूनानी राजाओं ने अनुकरण किया था। भारतीय गणराज्यों ने इस रीति (दोहरे ठप्पे) को अपनाया। कुणीन्द, औडम्बर, नाग तथा यौधेय गणों के गोलाकार सिक्के पाए जाते हैं। सम्भवतः दोहरे ठप्पे के साथ सिक्कों के गोल आकार भी आरम्भ हुआ। जनपद राज्यों में। (पाँचाल, अयोध्या, मथुरा तथा कौशाम्बी) भी साँचे के बाद दोहरे ठप्पे क प्रयोग होने लगा। एरण (मध्यप्रांत) में दोहरे ठप्पे से तैयार कार्षापण प्राप्त हुआ है जिससे प्रकट होता है कि कार्षापण के निर्माण-में विचित्र उन्नति हुई। ईसापूर्व दूसरी शताब्दी से ही पंचमार्क सिक्के तैयार करने की पुरानी रीति को ठप्पा ने अंत कर दिया और इस नए ढंग को प्रधान स्थान मिल गया। इस बात की पुष्टि महावग्ग के एक कथानक से होती है। उपालि नामक बालक के माता-पिता पुत्र की जीविका के लिए चिन्तित थे। उसे सिक्के तैयार करने का काम मिला। परन्तु माता ने उस कार्य को इस कारण अस्वीकार कर दिया कि ठप्पे के कार्य से उपालि की आँख खराब हो जायेगी। कहने का तात्पर्य यह है कि ठप्पे में खुदाई की आवश्यकता पड़ती थी। वही नमूना गरम धातु पिंड पर ठप्पे से उभड़ आता था।

अंत में यह कहना उचित है कि धातु के टुकड़े काटने के परचात् साँचे में डालने

की रीति काम में लायी गयी। उस पर उन्नति कर दोहरे ठप्पे का सुन्दर ढंग अपनाया गया जिसे कालान्तर में सभी ने प्रयोग किया। वर्तमान परिस्थिति में ठीक तरह से नहीं कहा जा सकता कि श्रेणी, गण अथवा शासक किस विशिष्ट स्थान पर सिक्के तैयार करना पसंद करते थे। आधुनिक खुदाई में कई स्थानों पर साँचे मिले हैं जिससे अनुमान किया जाता है कि उस स्थान पर सिक्के ढलते थे। पंजाब के रोहतक स्थान में डा० बीरबल सहानी ने अनेक साँचों को ढूढ निकाला है जो यौधेयगण से सम्बन्धित हैं। यहाँ के साँचे में कई सिक्के साथ तैयार किये जाते थे। इसी तरह लुधियाना के समीप सुनेत स्थान पर तीसरी-चौथी सदी में शासन करने वाले यौधेय लोग सिक्के ढालते रहे। साँची, काशी तथा नालंदा में भी सिक्के ढालने के साँचे मिले हैं। अनुमान किया जाता है कि साँची में क्षत्रप तथा काशी और नालंदामें गुप्त राजाओं के सिक्के ढाले जाते थे। मथुरा तथा तक्षशिला के साँचे जाली माने जाते हैं। परन्तु इससे यह प्रकट होता है कि उन स्थानों पर सिक्के ढालने का काम अवश्य होता था। एरण में प्राप्त सिक्के के आधार पर यह कहा जाता है कि वहाँ दोहरे कांसे के ठप्पे से मुद्रा तैयार की जाती थी। हैदराबाद (दक्षिण) के कोहन्डपुर नामक स्थान में मुद्रा निर्माण का केन्द्र था जहाँ पंचमार्क क्षत्रप तथा आंध्र (सातवाहन) सिक्के समय-समय पर तैयार होते रहे। इस तरह भारत में कई स्थान थे जहाँ सिक्के बनाए जाते थे। सम्भवतः राजधानी में टकसाल घर अवश्य थे। साँची, काशी, कौशाम्बी, नालंदा आदि स्थान व्यापार के मार्ग मे प्रधान नगर था। व्यापार तथा सिक्के निर्माण की पारस्परिक उपयोगिता को कोई घटा नहीं सकता। इस कारण शासकों ने उन स्थानों को मुद्रा तैयार करने का केन्द्र बनाया।

मुद्रा निर्माण के केन्द्र

(६) सिक्कों पर लेख (भाषा तथा अक्षर)

यह सभी को ज्ञात है कि भारत के सबसे प्राचीन सिक्के निशान लगाने के कारण ही पंचमार्क के नाम से पुकारे जाते थे। उन पर नाना प्रकार के चिन्हों का वर्णन पीछे किया जा चुका है। ईसापूर्व दूसरी शताब्दी में विदेशियों के अनुकरण पर लेख सिक्कों पर अंकित किये जाने लगे। भारत में यूनानी सिक्कों पर यूनान की अक्षरों में ही उपाधि सहित राजा का नाम अंकित करने की प्रथा चली आ रही थी। डिमित्रस के भारत पर आक्रमण करने से स्थानीय जनता से सम्बन्ध बढ़ने लगा। विजित प्रदेशों में भारतीय यूनानी राजा सिक्के तैयार करने

भारत का मानचित्र
(प्राचीन टकसाल नगर)
सुनेत
मथुरा
काशी
नालदा

लगे। अतएव उनके लिए यह आवश्यक हो गया कि वहाँ की भाषा तथा वर्णमाला का प्रयोग सिक्कों पर किया जाय। वर्तमान काल में नोट के ऊपर भारत की प्रधान भाषा में अंक लिखे रहते हैं ताकि विभिन्न प्रांत के लोग उसे पढ़कर समझ सकें। यही बात यूनानी राजा के लिए भी ठीक थी। जनता की भाषा में राजा का नाम सिक्कों पर लिखना आवश्यक हो गया। अतएव उत्तर पश्चिम के सीमा पर रह कर प्राकृतभाषा तथा खरोष्ठी लिपि में यूनानी नरेशों ने (उपाधिसहित) नाम लिखना प्रारम्भ कर दिया। इनसे पूर्व मौर्यसम्राट् अशोक को भी तक्षशिला प्रांत में खरोष्ठी में लेख खुदवाना पड़ा था। मनसेरा तथा शहबाजगढ़ी के लेख खरोष्ठी लिपि में लिखे मिलते हैं। ईसा पूर्व १४० में अपलदतस नामक ग्रीक राजा ने सर्व से प्रथम यूनानी सिक्कों पर खरोष्ठीलिपि का प्रयोग किया। भारतीय चिन्ह नन्दि को भी सिक्कों पर स्थान दिया। पंतलेव तथा अगथुक्लेव ने खरोष्ठी के स्थान पर ब्राह्मीलिपि को अपनाया। चूंकि उत्तर पश्चिम में ब्राह्मी लिपि प्रचलित न थी अतएव यह तरीका अधिक समय तक चल न सका। इन दोनों के अतिरिक्त भारत में सब यूनानी शासकों ने खरोष्ठी अक्षरों का प्रयोग किया। सिक्के के ऊपरी भाग में ग्रीक भाषा और यूनानी अक्षरों में उपाधिसहित राजा का नाम और दूसरी ओर खरोष्ठीलिपि में राजा का नाम अंकित किया जाता था। इस लिपि का ग्रीक राजाओं में इतना प्रचार हो गया कि पूर्वीपंजाब में शासन करते हुए दियानिसस, स्त्रत तथा अंतलकिदस नामक यूनानी राजाओं ने खरोष्ठी का ही प्रयोग किया। यद्यपि ब्राह्मी लिपि का भी प्रचार उस भाग में था।

ईसा पूर्व दूसरी शती में पूर्वी पंजाब तथा उत्तर पश्चिम राजपूताना में संघ शासन का प्रसार था। उनमें अर्जुनायन, यौधेय कुणिन्द, औदुम्बर तथा मालव संघ के सिक्के मिले हैं। ये प्रधान संघ थे। इन्होंने जनता में प्रचलित ब्राह्मीलिपि का ही प्रयोग किया। उनके सिक्कों पर लेख इसी लिपि में मिलता है।

औदम्बर तथा कुणीन्द के सिक्कों पर एक ओर ब्राह्मी तथा दूसरी ओर खरोष्ठी का उपयोग किया जाता था। इसका भाव यह था कि ये सिक्के सीमान्त प्रदेशों में प्रचलित किए गए थे जहाँ की जनता ब्राह्मी तथा खरोष्ठी दोनों लिपियों से परिचित थी। दूसरी शताब्दी से गण-शासकों ने खरोष्ठी लिपि का प्रयोग बंद कर दिया और केवल ब्राह्मी को स्थान दिया गया। गणराज्यों के सिक्कों पर ब्राह्मीलिपि के साथ संस्कृत भाषा का भी प्रयोग आरम्भ हो गया और प्राकृत भाषा सदा के लिए हटा दी गयी। 'मालवण जय' के स्थान पर 'मालवानां जयः' अथवा 'यौधेय गणस्य जयः' लिखा जाने लगा। गण सिक्कों की एक विशेषता यह है कि उनके लेखों में (१) गणों का नाम जैसे अर्जुनायनानां, मालवानां, यौधे-

यानां या औदुम्बरिस; (२) राजा का नाम—शिवदत्त, अग्निमित्र, देवनाग, ब्रह्मण्यदेवस्य, (३) जाति तथा राजा का सम्मिलित नाम—राजोधर-घोषस औदुम्बरिस (४) आराध्यदेवता का नाम—भगवतो महादेवस्य अथवा (५) गण के आदर्श वाक्य—यौधेय गणस्य जयः, मालवानां जयः का उल्लेख पाया जाता है। तत्कालीन जनपदों के नगरों में एक प्रकार का सिक्का तैयार किया जाता था। अयोध्या, पांचाल, कौशाम्बी तथा अवन्ति से जो सिक्के प्रचलित किए गए उनपर ब्राह्मी अक्षरों में ही लेख लिखे जाते थे। लिपि के आधार पर ही विचार करके उन सिक्कों की तिथि ईसापूर्व पहली अथवा दूसरी शती मानी गयी है।

ईसापूर्व की पहली शताब्दी में तक्षशिला तथा गांधार प्रांत में शक तथा पह्लव नरेश शासन करते थे। उन स्थानों में प्रचलित खरोष्ठी लिपि में इन राजाओं ने सिक्के पर उपाधि सहित नाम अंकित कराए। जब शक क्षत्रप सौराष्ट्र तथा मालवा में राज्य करने लगे तो सिक्कों पर खरोष्ठी लिपि के स्थान पर ब्राह्मी अक्षरों को रक्खा। इसी लिपि में सिक्के के चारों तरफ गोल दायरे में नाम लिखा जाता था। सम्भवतः उस समय संस्कृत भाषा का प्रचार था। महाक्षत्रप रूद्रदामन का एक ब्राह्मी में लेख मिलता है जो संस्कृत भाषा का प्रथम लेख माना जाता है। यह गिरनार पर्वत पर खुदा था। इससे सौराष्ट्र तथा गुजरात में संस्कृत भाषा के प्रचार का आभास मिलता है। स्यात् पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप प्राकृत का प्रयोग करते रहे। ब्राह्मी अक्षरों का प्रयोग सर्वत्र पाया जाता है।

ईसवी सन् की पहली शती में कुषाण नरेश कुजुल तथा वीमकदफिस ने सीमाप्रांत में प्रचलित खरोष्ठी लिपि का प्रयोग किया था। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि प्रतापी कुषाण राजा कनिष्क ने यूनानी लिपि को पुनः अपनाया। यद्यपि उसका राज्य काशी तक विस्तृत था तौभी उसने सिक्के पर ग्रीक अक्षरों में ही राजा का नाम तथा देवता का नाम अंकित कराया। उसके उत्तराधिकारी समस्त कुषाण राजा तथा पिछले कुषाण नरेशों ने भी यूनानी अक्षरों तथा ग्रीक भाषा को ही प्रधान स्थान दिया। हिन्दू देवता का नाम यूनानी अक्षरों में लिखा मिलता है। महेश को ओइशो O.H.P.O. लिखा गया है।

यूनानी भाषा में उपाधि-बैसिलियस बैसिलियन मेगलो लिखा जाता था, तो प्राकृत और खरोष्ठी लिपि में 'महरजस रजरजस महतस' मिलता है। इसे संस्कृत में 'महाराजस्य राजराजस्य महतः' लिखा जा सकता है।

गुप्त सम्राटों के प्रादुर्भाव से भारत के सब ओर परिवर्तन होने लगा। जीवन के हर एक मार्ग में उन्नति दिखलाई पड़ने लगी है। उन राजाओं के समय में सिक्कों

पर संस्कृत भाषा का प्रयोग होने लगा। लेख साधारण तरीके पर नहीं लिखे जाते थे परन्तु उपगीति छन्द में सब लेख छन्दोबद्ध किए जाते रहे। इसका विस्तृत उदाहरण गुप्तकालीन सिक्कों के वर्णन के साथ दिया जायगा। प्रसंगवश कुछ लेखों (legend) के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

समरशत वितत विजयी
जित रिपु रजितो दिवं जयति

अथवा

राजाधिराज पृथिवीं विजित्य
दिवं जयत्या हत वाजिमेधः।

गुप्त सिक्कों पर ब्राह्मी अक्षर (जिसका नाम गुप्तलिपि था) में सब लेख अंकित किए जाते थे। संस्कृत छन्दों में लेखों से यह अर्थ निकाला जाता है कि उस समय संस्कृत ही राष्ट्रभाषा थी अन्यथा साधारण जनता में प्रयुक्त सिक्कों पर छन्दोबद्ध संस्कृत भाषा में लेख क्यों खुदे जाते। संसार में यह पहला नमूना है जहाँ सिक्कों पर इस प्रकार के लेख पाए जाते हैं।

गुप्त शासन के पश्चात् यह आदर्श जाता रहा और छोटे छोटे राज्यों में ब्राह्मी अक्षरों में सिक्कों पर लेख खुदे जाने लगे।

ईसा की पाँचवीं सदी में हुए राजाओं ने भी इसी लिपि को काम में लिया। मध्यकालीन सिक्कों पर सर्वत्र ब्राह्मी अक्षर (कुछ परिवर्तन के साथ) का ही प्रयोग मिलता है। राजपूताने के राजाओं, बुन्देलखण्ड के चंदेल तथा मध्यप्रांत के कलचूरी नरेशों ने नागरी के अक्षरों को सिक्कों पर स्थान दिया। गोविन्दचन्द्र देव का सिक्का अधिक संख्या में पाया जाता है। उसी का अनुकरण अनेक शासकों ने किया। उसकी लिपि देवनागरी से कुछ मिलती जुलती है और भाषा प्रारम्भिक हिन्दी मानी जा सकती है। क्योंकि ईसा की दसवीं सदी के बाद प्राकृत भाषा का प्रयोग शिथिल पड़ गया। उससे कई प्रांतीय भाषाएँ निकलीं। हिन्दी भी उसी की बेटी है। मध्य काल (ई० स० १००० के बाद) में इसी हिन्दी तथा देवनागरी का प्रयोग विभिन्न वंशों के सिक्कों पर मिलता है।

इस प्रकार सिक्कों के अध्ययन से प्राकृत, संस्कृत तथा प्रांतीय भाषा हिन्दी के विकास का ज्ञान होता है। यदि लिपि के प्रश्न पर विस्तृत विचार किया जाय तो स्पष्ट प्रगट हो जायगा कि ब्राह्मी से गुप्त लिपि तथा उससे अन्य लिपियाँ विकसित हुईं। मध्यकालीन देवनागरी उसी का रूप है। मुद्राविज्ञान के विद्वानों के लिए सिक्कों द्वारा अध्ययन का विषय रोचक और ज्ञानवर्द्धक है।

भारतीय इतिहास में सिक्कों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सिक्कों पर अंकित लेखों से ही भारतीय लिपि का ज्ञान प्राप्त हुआ। यों तो अशोक के शिला तथा स्तम्भ लेखों में प्रशस्तियाँ खुदी थीं परन्तु उससे किसी को कुछ पता न लेख से भारतीय चल सका। सर्वप्रथम पश्चिमोत्तर प्रांत से प्राप्त सिक्कों पर लिपि का जन्म यूनानी तथा प्राकृत भाषा में लेख खुदे थे। उनकी लिपि क्रमशः यूनानी तथा खरोष्ठी थी। पुरातत्ववेत्ताओं ने यूनानी लिपि के आधार पर खरोष्ठी लिपि की वर्णमाला तैयार किया। जिन सिक्कों पर एक ओर खरोष्ठी तथा दूसरी ओर ब्राह्मी लिपि पायी गयी, उसके सहारे (खरोष्ठी वर्णमाला के आधार पर) ब्राह्मी लिपि का ज्ञान हो गया। इसका मूल कारण यह था कि दोनों लिपियों में एक ही बात लिखी थी। राजा का नाम तथा उपाधि एक से थे। अतः खरोष्ठी लिपि को जानकर ब्राह्मी के अक्षरों का पता लगाना सरल हो गया। यदि सिक्कों पर लेख न खुदे रहते तो स्यात् भारतीय लिपियों का ज्ञान असम्भव था।

(७) सिक्कों के तौल तथा विभिन्न धातुएँ

भारतवर्ष में सिक्के का विकास तथा उसकी व्यापकता के विषय में कहा जा चुका है। समाज में इसकी विशेष आवश्यकता रही। देश की समृद्धि में इसने बड़ा कार्य किया है। सिक्के को देखा जाय तो ये तीन विभिन्न पहलू या विचार से सामने आते हैं। पहले तो सिक्के को धातु का एक छोटा पिण्ड (टुकड़ा) मान सकते हैं। इस पर राजकीय प्रमाण का चिह्न रहता है और प्रत्येक वस्तु के लिए विनिमय का साधन है। सिक्के के विकास में एक ऐसा समय था जब धातु के टुकड़े को अदल बदल में ग्रहण करने लगे। अतएव यह प्रश्न अवश्य था कि धातु की कितनी तौल एकाई मानी जाय। इसी सिद्धान्त को लेकर धातु या सिक्कों के तौल का प्रश्न समाज में आया। वैदिक साहित्य में हिरण्य-पिण्ड का वर्णन आता है परन्तु उसके निश्चित तौल के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। शतपथ ब्राह्मण में शतमान नामक सिक्के का उल्लेख मिलता है जो सौ कृष्णल के बराबर कहा गया है। अन्य स्थानों पर यज्ञों में दक्षिणा देते समय सुवर्ण या शतमान का वर्णन मिलता है परन्तु उनके ठीक तौल का कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता। बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य ऋषि को दान देते समय पाद का नाम आता है कि पाँच पाद के बराबर सोना गायों के सींग में बाँधा गया था। कुछ लोगों का विचार है कि पाद सिक्के का नाम था। यह नाम पाणिनि के समय तक व्यवहार में लाया जाता था। पाणिनि किसी वस्तु को एक शतमान में खरीदने

पर 'शतमानम्' का नाम देते हैं। अतएव सुवर्ण अथवा शतमान सिक्कों के चौथाई (पाद = पाव) भाग को पाद का नाम दिया था। विनिय पिटक में इस का प्रमाण मिलता है कि—पंचमासको पादो होति—पाँच मासे को पाद कहते हैं, (उस समय शतमान बीस मासे का माना जाता था)। ईसा पूर्व आठ सौ वर्ष में लिखित तैतरीय संहिता के आधार पर कृष्णनल (बीज, रत्ती के नाम से प्रसिद्ध) को नियमित तौल माना था, और उसी के प्रमाण पर आज तक सोने चाँदी आदि मूल्यवान धातुओं के तौलने के लिए रत्ती का प्रयोग किया जाता है।

स्मृति ग्रन्थों में रत्ती के द्वारा सारे सिक्कों के परिमाण (तौल) जानने की रीति का सुन्दर वर्णन मिलता है। मनु ने लिखा है —

> पंच कृष्णलकोमाषस्ते सुवर्णस्तु षोडशः।
> द्वे कृष्णले समघृते विज्ञेयो रौप्यमासकः
> ते षोडश स्याद्धरणं पुराणंश्चैव राजतम्
> कर्षापणस्तु विज्ञेयः ताम्रिकः कार्षिकः पणः।

पाँच कृष्णल (रत्ती) का एक मासा और सोलह मासे का सुवर्ण होता है। दो रत्ती का एक रौप्य (चाँदी) का मासा होता है। सोलह चाँदी के मासा को एक चाँदी का धरण या पुराण कहा जाता है। एक कार्षिक अथवा अस्सी रत्ती ताम्बे का एक पण वा कार्षापण होता है। याज्ञवल्क ने भी इसी प्रकार सोने चाँदी, और ताम्बे के लिए नियमित तौल रत्ती के रूप में बतलाया है।

सोने का सिक्का का नाम सुवर्ण
५ रत्ती का एक मासा
१६ मासे (८० रत्ती) का एक सुवर्ण = १४४ ग्रेन
चाँदी के सिक्का का नाम धरण वा पुराण
२ रत्ती का एक मासा
१६ मासे का (३२ रत्ती) एक धरण = ५६ ग्रेन
ताम्बे के सिक्का का नाम कर्षापण
तौल एक कर्ष = ८० रत्ती के = १४० ग्रेन

कर्ष तौल का नाम था। उसी से कर्षापण (पण जो कर्ष के बराबर हो) का नाम प्रचलित हो गया। विद्वानों का मत है कि यह प्राचीन समय में धातु तौलने की एकाई थी। उसी के बराबर धातु-पिण्ड तैयार होने लगे और उन्हें सिक्के के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। भारतवर्ष में इसी तौल को प्राचीन मानते हैं। बाद में जो सिक्कों की तौल बनाई गयी उस विदेशी तौल के आधार पर सिक्के बनने लगे। भारत में यूनानी शासन से पूर्व इन तौलों का प्रयोग सिक्कों या

धातु तौलने में किया जाता था। परन्तु सिकन्दर के आक्रमण के बाद जो सिक्के बने उनकी तौल विदेशी (Altic Standard) रीति (१२४ ग्रेन) पर स्थिर की गयी। यहाँ पर कहना अप्रासंगिक न होगा कि ईसा पूर्व दूसरी सदी (यूनानी शासन काल) से गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त तक (पाँचवीं सदी) यही विदेशी तौल (१२४ ग्रेन) काम में लाया जाता रहा। स्कन्दगुप्त ने गुप्तमुद्रा को भारतीय तौल (१४४ ग्रेन) पर तैयार कराया।

तक्षशिला के खण्डहरों से जो सबसे पुराने सिक्के मिले हैं उनमें कई सिक्के सौ रत्ती के बराबर (१८० ग्रेन) मिले हैं। इससे यह अनुमान किया जाता है कि भारत की सर्वमान्य तौल (८० रत्ती) से भी अधिक तौल के सिक्के प्राचीन समय में तैयार किए जाते थे। गांधार प्रदेश में सिकन्दर से पूर्व (ईसा पूर्व चौथी सदी) २५ रत्ती के सिक्के मिले हैं। बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर (२५ रत्ती = ५ मासा = पाद) ये सिक्के पाद कहे जा सकते हैं। इस तरह प्राचीन स्थानों की खुदाई में निकले सिक्के इस बात के साक्षात उदाहरण हैं कि शतमान (= १०० रत्ती १८० ग्रेन) और पाद (= २५ रत्ती = ५ मासा) प्राचीन नामधारी सिक्के गांधार व तक्षशिला प्रांत में प्रचलित थे। इसके साहित्यिक प्रमाण भी मिलते हैं जिससे प्रगट होता है कि २० मासा (= १०० रत्ती) के सिक्के तैयार किये जाते थे। बाबू दुर्गाप्रसाद के संग्रह में भी २० मासा की तौल के चाँदी के सिक्के मिले हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि साहित्य में उल्लिखित बातें प्राप्य सिक्कों से पुष्ट की जाती हैं और यह प्रगट होता है कि भारतवर्ष में व्यवहार में प्रयुक्त तौल (८० रत्ती) से भी बढ़कर सौ रत्ती के सिक्के बनते थे। विनय पिटक में (विंशतिमासको कहापणो) बीस मासा के बराबर कार्षापण का उल्लेख मिलता है। वशिष्ठ तथा गौतम धर्मशास्त्रों में भी

पंचमासा चतुर्विंशत्या

या

मासो विंशतिमो भागो ज्ञेयः कर्षापणस्य तु

आदि वाक्यों से यही तात्पर्य निकलता है कि बीस मासा (१०० रत्ती) के बराबर तौल में सिक्के तैयार किए जाते थे। नारद ने भी किसी पूर्व सम्बन्ध पर —माषो विंशति भागस्तु पणस्य परिकीर्तितः—लिख दिया है कि २० मासे के सिक्के को पण या कर्षापण कहते थे। इन सब साहित्य के उल्लेखों का तक्षशिला से प्राप्त मुद्राओं से पुष्टि हो जाती है।

सम्भवतः बहुत प्राचीन काल (ईसा पूर्व ८००) में शतमान (१०० रत्ती) तथा पाद (२५ रत्ती) सिक्कों का प्रचार था। नन्दवंश के शासनकाल

में इस तौल को हटाकर भारतीय तौल का समावेश किया गया था। काशिका के वर्णन से—नन्दो क्रमाणि मानानि—पता लगता है कि १०० रत्ती से ८० रत्ती २० मासा से १६ मासा अथवा ४० रत्ती से ३२ रत्ती का तौल नदकाल में ठीक किया गया था। नन्दों के पश्चात् मौर्य साम्राज्य में भी भारतीय तौल का प्रयोग होता था। चाणक्य ने १६ मासे (८० रत्ती) के तौल बराबर सिक्के का वर्णन किया है। अशोक के जितने सिक्के मिले हैं वे ५२ - ५४ ग्रेन तक के हैं। यह अधिक सम्भव है कि ३२ रत्ती (५६ ग्रेन) के सिक्के हों पर बहुत काल तक पृथ्वी में पड़े रहने या नमक खा जाने से तौल में कमी पड़ गई हो। अधिकतर सिक्के ४३ ग्रेन के भी मिलते हैं। तक्षशिला के तमाम ढेरों में यह देखा गया है कि वहाँ के सिक्के मोंह-जोदड़ो की तौल ५० ग्रेन से मिलते जुलते हैं। यह तौल उस प्रांत में बहुत समय तक प्रचलित रही। मौर्यशासन के प्रारम्भ से तक्षशिला प्रांत के तौल में परिवर्तन हो गया। इसका कारण यही था कि चाणक्य चन्द्रगुप्त की सलाह से नंदयुग की तौल को कार्यान्वित करना चाहता था। नंदराज्य जितनी दूर में सीमित था उसी में उन्होंने अपनी तौल चलायी थी; इसका प्रभाव उत्तर पश्चिम में न पड़ा। लेकिन जब मौर्य साम्राज्य विस्तृत हो गया, प्रायः सारे भारतवर्ष में फैल गया तो सर्वत्र एक ही तौल रखना उचित समझा गया। व्यापार की सुगमता तथा जनता में मतभेद को मिटाने के लिए चन्द्रगुप्त मौर्य ने नंद की तौल को ही नियमित तौल घोषित कर दिया। इस कारण पाटलिपुत्र में तो कोई परिवर्तन न हुआ लेकिन तक्षशिला प्रान्त में—जहाँ मोंह-जोदड़ो की तौल थी—तौल को बढ़ाकर सर्वत्र एकसा कर दिया गया। चन्द्रगुप्त ने सिक्कों को उसी (भारतीय तौल १६ मासा) वजन पर तैयार कराया और रूप्यादर्शक की नियुक्ति कर दी जो तौल की जाँच करता था। तौल व माप के लिए कई अन्य अध्यक्ष भी नियुक्त किये गए थे।

इन सब बातों को सुनने पर यह प्रश्न उठता है कि क्या कारण है कि भारतीय नरेश प्राचीन नियमित तौल (१६ मासा = ८० रत्ती = १४६ ग्रेन) के जानते हुए भी कम तौल के सिक्के तैयार करते रहे। तक्षशिला के ढेर में मौर्यकाल से पूर्व के पंचमार्क सिक्के कम तौल के मिलते हैं। इस प्रश्न का उत्तर तत्कालीन परिस्थिति के जानने से मिल जाता है। भारतवर्ष में चाँदी की कमी सदा रही है। यहाँ पर इस धातु की कोई खान नहीं है। बर्मा और अफगानिस्तान से यह धातु मँगायी जाती है। सदा से भारत को चाँदी के लिए अन्य देशों का मुँह देखना पड़ता है। इस कारण चाँदी को कम तौल में प्रयोग करने का प्रयत्न किया जाता रहा। यह कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि भारतवर्ष में

प्राचीन समय में चाँदी के ही सिक्के अधिक तैयार किए जाते थे। ताम्बे के सिक्के का कम प्रयोग था। छोटी मूल्य के लिए कौड़ियों का प्रयोग किया जाता था। अतएव चाँदी के बाहर से आने पर ही सिक्के तैयार होते रहे। मौर्यकाल से पूर्व चाँदी की कमी के कारण सिक्कों (पंचमार्क) का तौल कम कर दिया गया था। इसलिए तक्षशिला ढेर के सिक्कों की तौल नियमित से कम पायी जाती है। सिकन्दर के आक्रमण के बाद पश्चिमी एशिया और योरप से आना जाना अधिक हो गया। व्यापार बढ़ने लगा। विदेशों से व्यापारी मौर्य राजधानी पाटलिपुत्र में आकर ठहरते थे। चन्द्रगुप्त ने उनकी देख-रेख तथा आराम पहुँचाने के लिए एक कमेटी कायम कर दी थी जो छः कमेटियों में से एक थी। इस विदेशी व्यापार की उन्नति के कारण चाँदी पर्याप्त मात्रा में भारत में आने लगी। यही कारण है कि चाँदी की कमी को चाणक्य ने अर्थशास्त्र में कहीं नहीं लिखा है। पुराने समय से विपरीत मौर्यकाल में चाँदी के सिक्कों की तौल बढ़ा दी गयी और भारतीय तौल के बराबर सिक्के तैयार होने लगे। व्यापार के बढ़ने से छोटे छोटे सिक्के बनने लगे। छोटे कामों में चाँदी के सिक्के का प्रयोग नहीं होता था। कौटिल्य ने पण के छोटे भागों का भी नाम दिया है। अर्थशास्त्र में अर्द्ध-काकिणी (१०४ ग्रेन) का भी उल्लेख पाया जाता है यद्यपि इस छोटी तौल के सिक्के भारत में कम मिले हैं क्योंकि साधारण कार्य के लिए कौड़ियों का प्रयोग होता था। मौर्यकालीन राजनैतिक परिस्थिति तथा व्यापारिक उन्नति मुद्रा परिवर्तन के मुख्य कारण थे फिर भी गुप्त पूर्व काल तक व्यापार के कम होने से चाँदी की वही दशा आ गयी। यहाँ पर बतलाना आवश्यक है कि तक्षशिला प्रांत ने मौर्य शासन के हटते ही नियमित भारतीय तौल (८० रत्ती = १४४ ग्रेन) को जनता ने हटा दिया। तक्षशिला का प्रांत सदा से विद्रोही भाग रहा है। अशोक को राजकुमार की दशा में तथा स्वयं सम्राट् बनने पर वहाँ की जनता के विद्रोह को शांत करना पड़ा था। इस प्रकार के भाग पर अवसर मिलते ही (यूनानी शासन के आरम्भ होने के कारण) परिवर्तन स्वाभाविक था। अतएव तक्षशिला के ढेरों में मौर्य तौल के पश्चात् विदेशी यूनानी तौल (१२४ ग्रेन) के बराबर सिक्के मिलते हैं।

यहाँ पर यह कहना अत्यन्त आवश्यक मालूम पड़ता कि भारतीय यूनानी राज्य से पहले पंजाब आदि प्रांतों पर ईरानी शासक राज्य करते थे। उनके सिक्कों का सोने चाँदी का तौल क्रमशः १३० ग्रेन तथा ८६.४ ग्रेन था। इस तौल के सिक्के यूनानियों से पूर्व उत्तर पश्चिम भारत में प्रचलित थे। भारतीय यूनानी राजाओं को ईरानी तौल को अपनाना पड़ा। उनके क्रम से ईरानी सिक्का सिग्लोस (८६.४

ग्रेन) से कम तौल से तैयार किए गए। अर्द्धद्रम सिम्ब्रोस के आधी तौल से भी कम था। बाद में पश्चिमी भारत में भी यही तौल काम में लाया गया। क्षत्रप नहपान के सिक्के ३६·३ ग्रेन के मिले हैं। भारतीय यूनानी सिक्के भी ४० ग्रेन तक के पाए जाते हैं। गण राज्यों में भी यही तौल काम में लाया गया है। औदुम्बर, यौधेय तथा नाग गणों के चाँदी के सिक्के तौल में ४२ ग्रेन तक पाए जाते हैं। तात्पर्य यह है कि भारतीय यूनानी सिक्के; क्षत्रपों तथा गण राज्यों के सिक्के ईरानी तौल से प्रभावित हुए थे।

भारत में यूनानी सिक्के कई तौल के मिलते हैं। विदेशी यूनानी नियमित तौल ६७ ग्रेन का होता था जिसे द्रम कहते थे। भारत में चाँदी की कमी के के कारण आकार घटाकर आधी तौल के सिक्के तैयार किए गए जिन्हें अर्द्धद्रम का नाम दिया गया। यूनानी राजाओं के सिक्के अर्द्धद्रम, द्रम, दुगुना द्रम या चौगुना द्रम की तौल के बराबर बनते रहे पर खुदाई में अधिकतर अर्द्धद्रम सिक्के ही पाए जाते हैं। परीक्षा करने से पता लगता है कि इन सिक्कों की तौल करने पर रत्ती की तौल एक बराबर नहीं उतरती। इसका मूल कारण यह है कि रत्ती (बीज) का तौल सदा एक सा नहीं पाया जाता। उत्तर पश्चिमी भाग में सिक्कों को तौलने पर २·२ ग्रेन से १·७ ग्रेन तक रत्ती का वजन पाया गया है। पेशावर ढेर में रत्ती १·८ ग्रेन के बराबर उतरती है। ईरानी तौल में १·७ ग्रेन रत्ती के बराबर होती है। दूसरा कारण यह भी है कि सिक्कों के अधिक या कम घिसने से तौल में भिन्नता आ जाती है।

यूनानी राज्य के स्थान पर शक नरेशों ने उत्तरी पश्चिमी भाग में शासन किया। वे भी ग्रीक और ईरानी सिक्कों के तौल को काम में लाए। द्रम तथा दुगुने द्रम के बराबर सिक्के तैयार करते रहे। पश्चिमी भारत में शक क्षत्रप के समय में चाँदी की कमी के कारण अधिकतर अर्द्धद्रम (३२ ग्रेन) के बराबर तौल के सिक्के सदा तैयार होते रहे। इसी तौल को गुप्त नरेशों ने भी अपनाया। उनके चाँदी के सिक्के ३२ ग्रेन के बराबर तौल में मिलते हैं। तौल में कमी का कारण यह है कि सिक्कों के चलन से धातु घिस जाती है और तौल कम हो जाता है। जो सिक्के किसी स्थान में पड़े रहे स्वभावतः कम चलन से उनकी तौल नियमानुकूल मिलती है। परन्तु साधारण तथा गुप्तकालीन चाँदी के सिक्के ३२ ग्रेन के बराबर तैयार किए जाते थे।

ईसा की पहली शती से उत्तर पश्चिमी भारत में कुषाण वंश का राज्य हो गया। इस वंश को सर्वप्रथम सोने के सिक्के चलाने का श्रेय है। वीम कदफिस,

कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारियों ने सोने की मुद्रा को भी विदेशी तौल रीति पर तैयार कराया था। भारत तथा योरप से व्यापार की अधिकता के कारण रोम से सोने के सिक्के (aureus) भारत में आते रहे, अतएव उसी की तौल के बराबर (१२० ग्रेन) कुषाण राजाओं ने अपने सिक्कों की तौल निश्चित की। यही तौल बहुत समय तक प्रचलित रहा। पिछले कुषाण तथा भारत के ससैनियन नरेशों ने भी इसी तौल के बराबर सोने के सिक्के तैयार किये। चौथी शताब्दी में शक राज्यों को मिटाकर गुप्त शासकों ने अपना साम्राज्य स्थापित किया और उत्तर से विंध्य तक उनका राज्य विस्तृत हो गया। इनसे पूर्व भारत के अनेक शासकों ने विदेशी सिक्कों का अनुकरण ही किया था परन्तु गुप्तकाल में रोमन तौल के अतिरिक्त भारतीय तौल को भी काम में लाया गया। प्रारम्भिक अवस्था में तो गुप्त नरेशों ने रोम की तौल (१२० ग्रेन) के बराबर सोने के सिक्के तैयार किये परन्तु स्कन्दगुप्त ने इसके अतिरिक्त भारतीय तौल की रीति (१४४ ग्रेन) को भी काम में लाकर सुवर्ण ढंग के सिक्के तैयार कराया था। इस प्रकार रोम तथा सुवर्ण तौल (१२० ग्रेन तथा १४४ ग्रेन) दोनों गुप्त काल में प्रचलित रहे। पिछले गुप्त नरेश तथा बंगाल (गौड़) के राजाओं ने केवल सुवर्ण तौल (१४४ ग्रेन) के बराबर अपना सिक्का तैयार कराया। वे सिक्के शुद्ध सोने के नहीं बनते थे और बनावट भी भद्दी रहती थी तो भी उनका अनुकरण चलता रहा। ईसा की छठी सदी के बाद प्रायः द्रम की तौल (६२ ग्रेन) के बराबर सिक्कों का बनना आरम्भ हो गया। हूण तथा ससैनियन राजाओं के सिक्के साठ ग्रेन के बराबर मिलते हैं। इन राजाओं के सिक्कों की नकल पर राजपूताना और गुजरात में गधिया नामक सिक्के कई सौ वर्षों तक प्रचलित रहे जो द्रम की तौल के बराबर थे। पीछे चलकर इससे भी भद्दे तथा वजनी सिक्के बनने लगे।

मध्य काल में जितने वंशों ने अपना राज्य स्थापित किया प्रायः सभी ने सिक्के चलाये। प्रतिहार, कलचूरी, चंदेल तथा ओहिन्द के राजाओं ने साठ ग्रेन के बराबर तौल में सिक्के तैयार कराये थे। राजपूताना के मध्य कालीन रियासतों में भी इसी तौल को काम में लाया जाता था। तोमर, चौहान तथा राठौर नरेशों के जितने सिक्के मिले हैं उनकी तौल ४५—६० ग्रेन तक की है। जिससे से सिक्कों की तौल में कमी आ गयी है वरन् सभी द्रम तौल के बराबर ही तैयार किए गये थे। मध्य काल के सिक्कों में इस बात की (तौल) समानता पायी जाती है। गांगेयदेव चेदि, चंदेल तथा गहड़वाल के सोने के सिक्के तौल के कारण ही सुवर्ण द्रम के नाम से पुकारे जाते हैं।

दक्षिण भारत के शातवाहन (आंध्र) नरेशों ने मालव सिक्के की नक़ल पर सिक्के चलाना आरम्भ किया था। उनके चिह्नों के अतिरिक्त तौल को भी काम में ले आये। उस प्रांत में शक क्षत्रपों तक सब सिक्के अर्द्ध द्रम के बराबर (३२ ग्रेन) बनते रहे। मालव संघ के सिक्कों की नक़ल आंध्र में की गयी। इस कारण ३२ ग्रेन की तौल के बराबर शातवाहन सिक्के पाये जाते हैं जो उस समय प्रांत में कई सदियों तक प्रचलित रहे।

तौल में भिन्नता आने पर भी प्राचीन भारतीय अनुपात का सदा पालन किया गया। सोलह मासा तौल का एक सिक्का चाँदी के सिक्के के बराबर समझा जाता रहा। विदेशी तौल को लेकर भी ताँबे चाँदी का वही अनुपात (१६:१) माना जाता रहा। चाँदी के सिक्के अधिक प्रचलित थे। अतएव ताँबे से इनकी समानता न की गयी। आधुनिक १६ आने का एक रुपया का आधार प्राचीन मासे की संख्या (१६ मासा = १ पुराण) ही मालूम पड़ती है। आश्चर्य यह है कि यह अनुपात भारत में दो हज़ार वर्ष से चला आ रहा है।

कई बार इस बात को दुहराने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती कि भारतवर्ष में सब से पुराने चाँदी के सिक्के खुदाई में निकले हैं। इसका यह अर्थ है कि भारत में चाँदी का अभाव होते हुए भी लोग इसी धातु का उपयोग प्राचीन काल से करते चले आ रहे हैं। चाँदी के लिये इस देश को विदेशी आयात पर निर्भर रहना पड़ता था। चाँदी के साथ साथ ताँबे का प्रयोग भी पहले से होता रहा है। ताँबे के अधिक घिस जाने तथा शीघ्र नष्ट हो जाने के कारण इस धातु को सिक्के तैयार करने में कम प्रयोग किया जाता था। दूसरी बात यह है कि कौड़ी को छोटे सिक्कों के बदले में प्रयोग करते थे। इसलिए ताँबे के सिक्के कम संख्या में बनते रहे। चाँदी के सिक्कों की ही अधिकता थी। जैसा कहा गया है कि प्राचीन समय में ३२ रत्ती या ५७ ग्रेन के बराबर कार्षापण बनते रहे यूनानी राजाओं ने अपनी रीति के अनुसार सिक्के बनाया द्रम (६० ग्रेन) के आधे तौल के बराबर मुद्राएँ बनती रहीं शक राजाओं ने ३५ ग्रेन तौल में सिक्का (चाँदी का) निकाला। मध्य युग में ६० ग्रेन तथा बारहवीं सदी में ७० ग्रेन तक के सिक्के हिन्दू नरेशों ने तैयार कराये थे। क्रमशः तीसरे नम्बर पर सोने का प्रयोग सिक्कों के लिये किय गया। यद्यपि भारत के आसाम, हैदराबाद, मैसूर, मालाबार आदि प्रांतों तथा ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी में सोना मिलता है परन्तु इसका परिमाण इतना नहीं कि सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सके। अतएव विदेश से भी सोना आता रहा। गुप्त सम्राटों के शासनकाल में रोम से सोना बहुत

सिक्कों की विभिन्न धातुएँ

हुआ (सिक्के के रूप में) भारत में आया। सब से पहले चाँदी तथा सोने के सिक्के शुद्ध धातु के बनते रहे। सिक्कों की तौल बढ़ने पर उसकी कमी का प्रश्न सामने आया, अतः शासक मिश्रित धातु के सिक्के तैयार करने में लग गए। प्राचीन भारत के स्वर्ण युग (गुप्त शासनकाल) में व्यापार चरम सीमा को पहुँच गया था। विदेशों से अच्छे रूप में व्यापारिक कार्य होता रहा। सोने की कमी न थी। इतना होते हुए भी स्कन्दगुप्त द्वारा सुवर्ण तौल १४४ ग्रेन को काम में लाने पर शुद्ध सोने के सिक्के तैयार न हो पाये। उस समय सिक्कों में ५० फीसदी मिश्रण रहता था। गुप्त शासन के समाप्त होते ही सोने की मुद्राएँ उत्तरी भारत से लुप्त हो गयीं। ग्यारहवीं सदी में चेदिवंश के राजा गांगेयदेव ने सोने के सिक्के फिर से तैयार कराये परन्तु उनकी तौल विदेशी द्रम (६० ग्रेन) के बराबर ही रक्खी। चंदेल तथा गहड़वाल राजाओं ने इसी तौल को अपनाया इस कारण उनके सिक्के सुवर्ण द्रम के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत के शातवाहन राजाओं ने पोटीन तथा सीसा को सिक्का बनाने के लिए प्रयोग किया था। आंध्र राजा सीसा धातु के सिक्के को अधिक पसन्द करते थे। यही कारण है कि वर्तमान समय में सीसा के ही आंध्र सिक्के मिले हैं। इसके बाद ताँबे का मिश्रणपोटीन का नम्बर आता है। मध्यप्रांत के एक ढेर से सब सिक्के पोटीन के ही मिले हैं। इस वंश के चाँदी के सिक्के दुष्प्राप्य मुद्राशास्त्र वेत्ताओं की राय है कि आंध्र लोगों ने स्यात् दो या तीन चाँदी के सिक्के चलाये थे। इस प्रकार क्रमशः चाँदी, ताँबा, सोना, मिश्रण, सीसा तथा पोटीन को सिक्के तैयार करने में प्रयोग किया जाता था।

प्राचीन सिक्कों के तैयार करने में विभिन्न धातुओं के विषय में जानकारी प्राप्त हो चुकी है। इसके साथ साथ धातुओं के विदेश से आयात (Import) का वर्णन किया गया है। इसी से सम्बन्धित यह प्रश्न उठता है कि सोना, चाँदी तथा ताँबे के मूल्य का अनुपात क्या था? भारतीय सिक्कों का सम्बन्ध बाहरी मुद्राओं से सदा रहा है अतएव ईरानी तथा यूनानी सिक्कों के अनुपात को जानना आवश्यक है। ईरानी सिक्का सिग्लोस (चाँदी का) तथा सोने के दरिक में १३:१ का अनुपात था। यूनान में १४:१ के अनुपात का पता लगता है। उस समय भारत में चाँदी की कमी थी, सोना आसानी से मिल जाता था, अतएव भारत में चाँदी तथा सोने के सिक्कों का अनुपात १०:१ स्थिर किया जो शक क्षत्रप नहपान की नासिक प्रशस्ति के आधार पर स्थिर किया गया था। कनिंघम ने इस अनुपात को कम करके ८:१ के स्थान पर पहुँचा

सिक्कों के धातुओं का अनुपातिक मूल्य

दिया था लेकिन इसके लिए उसके पास कोई प्रमाण नहीं था। गुप्तकाल में सोना तथा चाँदी के मूल्य में विशेष अन्तर आया। पुराना कुषाण-कालीन तौल काम में लाया गया। पाँचवीं सदी के एक लेख में जमीन खरीदने का वर्णन मिलता है। कुमारगुप्त प्रथम के समय का वह लेख (वैग्राम ताम्रपत्र) सोने तथा चाँदी के सिक्कों के मूल्य पर अच्छा प्रकाश डालता है। उसी उल्लेख से यह ज्ञात होता है कि एक सुवर्ण मुद्रा (दीनार) सोलह रूपक (रुपया चाँदी) के बराबर मूल्य में समझा जाता था। इसलिए चाँदी तथा सोने के मूल्य में ६३ः१ का अनुपात स्थिर किया जाता है [पुराना तौल सोना चाँदी का क्रमशः ८० और ३२ रत्ती था। अतः १६ × ३२:८० करीब ६३ः१] डा० अलतेकर ने कई कारणों से गुप्तकाल में चाँदी सोने में ७ : १ का भी अनुपात निश्चित किया है। इस विषय में अधिक प्रमाण न होने से कोई बात अन्तिम रूप से स्थिर नहीं की जा सकती। इतना तो सभी मानते हैं कि सोने की अधिकता से चाँदी की कीमत बहुत बढ़ गयी थी या यों कहा जाय कि गुप्त-काल में कुषाण लोगों से अधिक चाँदी की कमी थी। इसलिए चाँदी की कीमत बढ़ती गयी।

गुप्तशासन के पश्चात् चाँदी भारत में पर्याप्त मात्रा में आने लगी इसलिए चाँदी का मूल्य बहुत घट गया। इस बात का प्रमाण मध्य कालीन स्मृति ग्रन्थों—नारद, कात्यायन तथा बृहस्पति—से मिलता है।

उन स्मृतियों में वर्णन पाया जाता है कि चार कार्षापण एक अंडिका के बराबर था और चार अंडिका एक सुवर्ण या दीनार के बराबर मानी जाती थी। इस तरह ४८ चाँदी के सिक्के एक सोने के सिक्के के मूल्य में बराबर होता था। इस आधार पर चाँदी सोने में ४८:१ का अनुपात प्रगट होता है। इसकी पुष्टि अन्य ग्रन्थों से भी होती है। बारहवीं सदी के ग्रन्थकार भास्कराचार्य ने भी चाँदी सोने के मूल्य में १६:१ का अनुपात बतलाया है। कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्तकाल के बाद चाँदी के आयात के कारण मूल्य घट गया। ६:१ के बदले में बारहवीं सदी में १६:१ का अनुपात हो गया। दक्षिण भारत के लेखों में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है जिससे यह प्रगट होता है कि बाहर से चाँदी के अधिक आने के कारण मूल्य कम हो गया था।

नारदस्मृति के वर्णन से चाँदी और ताम्बे के अनुपात का पता लगता है। यद्यपि भारतीय यूनानी राजाओं ने ताँबे के सिक्के भी तैयार कराये थे परन्तु उनके मूल्य के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। स्मृति ग्रन्थ से ही चाँदी ताँबे के मूल्य का १:६२ का अनुपात स्थिर किया जाता है।

भास्कराचार्य रचित लीलावती ग्रन्थ में एक चाँदी के द्रम को सोलह ताँबे के पण के मूल्य बराबर बतलाया गया है। इस प्रकार दोनों धातुओं में १:५६ का अनुपात निकलता है। यदि यह बढ़ भी जाय तो अधिक से अधिक १:७० के ऊपर नहीं जा सकता। कारण यह है कि ताँबे का मूल्य घटता ही गया। यदि बारहवीं सदी के अनुपात को मुसलमान शासकों के समय से लेकर आज तक विचार किया जाय तो यह स्पष्ट प्रगट हो जाता है कि ताँबे की मूल्य के कारण ही अनुपात घटता-बढ़ता रहा। अंगरेज लेखकों ने उसका वर्णन किया है। उस पर विचार करके वर्तमान चाँदी ताँबे का अनुपात १:६४ स्थिर कर दिया गया है। एक रुपया चौसठ ताँबे के पैसे के बराबर मूल्य में समझा जाता है।

(८) सिक्कों से इतिहास-ज्ञान

यद्यपि प्राचीन भारत का इतिहास आजकल की वैज्ञानिक रीति के अनुसार लिपिबद्ध नहीं मिलता है परन्तु भारतीय साहित्य में इतिहास को उचित स्थान मिला था। भारत के निवासी अपने देश की वार्ता को लिखने के महत्त्व को समझते थे। भारतीय इतिहास की बिखरी हुई सामग्रियों को एकत्र कर इसके प्राचीन वृत्तांतों का पता लगता है। पुरातत्त्व विषयक चीजों ने इतिहास को सुगम रूप से लिखने में सदा सहायता पहुँचायी है। उन सामग्रियों में उत्कीर्ण लेखों के बाद मुद्रा का स्थान आता है। भारतीय इतिहास में कितने काल विभाग ऐसे हैं जिनका सम्पूर्ण ज्ञान तत्कालीन सिक्कों से मिलता है। सिक्कों के अध्ययन से अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न हल हो जाते हैं। राजनैतिक, कला, धार्मिक, साहित्यिक तथा अन्य कई प्रकार की अमूल्य बातें सिक्कों से मालूम होती हैं। इस स्थान पर सिक्कों से राजनैतिक इतिहास के परिज्ञान की चर्चा की जायगी। अन्य बातों का विवरण अगले पृष्ठों में किया जायगा। सर्वप्रथम इस बात को जान लेना आवश्यक है कि ईसा पूर्व ·२०० वर्षों से सिक्के राजकीय टकसाल में तैयार किए जाते थे। उस समय से स्वतंत्र रूप से शासन करने वाला व्यक्ति ही मुद्रा तैयार कराता था।

भारत के सबसे प्राचीन पंचमार्क सिक्कों से प्रजातंत्र शासन-प्रणाली का परिचय मिलता है। गण शासक स्वतंत्र रूप से प्रजा की ओर से सब कार्य करते थे। श्रेणी या व्यापारिक संघ भी प्रजातंत्र ढंग से शासन करता रहा। भारत में यूनानी राजाओं के शासन का पूरा हाल केवल उनके चलाए सिक्कों से ही मिलता है, भारतीय साहित्य में केवल मिलिन्द का नाम आता है परन्तु अन्य विदेशी सभी नरेशों का नाम सिक्कों से पता लगता है।

दूसरी सबसे विचित्र बात जो सिक्कों से पता लगती है वह शक क्षत्रपों के शासन का पूरा वृत्तांत है। यह बातें उनके सिक्कों के अध्ययन से प्रगट हो जाती हैं और इन पर तिथियों के उल्लेख से शकों का काल (तिथि) तथा क्रमबद्ध वंशावली का ज्ञान होता है। उनकी तिथियाँ बतलाती हैं कि अमुक राजा तथा उसका उत्तराधिकारी किस समय शासन करते थे। उन सिक्कों से यह भी पता लगता है कि किसी महाक्षत्रप का अधीन क्षत्रप कब महाक्षत्रप हो गया और कितने समय तक राज्य करता रहा। शक सिक्कों पर महाक्षत्रप तथा क्षत्रप के नाम साथ खुदे रहते हैं जिससे उनका वंशवृक्ष तैयार किया गया है। संसार में इन्हीं सिक्कों पर सर्व प्रथम तिथियाँ मिलती हैं।

इन्हीं शक क्षत्रपों की मुद्राओं का अनुकरण कर गुप्त सम्राटों ने पश्चिमी भारत में अपने सिक्के चलाए। इसका यह अर्थ समझा जाता है कि उस प्रांत से विदेशी शक को गुप्त राजाओं ने भगा कर अपना राज्य स्थापित किया था। अतएव गुप्तों के विजय का ज्ञान इनके सिक्कों से प्राप्त होता है। यह राजनैतिक चाल है कि शत्रु पर विजय पाकर विजेता अपनी मुद्रा चलाया करता था और पराजित शत्रु के सिक्कों को जब्त कर लेता अथवा गला डालता था। गुप्तों ने उसी नीति के अनुसार कार्य किया। ये सभी बातें सिक्कों के देखने से मालूम होती हैं।

अगले अध्यायों में गए राज्यों के तथा जनपद के सिक्कों का विवरण दिया जायगा। तक्षशीला की खुदाई में ऐसे सिक्के निकले जिनपर नेगम शब्द लिखा मिलता है। यद्यपि नेगम संघ व श्रेणी का उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है पर नेगम सिक्के यह बतलाते हैं कि संघ (श्रेणी व्यापारिक संस्था) को भी सिक्के तैयार करने का अधिकार प्राप्त था। इन संस्थाओं की वास्तविक स्थिति का अधिक ज्ञान वैशाली तथा राजघाट की मुद्राओं (Seals) से मिलता है। अतः लेखों की बातें सिक्कों से पुष्ट की जाती हैं। सिक्कों की शैली यह बतलाती है कि अमुक संघ, श्रेणी या नेगम किस काल में सिक्का तैयार कराता रहा।

सिक्कों के प्रसार से किसी राज्य के विस्तार का आंशिक रूप से पता लगाया जा सकता है। जिस शासक के टकसाल में सिक्के तैयार किए जाते थे, उन मुद्राओं का प्रचार तो उसके राज्य में अनिवार्य था। उसकी सीमा के बाहर दूसरे राजा के सिक्के मिलते हैं। प्राचीन भारत में व्यापार के सिलसिले में तथा धार्मिक तीर्थों पर किसी राजा का सिक्के का मिलना यानी एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना स्वाभाविक था। परन्तु उस हालत में अमुक राजा के प्राप्य सिक्कों से राज्य की सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। अंत में यह कहना पड़ता है कि सिक्कों

के प्रचार से किसी राज्य के फैलाव का ठीक नक्शा तैयार नहीं किया जा सकता। उनपर अधिक निर्भर रहने से भ्रम में पड़ जाने का डर बना रहता है। तो भी कुछ हद तक सिक्के सीमा को जानने में सहायक अवश्य होते हैं। शक राजाओं के सिक्के अधिकतर पश्चिमी भारत में मिले हैं अतएव क्षत्रप वंश का शासन उसी भाग में प्रगट होता है। बंगाल के विभिन्न ढेरों में गुप्त सम्राटों के सोने के सिक्के मिले हैं जिनके आधार पर बङ्गाल में गुप्त राज्य के विस्तार का अनुमान किया जाता है। तक्षशिला के ढेरों की भी ऐसी ही हालत है। उनके अध्ययन से पता चलता है कि भारतीय यूनानी तथा शक पह्लव, गांधार और उत्तर पश्चिमी प्रांत में शासन करते थे। इन सब बातों को विचार कर सिक्कों के प्रचार से उस वंश की राज्य-सीमा का पता कुछ न कुछ लग ही जाता है।

सिक्कों के अध्ययन से किसी वंश के शासकों की संख्या बतलाई जा सकती है। प्रायः यह देखा जाता है कि एक राज्य वंश के सिक्के कुछ विशेषता अवश्य रखते हैं। यदि उसी प्रकार का सिक्का किसी समय मिला तो निर्माण शैली के आधार पर उस व्यक्ति को भी उसी वंश का शासक माना जा सकता है। अभी हाल ही में डा० अलतेकर महोदय ने सिक्कों को पढ़ कर कोशाम्बी में नव राजाओं का पता लगाया है जिनके बारे में पहले किसी को ज्ञान न था।

शक पह्लव काल में जितने सिक्के चलाए गये थे उनके अध्ययन से तत्कालीन शासन पद्धति का पता चलता है। स्पल् पह्लव नरेश अपने गवर्नर के साथ शासन प्रबंध करता था जो कि सिक्कों के लेखों (Legend) से प्रगट होता है। एक वोनान नामक राजा के सिक्कों पर प्राकृत भाषा में "महाराज भ्रातस स्पलहोरस" लिखा मिलता है दूसरे में "स्पलहोर पुत्रस ध्रमिअस स्पलगदम खुदा" है। इसका तात्पर्य यह है कि स्पलहोर एक बार वोनान के शासन में सहायक था, फिर स्वतंत्र राजा बन गया और अपने पुत्र स्पलगदम के साथ शासन करने लगा। ऐसी ही संयुक्त शासन की बात अंतिम यूनानी नरेश हरमेयस तथा कुषाण कुजुल के सम्बन्ध में सिक्कों से मालूम की जाती है। अतएव ऊपर के विवरणों से यह ज्ञात होता है कि सिक्के भारत के राजनैतिक इतिहास के निर्माण में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो रहे हैं। कालनिर्णय, वंशपरम्परा तथा शासन सम्बन्धी बातों का ज्ञान सिक्कों से होता है।

(६) सिक्के तथा धार्मिक भावनाएँ

यह तो सब को विदित है कि भारत के प्राचीन सिक्कों द्वारा इतिहास का ज्ञान होता है। पीछे इस बात की चर्चा हो चुकी है कि इतिहास निर्माण में

सिक्के कितनी सहायता पहुँचाते हैं। इसके अतिरिक्त उनके आधार पर अनेक बातों का पता लगाया जा सकता है। सिक्कों के अध्ययन से विभिन्न काल में भारत में प्रचलित धार्मिक मतों (भावनाओं) का परिचय मिलता है। ये तत्कालीन धार्मिक सम्प्रदाय तथा राजधर्म की ओर संकेत करते हैं। सिक्कों पर अंकित चित्र (-चिह्न) तथा खुदे हुए लेख से उस काल में प्रचलित धार्मिक मत के विषय में अनेक बातें कही जा सकती हैं। भारत के सब से प्राचीन सिक्कों (कर्षापण-पंचमार्क) पर जो चिह्न पाया जाता है वह सब किसी न किसी राज वंश, स्थान, श्रेणी (संघ) अथवा सुनार से सम्बन्ध रखते हैं जहाँ से या जिसके द्वारा मुद्राओं का निर्माण हुआ। ऊपर कई बार कहा जा चुका है कि पंचमार्क सिक्कों के पिछले भाग पर जो चिह्न खोदे गए थे वे जाँच करने वाले व्यक्ति व संस्था द्वारा अंकित किए जाते रहे और उनको शुद्धता का प्रमाण मानते हैं। उन चिह्नों से धर्म का कोई सम्बन्ध ज्ञात नहीं होता है।

अन्य सिक्कों के अध्ययन से पता लगता है कि उत्तर-पश्चिमी भारत तथा दक्षिण पश्चिमी भाग में शैवमत का प्रचार बहुत समय से था। सिक्कों पर उस देवता की मूर्ति या प्रतीक मिलता है जिसके आधार पर सिद्धान्त स्थिर किया जाता है। ईसा पूर्व की कई सदियों में प्रचलित सिक्कों पर शिव के वाहन नन्दि (वृषभ) और शैव चिह्न त्रिशूल की आकृतियाँ बनी मिलती हैं जिससे यह निश्चित किया गया है कि उस भाग में शैवमत के अनुयायी निवास करते थे। प्राचीन भारत के प्रजातंत्र राज्यों—यौधेय, अर्जुनामन, औदुम्बर, कुणिन्द तथा मालवा - के सिक्कोंपर वृषभ (नन्दि पर की बनी मूर्ति पायी जाती है। औदुम्बर सिक्कों पर त्रिशूल तथा परशु की आकृतियाँ भी पायी जाती हैं। उसी स्थान पर मन्दिर की आकृति बनी है जिसे वास्तुकला में सर्वप्रथम उदाहरण मानते हैं। वर्तमान समय में किसी मन्दिर के शिखर पर त्रिशूल देखकर अथवा बरांदे में वृषभ की मूर्ति देख कर ही यह प्रगट हो जाता है कि अमुक शिवमन्दिर है। उसी तरह सिक्कों पर चिह्न धार्मिक मत को बतलाते हैं। ईसा पूर्व दूसरी सदी में अयोध्या, अवन्ति कौशाम्बी आदि जनपदों के सिक्कों पर नन्दि की मूर्ति पायी जाती है। पंचाल (रामनगर का भूभाग) सिक्कों पर साक्षात् शिवलिङ्ग मिला है। अतएव इन सिक्कों के आधार पर यह बात सिद्धान्ततः कही जाती है कि संयुक्त प्रांत के मध्य-भाग तथा मालवा प्रांत में शैवमत का प्रचार था अन्यथा इन चिह्नों को मुद्रा पर स्थान नहीं मिल पाता। उत्तरी-पश्चिमी भारत में शैवमत का अधिक प्रचार था। जिस कारण उस प्रांत के विदेशी शासकों को भी उस चिह्न (वृषभ) को सिक्कों पर रखना पड़ा। यद्यपि भारत में यूनानी सिक्कों पर ग्रीक देवी देवताओं

की मूर्तियाँ पायी जाती हैं परन्तु वे भारतीय प्रभाव से वञ्चित न रह सके और प्रचलित धार्मिक सम्प्रदाय के चिह्न को अपनाया। यूनानी राजा अपलदतस तथा मिलिन्द राजाओं के सिक्कों पर नन्दि की मूर्ति मिलती है।

ईसा पूर्व की पहली शताब्दी में उसी प्रांत में शक राजा मोअ ने भी राज्य किया। सिक्कों पर नन्दि को देखकर यह स्थिर किया जाता है कि शैवमत का प्रचार उस भाग में चला आ रहा था। तक्षशिला प्रान्त में ईसा पूर्व दूसरी सदी से ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी तक शैवमत अविछिन्न रूप से फैला रहा। मोअ के बाद अपल ने भी उसी चिह्न को अपनाया था। कुशाण राजा वीम कदफिस के सिक्कों पर भी नन्दि के साथ शिव की मूर्ति मिलती है। यही नहीं खरोष्ठी लिपि में—"महरजस राजाधिराजस सर्वलोक ईश्वरस्य महीश्वरस्य वीम-कदफिस"—लिखा पाया जाता है। इससे स्पष्ट प्रगट होता है कि राजा भी शैव धर्मावलम्बी था तथा उस भाग में सभी शिव के अनुयायी थे। उसी का उत्तराधिकारी कनिष्क कुशाण वंश का सब से शक्तिशाली राजा हुआ है। उसने अन्य ईरानी या यूनानी देवताओं के साथ शिव को सिक्कों पर स्थान दिया था। कनिष्क के ताँबे के सिक्कों के पीछले भाग पर शिवमूर्ति और यूनानी लिपि में ओइश्ते (शिव) लिखा रहता है। ईसवी सन् २०० तक कुशाण वंशी नरेश हुविष्क तथा वासुदेव ने कनिष्क के सिक्कों के समान (शिव और नाम ओइशो) अपनी मुद्रा का प्रसार किया था। वासुदेव के सिक्को पर तो शिवमूर्ति के अतिरिक्त नन्दि तथा त्रिशूल भी दिखलाई पड़ता है। गांधार तथा तक्षशिला प्रान्त में प्रचलित सिक्के बतलाते हैं कि उस भाग में शैवमत का प्रचार बहुत दिनों तक बना रहा। पीछले कुशाण तथा शशैनियन राजाओं के सिक्कों पर भद्दी तरह से बनी शिव की मूर्ति पायी जाती है। सब पर ग्रीक भाषा में ओइशो (शिव) लिखा है।

मध्य भारत में पद्मावती के नागवंशी राजाओं के सिक्कों पर शिव के वाहन की मूर्ति मिलती है। अतएव नाग राजाओं के राज्य में शैवमत के प्रचार का परिज्ञान होता है। कहा जाता है कि ये राजा पक्के शिवभक्त थे और अपने सिर पर शिवलिङ्ग रखते (वहन करते) थे। अतएव उनका नाम भारशिव भी मिलता है।

ईसवी सन् की चौथी तथा पाँचवीं सदी में भारत में गुप्त नरेशों का शासन था। उस समय राजा तथा प्रजा वैष्णव मत के अनुयायी हो गए थे। यही कारण है कि गुप्त सोने के सिक्कों पर गरुडध्वज (विष्णु के वाहन गरुड का ध्वजा) सदा पाया जाता है उन सिक्कों पर 'परमभागवत' राजा की उपाधि लिखी मिलती है। चाँदी के सिक्कों का भी यही हाल है। बीच में गरुड़ पक्षी की मूर्ति तथा चारों और गुप्तों की वैष्णव उपाधि 'परमभागवत राजाधिराज' लिखी रहती

है। चिह्न तथा उपाधि से प्रगट होता है कि वैष्णवमत राजधर्म का स्थान प्राप्त कर चुका था। इस साम्राज्य के पतन के बाद शैवमत का प्रचार पूर्व तथा पश्चिम भारत में ज़ोरों पर हो गया। गौड़ाधिपति शशांक प्रसिद्ध शैव राजा था अतएव उसने शिव तथा नन्दि की मूर्तियाँ सिक्कों पर तैयार कराईं। सौराष्ट्र के शासक मैत्रक नरेशों के सिक्कों पर भी त्रिशूल की आकृति मिलती है जो उनके धार्मिक भावना का द्योतक है।

पिछले गुप्त नरेशों के समय मध्य भारत में इसी सरदारों मिहिर कुल का राज्य था। इसने अपने राज्य में पूर्व प्रचलित सिक्कों का ही अनुकरण किया। मध्यभारत में प्रचलित सिक्कों पर वृषभ की मूर्ति तथा जयतु वृष लिखा मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि वहाँ शैवमत का प्रचार अवश्य था। शैवमत का प्रचार मध्ययुग तक राजपूताना में सर्वत्र था। उस काल के समस्त राजपूत शासकों के सिक्कों पर नन्दि की मूर्ति पायी जाती है। तोमर, चौहान नारवार आदि राजाओं के सिक्कों पर शैवमत का वही प्रतीक वृषभ की आकृति पायी जाती है। उस भाग मे पाए गए लेखों से इस कथन की पुष्टि की जा सकती है। उससे पता चलता है कि राजपूताने में पाशुपत तथा कापालिक (शैवमत के विभिन्न मत) सिद्धान्तों का प्रचार था।

उसी युग में बुन्देलखण्ड, मध्यप्रान्त तथा छत्तीसगढ के प्रदेशों पर शासन करने वाले चन्देल, कलचूरी तथा चेदिवंश के नरेशों ने राज्य किया। इन लोगों ने गुप्त सिक्कों का अनुकरण कर लक्ष्मी की मूर्ति को मुद्राओं पर अंकित कराया था। सन् ११९२ ई० तक इस प्रकार के राठौर राजा गोविन्द चन्द्रदेव के (सोने के) सिक्के प्रचलित रहे। इससे ज्ञात होता है कि संयुक्त प्रान्त के मध्यभाग मध्यभारत, मध्यप्रान्त तथा महानदी की घाटी में वैष्णवमत का प्रचार हो गया था। यही कारण है कि इन शासकों के सिक्कों पर लक्ष्मी को स्थापित किया गया। भारत के बाहर नेपाल तक इस धर्म का प्रचार हो गया। पूर्व मध्ययुग के सभी राजा वैष्णव धर्मानुयायी थे। परन्तु मध्ययुग से शैवमत की प्रधानता हो गयी।

(१०) सिक्कों से अन्य ज्ञातव्य बातें

सिक्कों के अध्ययन से इतिहास तथा धर्म सम्बन्धी अनेक बातों का ज्ञान हो चुका है। इनसे कुछ ऐसी बातों का पता लगता है जो साधारणतया मालूम नहीं होती परन्तु सूक्ष्म रूप से विचार करने पर प्रगट हो जाती हैं। इनसे पूर्व यह जान लेना चाहिये कि ये सिक्के किस अवसर पर तैयार किए गए थे। पंचमार्क

सिक्कों पर जो चिह्न मिलते हैं उनका सम्बन्ध स्थान तथा श्रेणी विशेष से होता है। उन्हीं सिक्कों पर 'मेरु पर्वत' वाला चिह्न मुद्रा के इतिहास में विशेष स्थान रखता था। यह एक प्रकार से सिद्ध हो चुका है कि 'मेरु पर्वत' मौर्य वंश का राज्य चिह्न था। इसको उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारत के शासकों ने अच्छी तरह अपनाया। पांचाल, कौशाम्बी के सिक्कों पर स्वतन्त्र रूप से नहीं पाया जाता परन्तु अन्य चिह्नों के साथ मिलकर खोदा गया है। पश्चिमी भारत के शक चत्रप राजाओं ने मेरु पर्वत को मध्य में रखकर सूर्य तथा चन्द्र से सीमित कर दिया। इस तरह छः सौ वर्षों तक यह चिह्न विभिन्न राजवंशों के सिक्कों पर स्थान पाता रहा है।

गुप्तकालीन सिक्कों से तत्कालीन जीवन सम्बन्धी अनेक बातों का पता चलता है। समुद्र तथा कुमारगुप्त के अश्वमेध शैली के सिक्के राजा द्वारा विजय के उपलक्ष में किये गए यज्ञ (अश्वमेध) को बतलाते हैं। शत्रुओं को पराजित कर शांतमय वातावरण में आखेट और आमोद-प्रमोद के साथ जीवन व्यतीत करने का समाचार भी गुप्त सिक्के से मिलता है। घोड़े पर सवारी करके शिकार करना, शेर को मारने की खबरें सिक्कों पर अंकित चित्रों से मिलती हैं। सिक्कों पर चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य को शेर मारते हुए योद्धा के रूप में दिखलाया गया है। समुद्रगुप्त के वीणा वाले सिक्के पर गुप्त नरेश वीणा बजाते हुए चित्रित हैं। जिससे राजा के संगीत-प्रेम का परिचय मिलता है।

मध्ययुग के सिक्कों पर घोड़े पर चढ़े राजा की मूर्ति ऊपरी भाग में तथा वृषभ दूसरी ओर दिखलाई पड़ता है। इससे पता चलता है कि राजा का जीवन सदा युद्ध में व्यतीत होता रहा। राठौर, चौहान तथा मालवा के सिक्के इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। उसी काल में मुसलमानों का आक्रमण भारत पर हुआ बहुत से शासक उनकी बढ़ती को रोकने में प्रयत्नशील थे। इस कारण उनका अधिक जीवन घोड़े पर सवारी करते शत्रुओं के मुकाबिले करने में गुजरता था।

दक्षिण भारत में शातवाहन (आंध्र) राजाओं ने मालव चिह्न को अपनाया था। यज्ञ श्री शातकर्णी के एक सिक्के पर जहाज़ अथवा नाव का चिह्न मिलता है। इससे अनुमान किया जाता है कि इस आंध्रवंशी राजा ने समुद्र पर विजय प्राप्त की और उसी के स्मारक में यह सिक्का बनाया था।

यह तो स्वयंसिद्ध है कि व्यापार के आरम्भ से ही सिक्के तैयार किये जाने लगे। सिक्कों की अधिक संख्या उस समय में व्यापारिक उन्नति को बतलाती है। मौर्य तथा गुप्त काल में अधिक संख्या में सिक्के प्रचलित थे। कौटिल्य ने

छोटी तौल के कई प्रकार के सिक्कों का वर्णन किया है। गुप्तकालीन विभिन्न शैली (प्रकार) के सिक्के अधिक संख्या में पाए जाते हैं। ये सिक्के तत्कालीन राज्य के वैभव तथा समृद्धि के द्योतक हैं। ईसवी सन् की चौथी पाँचवीं सदी में भारत से विदेशी व्यापार इतना बढ़ गया था कि सोने के असंख्य सिक्के वस्तुओं के बदले इस देश में आने लगे। इस बाढ़ को देखकर प्लिनी ने रोम के निवासियों के सुखमय जीवन की निन्दा की क्योंकि भारत को असंख्य धन देकर वस्तुएँ खरीदनी पड़ती थीं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन कालीन सिक्कों से राजनैतिक परिस्थिति का ज्ञान किया जा सकता है। सिक्कों के धातुओं में मिश्रण का पता लगा कर विद्वानों ने यह अर्थ निकाला है कि उस धातु की कमी अथवा विदेशी आक्रमण से उत्पन्न कठिनाईयों के कारण ही शुद्ध धातु के सिक्कों के स्थान पर मिश्रित धातु की मुद्राएँ तैयार की जाती थीं। गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त की मिश्रित सोने की मुद्राएँ इसके प्रमाण स्वरूप उपस्थित की जा सकती हैं। व्यापार की कमी तथा हूणों के आक्रमण ने गुप्त मुद्रानीति में परिवर्तन ला दिया। यद्यपि उसने भारतीय सुवर्ण तौल (८० रत्ती) को अपनाया परन्तु धातु की शुद्धता को स्थायी न रख सका।

संक्षेप में यह कहना उचित प्रतीत होता है कि सिक्कों के सूक्ष्म अध्ययन से इस तरह की अनेक बातें मालूम पड़ती हैं।

(११) सिक्कों में कला-प्रदर्शन

भारतीय ललित कला का इतिहास बड़ा विस्तृत है। जीवन के प्रत्येक अंग में कला का प्रदर्शन किया जाता था। भारत में सिक्कों के निर्माण में पीछे चल-कर कलाविदों ने अपनी हस्त-कुशलता दिखलाई। पहले कार्षापण के बनाने में किसी प्रकार की योग्यता की आवश्यकता न थी। साधारण व्यक्ति पत्तर को पीट कर टुकड़े काट कर सिक्के तैयार करता रहा। भारतीय ग्रीक राजाओं के सिक्कों पर पशुओं की आकृतियाँ बनने लगीं। भारतीय जानवर—हाथी, घोड़े, शेर बैल आदि के चित्र ठप्पों द्वारा तैयार होने लगे। यूनानी कला का कुछ प्रभाव ग्रीक सिक्कों पर दिखलाई पड़ता है। राजा की आकृति तथा विभिन्न यूनानी देवताओं का प्रदर्शन विदेशी ढंग से होता रहा। ईसा पूर्व पहली सदी में कुषाणवंशी वीम कदाफिस के सोने के सिक्कों पर शिव की मूर्ति मिलती है। अन्य कुषाण नरेशों के सिक्कों पर राजा ईरानी वस्त्र पहने दिखलाया गया है। यद्यपि वे मूर्तियाँ कला की दृष्टि से अच्छी नहीं कही जा सकतीं परन्तु सिक्कों से वस्त्र के पहनने का प्रकार व ढंग मालूम पड़ता है। गुप्त नरेशों ने भी स्टैन्डर्ड प्रकार के सिक्कों

(गरुड़ध्वजांकित) पर ईरानी वेश तथा वस्त्र को अपनाया। लम्बे कोट तथा सिर पर गोल टोपी पहने राजा की मूर्ति है। कुण्डल, गले में हार, भुजदण्ड तथा कंकण आदि आभूषणों से सुशोभित राजा का शरीर है। गुप्तकालीन ललित कला (मूर्ति) में एक विशेषता है कि मूर्तियों के सिर के चारों तरफ प्रभामण्डल बनाया जाता था। सारनाथ की पद्धति में बुद्ध की मूर्तियों में सर्वत्र प्रभामण्डल दिखलाया गया है। वही तरीका गुप्तकालीन सिक्कों पर दिखलायी पड़ता है। राजा तथा लक्ष्मी की मूर्तियों में प्रभामण्डल का होना गुप्त सिक्कों की विशेषता है। भारतीय वेशभूषा में समुद्रगुप्त बैठ कर वीणा बजा रहा है, सिर के चारों ओर प्रभामण्डल से मुख की शोभा बढ़ गयी है। इसी प्रकार व्याघ्र मारने वाले सिक्के में राजा आखेट की चित्तवृति या भाव में दिखलाया गया है। इसी को तो कला का सच्चा प्रदर्शन कहेंगे। कुमारगुप्त प्रथम के मोर वाला सिक्का भी गुप्त-कला का प्रतीक माना जा सकता है। गुप्त मूर्तिकला मे मोर पर सवार कार्तिकेय की मूर्ति का विशेष महत्त्व दिया जाता है। यह काशी के कला-भवन में सुरक्षित रक्खा है। ठीक उसी ढंग की मूर्ति (कार्तिकेय की) कुमार के सिक्के पर बनायी गयी है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत के स्वर्ण युग की कला—जो चरम सीमा को पहुँच गयी थी—का ठीक ठीक प्रदर्शन सिक्कों पर भी मिलता है। इनके सर्वत्र प्रचार के कारण कलाकारों ने अपनी कुशलता का परिचय सिक्कों द्वारा जनता को दिया था।

सिक्कों पर कला का प्रदर्शन उसकी अवनति के साथ घटता गया। यद्यपि मध्य में भी पाटलिपुत्र, बंगाल आदि स्थानों में मूर्तियाँ बनती रहीं परन्तु राजा तथा जनता ने कला में विस्तार तथा प्रचार को मन से गिरा दिया मूर्तियां केवल मन्दिर में पूजानिमित्त रक्खी जाती रहीं। दुर्ग तथा मन्दिर निर्माण में कला को उचित स्थान दिया गया पर सिक्कों के महत्त्व को समझ न सके अथवा कलाविदों का ध्यान उस तरफ से हट गया। किसी भी भद्दे तरीके पर सिक्के ढाले जाते रहे। सस्सैनियन राजाओं की भद्दी मूर्तियों का राजपूताने में नकल किया गया। सिक्कों पर राजा की मूर्ति इतनी भद्दी तरह से बनने लगी कि अन्त में सिक्कों पर मूर्तियों का पहचानना असम्भव हो गया। केवल एक गोल सी शकल बना-दी जाती रही। इसी भद्देपन के कारण उन सिक्कों को गधिया मुद्रा के नाम से पुकारते हैं।

इस प्रकार कला की उन्नति के साथ सिक्कों पर कला का प्रदर्शन अच्छे ढंग का मिलता है और शनैः शनैः उपेक्षा के कारण उन पर भद्दापन का साम्राज्य हो गया।

(१२) सिक्कों के चिन्ह

भारतवर्ष में पि बहुत पुराने समय से सिक्के चले आ रहे हैं परन्तु उन पर लेख (Legend) खुदवाने की प्रथा ईसा पूर्व दूसरी सदी मे चली। उससे पूर्व के सिक्कों पर चिह्न ही चिह्न दिखलाई पड़ता है। लेख अंकित कराने पर भी सिक्के की दूसरी ओर मध्यभाग में किसी प्रकार के चिह्न अवश्य रक्खे जाते थे। चिह्न शब्द से तात्पर्य यही माना जा सकता है कि अमुक वस्तु के पहचानने में वह (चिह्न) साधक समझा जाता था। सम्भवतः इसी भावना को लेकर प्राचीन समय में सिक्कों पर चिह्न तैयार किए जाते थे। भारत के सबसे प्राचीन सिक्के पंचमार्क पर अनेक चिह्न मिलते हैं जिनके विषय में अभी एक मत नहीं है। उनके ठीक अर्थ का पता नहीं लग सका है। भारतीय तथा पश्चिमी विद्वानों ने पंचमार्क सिक्कों के चिह्नों की सार्थकता बतलाने का प्रयत्न किया है तथा काशी के विद्वान बाबू दुर्गाप्रसाद ने इस ओर प्रशंसनीय कार्य किया है। सिक्कों के अध्ययन से कोई निश्चित सिद्धान्त तय नहीं हो सका है। ऊपरी भाग में एक ही तरह के चिह्नों को समूह में रखकर कालनिर्णय का प्रयत्न किया जाता है। विद्वानों का मत है कि ये सिक्के संघ श्रेणी द्वारा तैयार किए जाते थे, अतः बहुतों पर जो समान चिह्न हैं वह एक ही संस्था के चलाए मालूम पड़ते हैं। एक समूह में कई चिह्न विभिन्न बातों को बतलाते हैं। कोई चिह्न स्थान के लिए, कोई संस्था के लिए अथवा कोई राजवंश के लिए रक्खा गया है। ऊपरी भाग के बनिस्बत दूसरी ओर कम या अधिक चिह्न पाए जाते हैं। इनका भी कुछ महत्व था। जब एक सिक्का किसी संस्था से चलकर दूसरी श्रेणी के पास आता था तो उसके धातु और तौल की जाँच होती थी। अमुक सिक्के को शुद्ध तथा ठीक वजन का पाकर पीछे की ओर वह संस्था निशान लगा देती थी। इस प्रकार तीसरे, चौथे पाँचवें आदि श्रेणियाँ अपना चिह्न उस पंचमार्क के पीछे लगाया करती थीं। आरम्भिक अवस्था में सम्भवतः कम निशान मिलेंगे और ज्यों ज्यों उसका प्रसार होता गया चिह्नों की संख्या बढ़ती गयी। यहाँ तक कि स्थानाभाव के कारण एक चिह्न दूसरे को ढक लेता है। पंचमार्क सिक्कों का प्रचार विदेशी सिक्के के प्रचलन से शनैः शनैः कम होने लगा।

भारत में प्रायः सभी राजा एक न एक तरह का राज्य चिह्न रखते थे। पंचमार्क सिक्कों पर मेरु पर्वत के चिह्न को विद्वानों ने मौर्य वंश का राज्यचिह्न माना है। सहगौरा पत्र पर तथा बुलंदीबाग (पटना) से प्राप्त मौर्य स्तम्भों पर वैसा ही चिह्न (मेरु पर्वत) देखा गया है। इसी आधार पर मेरु पर्वत वाला सिक्का मौर्यवंशी मुद्रा माना जाता है।

ईसा पूर्व २०० से भारतीय यूनानी राजाओं का शासन यहाँ प्रारम्भ हुआ। चूँकि वे यूनान के निवासी थे अतएव अपने सिक्कों पर यूनानी देवी-देवताओं को स्थान दिया। हरक्यूलस, ज्यूपिटर पैलास, नाना आदि उनके सिक्कों पर चित्रित मिलते हैं। भारत में राज्य करने के कारण इस देश के चिह्नों को ग्रीक राजाओं ने भी अपनाया। अथवा यों कहा जाय कि भारतीय जनता के प्रिय बनने के लिए नन्दि, हाथी, घोड़ों आदि जानवरों के चित्र सिक्कों पर देने लगे। इसी के साथ साथ भारतीय तौल को भी काम में ले आए। उन सिक्कों का प्रभाव इतना गहरा था कि यूनानी नरेशों के बाद गांधार तथा पंजाब में कुषाण राजाओं ने जो सिक्के तैयार कराए उन पर यूनानी देवी तथा देवता को अधिक संख्या में अंकित किया गया। यद्यपि उन राजाओं ने भारतीयपन को छोड़ा नहीं तथापि शिव तथा बुद्ध के सिवाय किसी अन्य देवता की मूर्ति नहीं मिलती। कदफिस, कनिष्क हुविष्क तथा वासुदेव के सिक्कों पर ईरानी, यूनानी तथा हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ मिलती हैं। कुषाण वंश का कोई विशिष्ट चिह्न नहीं था।

कुषाण राजाओं से पूर्व शक क्षत्रप के सिक्कों पर मेरुपर्वत का चिह्न पाया जाता है। स्यात् उन लोगों ने पंचमार्क सिक्कों से नकल कर लिया था। यह उनका विशेष चिह्न था जो सदा क्षत्रप मुद्राओं पर मिलता है। ईसा पूर्व पहली तथा दूसरी शताब्दियों में पंजाब तथा उत्तरी पश्चिमी राजपूताने में प्रजातंत्र (संघ) शासन प्रचलित था। उनके मुख्य अधिकारी वर्ग ने सिक्के तैयार कराये जिन पर कई प्रकार के चिन्ह मिलते हैं। जिनमें नन्दि (बैल) की प्रधानता दिखलाई पड़ती है। सम्भवतः जिस भूभाग में संघ शासन था वहाँ शैवमत के प्रचार होने के कारण धार्मिक चिह्न (शिव का बाहन) नन्दि को सिक्कों पर चित्रित किया। यह अवस्था बहुत समय तक न रही उनके समकालीन कई जनपद राजा थे जिनका एक खास तरह का चिह्न था। भारत में प्रधान स्थानों के चिह्न भी स्थानीय सिक्कों पर स्थान पा चुके थे। पंचालदेश का खास चिन्ह था जिसके बीच में शिव लिङ्ग बायीं ओर घेरे में वृक्ष तथा दाहिनी ओर सर्पों से बना वृत्त सम्मिलित था। ये तीनों मिल कर पांचाल चिह्न कहे जाते थे और एक साथ प्रयोग किए जाते थे। कौशाम्बी चिह्न से घेरे में वृक्ष तथा नन्दि का बोध होता है। तक्षशिला तथा मालवा के विभिन्न प्रसिद्ध चिह्न थे जो उन नगरों के नाम से पुकारे जाते थे। किसी सिक्के पर इन चिह्नों को देखकर शीघ्र कहा जा सकता है अमुक सिक्का तक्षशिला अथवा मालवा से सम्बन्ध रखता है।

गुप्त सम्राटों के अभ्युदय के साथ साथ मुद्रानीति में परिवर्तन पाया जाता है। गुप्त नरेशों ने वैष्णव होने के कारण गरुड़ध्वज को सिक्के पर महत्वपूर्ण स्थान

दिया और सभी सम्राटों ने गरुड़ध्वजांकित सिक्का तैयार कराया। इससे स्पष्ट है कि गरुड़ध्वज गुप्तवंश का राज्य चिह्न था। इतना होते हुए भी गुप्त नरेशों ने विभिन्न अवसरों से सम्बन्धित स्मारक सिक्कों का प्रचार किया था। वीणा बजाते हुए समुद्रगुप्त का सिक्का तथा दृश्य (नाटक) देखते हुए चन्द्रगुप्त के सिक्के विशिष्ट अवसर पर तैयार किए गये थे। कुमारदेवी और लिच्छवी का सिक्का विवाह के स्मारक में तथा अश्वमेध वाला सिक्का दिग्विजय के उपलक्ष में निकाले गये थे। इस नीति के कारण गुप्त सिक्कों का ढंग बढ़ जाता है अन्यथा राज्य-चिह्न के साथ एक ही प्रकार का सिक्का तैयार हो सकता था। गुप्तवंश के अंत हो जाने पर भारत की छोटी छोटी रियासतों ने सब मिलकर केवल दो ही चिह्न का समावेश अपने सिक्कों पर किया। उत्तरी पश्चिमी व राजपूताने के राज्यों ने नन्दि को अपनाया। बुन्देलखण्ड तथा मध्यप्रांत में गुप्त सिक्कों की लक्ष्मी की मूर्ति को सब राजाओं ने चित्रित किया। इस प्रकार नन्दि तथा लक्ष्मी मध्यकालीन सिक्कों पर यथास्थान पायी जाती हैं।

दक्षिण भारत के सब से पुराने सिक्के आंध्र जातीय के मिलते हैं। इन सिक्कों पर क्षत्रप राजाओं के सदृश सुमेरु पर्वत और उज्जयिनी (मालव) चिह्न पाया जाता है। इसका कारण यह है कि राजा शातकर्णी ने क्षत्रपों को परास्त कर आंध्र राज्य को मालवा, सौराष्ट्र तथा उपरान्त तक विस्तृत किया। सौराष्ट्र में क्षत्रप के सिक्के प्रचलित थे। मालवा में सिक्कों पर मालव चिह्न वर्तमान था। अतः दोनों चिह्नों को आंध्र राजाओं ने अपनाया। चोड मंडल के किनारे पर आंध्र लोगों के सीसे के सिक्के मिले हैं जिनपर जहाज़ तथा मालव चिह्न मिलते हैं। स्यात् किसी जलबेड़े के विजय के स्मारक में जहाज का चिह्न सिक्कों पर रक्खा गया था। उनका कोई विशेष प्रकार का राज्यचिह्न न था। जिस प्रांत में सिक्के बनते रहे उसी स्थान का चिह्न सिक्कों पर अंकित कर दिया जाता था जो एक राजनैतिक बात समझी जाती थी। सारांश यह है कि राज्यचिह्न को प्रधान स्थान देकर भी स्थानीय या स्मारक चिह्नों की उपेक्षा न की जाती थी।

दूसरा अध्याय

पञ्चमार्क (आहत) सिक्के

पंचमार्क अंग्रेजी शब्द है। इसका अर्थ होता है या इस शब्द से उन सिक्कों का बोध होता है जिनपर पुराने समय में चिह्न लगाया जाता था। पिछले अध्याय में बतलाया जा चुका है कि कि भारतवर्ष में सब से प्राचीन सिक्कों का नाम पुराण या धरण मिलता है। पंचमार्क से उन्हीं का बोध किया जाता है। समयान्तर में कर्षापण का भी नाम दिया गया। इसी का संक्षिप्त नाम 'पण' भी पुस्तकों में उल्लिखित मिलता है। इसलिए यहाँ उन्हीं प्राचीन उपलब्ध सिक्कों का वर्णन किया जायगा। अभी तक तो उनके सिद्धान्तों, प्राचीनता और तत्सम्बन्धी अनेक बातों का विवेचन किया है। इस स्थान पर सिक्कों को देख कर उनके साक्षात् बनावट से ऐतिहासिक बातों की चर्चा की जायगी। प्राचीन नामों का प्रयोग न कर आजकल प्रचलित नाम 'पंचमार्क' ही सब लोग अपना लिए हैं। उन सिक्कों पर चिह्न लगाने (बनावट) के कारण ही ये पंचमार्क (Punch marked) विशेष निशान वाले, नाम से प्रसिद्ध हैं वरन् ये वही सिक्के हैं जिन्हें पुराण अथवा कर्षापण के नाम से वर्णित किया गया है।

नामकरण

पहले ब्राह्मण ग्रन्थों में ये सिक्कों शतमान के नाम से उल्लिखित हैं। संस्कृत तथा बौद्ध साहित्य में ये पुराण अथवा धरण के नाम से प्रसिद्ध हुए। ताँबे के सिक्के का नाम कर्षापण था (कर्षापणस्तु विशेषः ताम्रिकः कार्षिकः पणः) पीछे से चाँदी तथा ताँबे दोनों धातुओं के सिक्के के लिए कर्षापण का प्रयोग होने लगा इसका विशिष्ट कारण था। भारत में एक ही विशुद्ध धातु को लोग पसंद करते थे। कौड़ी के चलन से ताम्बे के छोटे सिक्के बहुत कम बनते रहे। चाँदी विदेशी तथा ताम्बा देशी धातु थी। अतः मामूली रियासतों मालवा तथा ईरान—ने ताँबे को अपनाया। परन्तु ऊँचे समाज में चाँदी का ही प्रयोग होता रहा। इस प्रकार ताम्बे का प्रयोग घट गया। उसी समय से कर्षापण चाँदी तथा ताम्बे दोनों धातुओं के सिक्के के लिए प्रयोग होने लगा। जातकों में ऐसे उदाहरण मिलते हैं। कौटिल्य के समय में पण (कर्षापण का संक्षिप्त नाम) से चाँदी के सिक्के का बोध होता था। कुछ लोगों का यह भी

मत है कि कर्षापण तौल का नाम था बाद में सिक्के के लिए प्रयुक्त होने लगा। दोनों की तौल में अन्तर था। चाँदी का सिक्का ३२ रत्ती तथा ताम्बे का ८० रत्ती का होता था। मासक से छोटे सिक्कों का बोध होता था। इस प्रकार पंचमार्क सिक्कों के लिए प्राचीन नाम पृथक पृथक मिलते हैं। जैसा वर्णन किया जा चुका है कि अत्यन्त प्राचीन काल से भारतवर्ष में ताँबे तथा चाँदी के सिक्के प्रचलित थे। चाँदी की संख्या बहुत अधिक थी। साधारणतया यही देखने में आता है कि पंचमार्क सिक्कों पर लेख तथा तिथि उल्लिखित नहीं मिलती। उनकी शकल बड़ी भद्दी है। किसी राजा के नाम अथवा अधिकारी के नामों की अनुपस्थिति में यह कहना बड़ा कठिन है कि ये सिक्के किस वंश के हैं किस समय तैयार किए गए, किस व्यक्ति ने उन पर ठप्पा दिया और किस स्थान पर बनाए जाते रहे। मुद्रा शास्त्रवेत्ताओं के लिए पंचमार्क सिक्कों के बारे में निश्चित मत कायम करना बड़ी कठिन समस्या रही है। अभी भी उस स्थिति में कुछ परिवर्तन न हो पाया है। पंचमार्क सिक्कों के विषय में जो कुछ कहा जाता है या कहा गया है वह उनके चिह्नों (symlols) को देख कर परीक्षा कर तथा अनुमान कर स्थिर किया जाता है। उनके अंग्रेजी नाम (पंचमार्क) से पता चलता है और देखने से भी ज्ञात होता है कि उन पर कई प्रकार के चिह्न ठप्पे (Panch) से अंकित किए गए हैं। उनमें कोई क्रम नहीं है। अतएव बहुत से चिह्नों के मिश्रण से गड़बड़ी हो जाती है। ठप्पा मारते समय असावधानी के कारण एक चिह्न दूसरे को ढक लेता है जिसके कारण उनको पृथक करना तथा भेद बतलाना कठिन हो जाता है। चिह्नों के विभेद से ही ऊपर नीचे के भाग को समझा जाता है। इस तरह तमाम चिह्नों से युक्त प्राचीन पुराण या कर्षापण आजकल पंचमार्क सिक्कों के नाम से विख्यात हैं।

पंचमार्क का आरम्भ

पिछले अध्याय में भारत में सिक्कों के आरम्भ का विवेचन विस्तृत रूप से किया गया है। प्रायः सभी विद्वान इस बात को मान लिए हैं कि भारतवासियों ने ईसा पूर्व १००० वर्ष में किसी प्रकार के सिक्के को तैयार किया था। वैदिक तथा बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर तो यह तिथि और पीछे जा सकती है। परन्तु पुरातत्व की खुदाई में पंचमार्क से प्राचीन सिक्के उपलब्ध नहीं हुए हैं अतएव व्यवहार की दृष्टि से इन्हीं को सब से पुराना सिक्का कहा जा सकता है। शतपथ ब्राह्मण में जो तौल (१००-रत्ती) का वर्णन आता है उसी तौल के सिक्के तक्षशिला के ढेर में मिले हैं जिनके आधार पर यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये पंचमार्क सिक्के ईसा पूर्व ८०० वर्ष में अवश्य तैयार किए

जाते थे। उस समय से लेकर ई० पूर्व ३०० वर्ष तक (सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के समीप) पंचमार्क सिक्के अवश्य इस देश में प्रचलित थे। सिकन्दर के आक्रमण के बाद भारत में विदेशी सिक्के आ गए जिनपर राजा की मूर्ति तथा लेख वर्तमान थे। इन यूनानी सिक्कों से पूर्व भारतवर्ष में पंचमार्क सिक्कों का प्रचार रहा परन्तु विदेशी सिक्कों के आगमन से भारतीय मुद्रा का अंत न हो गया। वे किसी न किसी रूप में ईसाई की तीसरी सदी तक उत्तरी भारत में प्रचलित थे। विद्वानों का कहना है कि उसी प्रकार के सिक्के दक्षिणी भारत में ईसवी ६०० तक चलते रहे। मौर्य युग में पंचमार्क का खूब प्रचार था जो इसका अंतिम काल समझा जाता है। इससे पूर्व नंद तथा शेशनाग का शासन काल में भी ये ही सिक्के काम में लाए जाते थे। उनका प्रारम्भिक इतिहास ठीक तरह से ज्ञात नहीं है परन्तु जैसा कहा गया है साहित्यिक प्रमाणों पर पंचमार्क का आरम्भ ई० पूर्व ८०० से कम नहीं माना जा सकता। तक्षशिला से प्राप्त सिक्कों की तौल (१०० रत्ती) साहित्य में उल्लिखित वज़न के बराबर हो जाती है इन सब बातों पर विचार करके ई० पूर्व १००० वर्ष में पंचमार्क का आरम्भ माना जा सकता है। यही कारण है कि संसार में कोई सिक्का पंचमार्क से मुकाबिला नहीं कर सकता। ये संसार में सब से पुराने सिक्के हैं।

पंचमार्क सिक्के कई आकार के मिलते हैं। कोई लम्बा, चिपटा चतुर्भुज, अंडाकार, चौकोर तथा गोल आदि सकल के मिले हैं। सबसे पहले चाँदी या ताँबे के छड़ को काट कर सिक्के तैयार किए जाने लगे।

सिक्के तैयार करने की विधि और स्थान

ऐसे पंचमार्क शतमन के नाम से विख्यात थे जिनका तौल सबसे अधिक १०० रत्ती होता था। समयान्तर में इन्हीं छड़ों को पीटकर चपटा कर दिया गया और उनपर ठप्पे लगाए जाते थे। ये सिक्कों से सदा छोटे रहते थे। चूँकि इन्हें छड़ को पीट कर तैयार किया जाता था इसलिए उनकी शकल भद्दी होती थी। किसी आकार का सिक्का तैयार हो जाता था। तीसरे प्रकार की शैली पहले से वैज्ञानिक थी। चाँदी या ताँबे के चादर को पतला बनाकर विशेष आकार— चौकोना, गोल—के छोटे-छोटे टुकड़े काट लिए जाते थे। उनको तौला जाता था। यदि उनकी तौल निश्चित तौल (३२ रत्ती) से अधिक होती तो किसी किनारे (कोने) से थोड़ा सा भाग काट लिया जाता ताकि उनका तौल ठीक हो जाय। तब उन पर चिह्न लगाया जाता था। इसलिए कोई भी सिक्के ठीक आकार—गोल या चौकोने—के नहीं रह जाते थे। सर्वप्रथम जो कार्षापण तैयार किए गए वे बहुत पतले और चौड़े होते थे।

कालान्तर में ये मोटे पत्तर से काट कर बनाए जाने लगे। इस ढंग के पंचमार्क (कार्षापण) किस स्थान पर तैयार किए जाते थे यह ठीक तौर पर कहा नहीं जा सकता। साधारणतया ऐसे पंचमार्क अनगिनत संख्या में मिलते हैं। कई स्थानों से मिट्टी की पक्के गोल वस्तुएँ मिली हैं जिनपर आकृति या चिन्ह भी मिला है। उन्हें मुद्रा (Seal) के नाम से पुकारा जाता था। परंतु आजकल वे मिट्टी के साँचे माने जाते हैं जिनमें सिक्का ढालकर तैयार किया जाता था। मथुरा तथा कोण्डपुर (हैदराबाद दक्षिण) नामक स्थानों से पक्के मिट्टी के साँचे मिले हैं जिसमें धातु गलाकर नली द्वारा असली सिक्के के स्थान पर पहुँचायी जाती थी। वहाँ साँचे में विभिन्न चिह्न बने रहते थे, जो पिघले चाँदी या ताँबे के ठंडे होने पर अंकित हो जाते थे। मथुरा में एक साँचे में कई कार्षापण ढाले जाते थे। लेकिन कोण्डपुर में एक साँचे में एक ही पंचमार्क (सिक्का) ढाला जाता था। तीसरा ढंग ठप्पे से गरम धातु पिण्ड पर दबाव डाल कर तैयार करने का था। एरण-सागर जिला, मध्यप्रांत, में एक काँसा का ठप्पा (die) मिला, है जिसके मण्डल (dise) का चिन्ह अंकित कर गोलाकार कार्षापण तैयार किया जाता था। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ईसापूर्व शताब्दियों में पंचमार्क सिक्के तीनों रीतियों—पत्तर काटकर साँचे में ढालकर तथा ठप्पे से निशान लगाकर—से तैयार किए जाते थे। मथुरा, कोण्डपुर तथा एरण के अतिरिक्त अन्य स्थानों के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है।

मुद्राशास्त्र वेत्ताओं में यह विवाद का प्रश्न रहा है कि पंचमार्क (सबसे पुराने सिक्के) सिक्के किस की आज्ञा से तैयार किए जाते थे। मौर्य काल से पूर्व कोई साम्राज्य भारत में स्थापित न हो सका जो सारी बातों पर ध्यान देता। देश की समृद्धि व्यापार पर निर्भर है और व्यापार की उन्नति सिक्कों के साथ सम्बन्धित है। प्राचीन समय में भारतवर्ष का व्यापार व्यापारिक संस्थाओं (श्रेणी या नैगम सभा) के हाथ में था। राष्ट्र का समूचा व्यावसायिक जीवन श्रेणियों के संगठन पर निर्भर था। साहित्य तथा लेखों में इस प्रकार के श्रेणियों का पर्याप्त वर्णन मिलता है। वैशाली, भीटा तथा राजघाट से प्राप्त मुद्राओं (seals) में श्रेणी या नैगम सभा का उल्लेख मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि उनका एक कार्यालय था और वहीं से सब व्यापार का कार्य होता रहा। अधिक विद्वानों का मत है पंचमार्क सिक्के तैयार करने वाले का अधिकार श्रेणियों को था अथवा यों कहा जाय कि व्यापारिक संस्थाएँ सिक्के तैयार किया करती थीं। पंचमार्क सिक्कों पर ऐसे चिन्ह मिलते हैं (जिनका वर्णन आगे किया जायगा)

निर्माण-कर्त्ता

जिनमें से सम्भवतः कोई न कोई उन श्रेणियों के चिन्ह थे जिन्होंने उसे तैयार किया था। चिन्ह तो अनेक प्रकार के हैं जो पृथक पृथक स्थान की श्रेणियों के अलग अलग चिन्ह मालूम पड़ते हैं। श्रेणियों के अतिरिक्त सुनार लोग भी उस प्रकार के सिक्के (पंचमार्क) तैयार करते रहे होंगे। तीसरा मत है कि आगे चलकर शासक (स्थानीय) स्वयं सिक्के तैयार करने लगे। इसका जो कुछ भी कारण हो पर यह बात ऐसी ही अनुमान की जाती है। सम्भवतः श्रेणी तथा सराफ द्वारा सिक्के मौर्य काल से पूर्व तैयार किये जाते थे जो आवश्यकतानुसार कम संख्या में बनते रहे। विभिन्न श्रेणियों के पास यही एक काम नहीं था। अन्य कार्यों के साथ एक सिक्के तैयार करने का भी जिम्मेदारी थी। यदि कोई व्यक्ति चाँदी रखता तो भी वह सिक्के तैयार नहीं कर सकता था। उस समय जनता अमुक श्रेणी को ही जिम्मेदार संस्था मानती थी। उसका नाम भी सब को ज्ञात था। अतः जब तक उस श्रेणी अथवा सुनार (सराफ) की मुहर उस सिक्के (नगमुद्रा) पर न होती तब तक जनता उन्हें ग्रहण न कर सकती थी। चाँदी के सिक्कों पर मुहर का यह अर्थ समझा जाता कि उसकी धातु शुद्ध है और एक सा तौल है। अतः कोई व्यक्ति चाँदी के सिक्के उसी सराफ के यहाँ तैयार कराता और काम चलाता था। इस प्रकार के सिक्के बनाने का वर्णन बुद्धघोष ने सामंत पसादिका के रूपसूत्त में किया है। जिसमें नैगम द्वारा चित्रविचित्र (पंच) सिक्के तैयार करने का प्रसंग मिलता है। उसी सिलसिले में एक कथानक आता है कि एक माता अपने पुत्र को सराफ बनाना नहीं चाहती क्योंकि सूक्ष्म ठप्पों के कारण उसके बालक की आँखें खराब हो जाने का भय था। इन सब बातों से हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि ईसा पूर्व ५०० से पहले श्रेणी तथा सराफ पंचमार्क (कार्षापण) सिक्के तैयार करने के असली अधिकारी थे।

तक्षशिला की खुदाई में छोटे तथा ठीक तौल के अगणित पंचमार्क सिक्के मिले हैं जिन्हें मौर्यकालीन सिक्का माना जाता है। इतिहास के जानने वालों से मौर्य साम्राज्य के विस्तार का हाल छिपा नहीं है। उतने बड़े (अफगानिस्तान से मैसूर तक काठियावाड़ से बंगाल तक) साम्राज्य में सिक्कों का खूब प्रचार था। ऐसे विस्तृत राज्य को सम्भालने वाली सेना के बनाए रखने में मौर्य शासकों को रुपये की आवश्यकता थी। शासन के अन्य विभागों के संचालन के लिए भी रुपये की जरूरत थी। मौर्य सम्राट को रुपये जमा करने का मार्ग ढूँढना पड़ा जिसका वर्णन अर्थशास्त्र में मिलता है।

ईसा पूर्व ३०० वर्ष से पहले भारतवर्ष में साम्राज्य स्थापना की भावना नहीं

थी। चन्द्रगुप्त मौर्य ने भारत में सर्वप्रथम साम्राज्य स्थापित किया अतएव मौर्य सम्राटों को शासन के विभिन्न अंगों को नए सिरे से संचालित करना पड़ा। युद्ध के लिए असंख्य सेना रखना आवश्यक था। रुपये एकत्रित करने का मार्ग सीमित थे। उस समय व्यापार बड़े पैमाने पर था। टैक्स (शुल्क) आदि करों से आय हुआ करती थी तो भी शासक को आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ता था। मौर्यों ने अपनी अर्थनीति को इस तरह चलाया कि देश के व्यवसाय और व्यापार की उन्नति होने लगी। श्रेणियों के हाथों से आर्थिक शक्ति को मौर्यों ने पूरी तरह से हटा कर सिक्का तैयार करने का अधिकार राजा ने अपने हाथ में ले लिया। कौटिल्य अर्थशास्त्र में ऐसा वर्णन मिलता है कि उस समय (मौर्यकाल में) दो प्रकार के सिक्के प्रचलित थे। पहला कोशप्रवेश्य (Lıgal tender) जो राजकीय टकसाल में बनता था। दूसरा व्यवहारिकी कहलाता था जिसे राजा के खजाने में तो नहीं रख सकते थे परन्तु जनसाधारण में प्रचलित था। पंचमार्क सिक्के के चिन्हों विवेचन से भी यही बात मालूम पड़ती है। विशेष चिन्ह (मेरु) वाले सिक्के मौर्यों ने तैयार कराया था तथा अन्य सिक्कों के प्रचार की आज्ञा दे दी थी। उनपर राजकर्मचारी राजांक का ठप्पा लगा देता था। मौर्यकालीन टकसालों की देखरेख लक्षणाध्यक्ष नामक कर्मचारी करता था और पहले से प्रचलित और नवीन सिक्कों के शुद्धता की जाँच रूपादर्शक करता था। जाँच करने की कोई अवधि निश्चित न थी परन्तु मनु ने छः मास का समय उचित बतलाया है (षट्सु षट्सु च मासेसु पुनरेव परीक्षयेत—मनुस्मृति ८।४०३) और कौटिल्य ने जाँच की फ़ीस का भी विधान किया है। सिक्कों को जाँचने के लिए फीसदी आठवां भाग शुल्करूप में लिया जाता था। जो व्यक्ति बिना जाँच कराए सिक्के को काम में लाता था उस पर २५ पण दण्ड लगाया जाता था। पाँच फीसदी उनसे व्याजी (Profit tax) लिया जाता था। सम्भवतः वर्तमान व्याज (सूद) शब्द उसी से निकला है। इस पूरे विवरण का यह अर्थ निकलता है कि मौर्य शासकों ने तैयार करने का अधिकार अपने हाथ में ले लिया और उसका पूरा कार्य राजा की आज्ञा से होने लगा। मौर्य सम्राट् से पूर्व किसी छोटे या बड़े-शासक ने सिक्का निर्माण के कार्य को गौण समझ कर महत्व नहीं दिया या उनके पास इतने साधन न थे। मौर्य साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् इस महत्वपूर्ण विषय पर शासक ने विचार किया और सम्भवतः चाणक्य की सलाह से चन्द्रगुप्त ने इस कार्य पर भी ध्यान दिया। ऊँचे पदाधिकारी नियुक्त किए। पृथक विभाग खोल, ताकि इसमें कुशल-पूर्वक कार्य हो सके। पहली सदी भारतवर्ष में सिक्के तैयार करने का पूर्ण अधिकार शासकों

ने अपने हाथ में ले लिया। श्रेणी अथवा अन्य किसी संस्था को सिक्के तैयार करने का अधिकार न मिल सका।

पिछले अध्याय में यह कहा गया है कि भारतवर्ष में सब धातुओं के सिक्के (सोना, चाँदी तथा ताँबा) चलते थे। वेदों से लेकर संस्कृत साहित्य तक इस बात का प्रमाण मिलता है कि सोने के सिक्के बनते रहे। तत्कालीन सिक्कों का आकार अभी तक मालूम नहीं हुआ है न कोई सिक्के ही मिले हैं। प्राचीन समय में सोने के गहने बनाने का बहुत प्रचार था। मोहन जोदड़ो तथा हरप्पा की खुदाई में भी सोने के गहने मिले हैं। उस समय धन को आभूषण के रूप में एकत्रित किया जाता था। मुद्राएं भी अवश्य होंगी पर उनकी संख्या अधिक नहीं हो सकती। ईसा पूर्व ६०० वर्ष में ईरानी सोने के सिक्के मिलते हैं जिसका अनुपात चाँदी के सिक्कों के साथ दिया है। पारसी राज्य में सोने चाँदी में १:१३:३ का अनुपात था परन्तु भारत में सोने की अधिकता के कारण १:६ का अनुपात था। चाँदी विदेश से आया करती थी अतएव उसका अधिक मूल्य होना स्वाभाविक है। आधुनिक समय में विदिसा तथा मालवा के ढेर में जो सिक्के मिले हैं उनमें ताँबे की अधिकता है। इसका यह अर्थ निकलता है कि व्यवहार में ताँबे के सिक्के सबसे प्राचीन मिले हैं। भारत में सोने के सिक्के कुषाण नरेशों ने सर्वप्रथम चलाया था। उस से पूर्व उल्लिखित सिक्के अभी तक दुष्प्राप्य हैं। इस कारण सोने चाँदी का अनुपात बन्द होकर ताँबे और चाँदी को काम में लाया गया। मौर्य काल में चाँदी ताँबे का अनुपात २:४ स्थिर किया गया था। शतमान नामक सिक्के के साथ किसी अन्य धातु वाले सिक्कों का सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया था परन्तु पुराण या धरण को ताम्बे के सिक्कों से मुकाबिला किया गया। १६ चाँदी के कर्षापण (जिनकी तौल ५६ ग्रेन थी) १४४ ग्रेन तौल वाले १६ ताँबे के पण बराबर मूल्य में समझे जाते थे। ईसापूर्व तीसरी सदी तक चाँदी और ताँबे के सिक्कों को कर्षापण का नाम सर्वविदित था। अतएव यह कहा जायगा कि पुरातत्व की खुदाई से निकले तथा ताँबे के पंचमार्क सिक्के स्मृति तथा कौटिल्य वर्णित सिक्कों के समान ही है। तात्पर्य यह है कि पंचमार्क सिक्के दो धातुओं से तैयार किए जाते थे। जब तक ये सिक्के पीट कर पत्तर को काटकर तैयार किए जाते रहे तब तक उनकी धातु शुद्ध थी। परन्तु ढलने के समय से उनमें मिश्रण आरम्भ हो गया। उसका एक मात्र कारण यह था कि विशुद्ध चाँदी के सिक्के जल्दी घिस जाया करते थे अतएव उनको अधिक दिन तक स्थायी रखने के लिए ढालने के समय

धातु तथा तौल

उनमें धातुओं का मिश्रण प्रारम्भ किया गया। मौर्य कालीन सिक्कों में सम्मिश्रण आरम्भ हुआ इसका एक विशेष कारण था। जब मौर्यों ने नन्दों को जीत लिया उस समय भारत में नन्द शासक द्वारा प्रचलित तौल की रीति वर्तमान थी। उसी तौल को कायम रखने के लिए मौर्य सम्राट ने प्रयत्न किया। ताकि व्यापारी तथा जनता अप्रसन्न न हो जाय। युद्ध के कारण सिक्कों की अधिक जरूरत थी और चाँदी की कमी के कारण दाम ऊंचा हो गया था। इसलिए बाध्य होकर मौर्यों ने मिश्रण की प्रथा चलायी। ७५ फीसदी चाँदी तथा शेर २५ फीसदी में ताँबा और सीसा था। कौटिल्य ने भी लिखा है कि चौथाई भाग में ताँबा तथा सीसा मिलाकर सिक्के बनते थे (लक्षणाध्यक्षः चतुर्भाग ताम्रं रूप्यरूपं—सीसा अनान्तर्भन्य-तमं—) गोलकपुर (पटना) ढेर के सिक्कों में ८२ फीसदी चाँदी १५ फीसदी ताँबा तथा बाकी सीसा का सम्मिश्रण पाया गया है। परन्तु यह अवस्था असली पंचमार्क के समय की नहीं है। उन ढले हुए सिक्कों पर पंचमार्क की तरह चिह्न अवश्य मिलते हैं परन्तु बनाने की शैली विभिन्न थी। पंचमार्क सिक्कों के तौल के सम्बन्ध में कोई एक सी बात नहीं दिखलायी पड़ती। तक्षशिला के ढेर में सबसे पुराने पंचमार्क मिले हैं जिनकी विभिन्न तौल १०० रत्ती अथवा ४३.५ या ५४.१ मिलती है। कर्षापण का तौल प्रायः १०० रत्ती के होता था और दूसरे सिक्के आधे पण के बराबर माने जाते है। सिक्के तौल में एक दूसरे से बराबर नहीं हो सकने क्योंकि सिक्कों के चलन से घिसने का सदा डर रहता है। जितना अधिक चलन वाला (Cirenration) सिक्का होगा उसमें असली तौल (Standard Weight) से कमी जरूर होगी। जमीन में गड़े रहने के कारण भी सिक्कों को नमक खा लेता है अतः प्राकृतिक कारणों से उनकी तौल कम हो जाती है। विद्वानों का मत है कि मोहन जोदड़ो की तौल तक्षशिला ढेर के सिक्कों में पायी जाती है। तौल में भेद का एक यह भी कारण था कि रत्ती का वजन सदा घटता रहा। वह २.२ ग्रेन से लेकर १.७ ग्रेन तक तौल में उचितमानी जाती रही। अधिकतर रत्ती को १.८ ग्रेन के बराबर माना गया है। पेशावर के ढेर के रत्ती का यही वजन मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में भी १०० रत्ती का उल्लेख है। उसके बाद बौद्ध साहित्य में पाद ($\frac{1}{4}$ + १०० रत्ती) २५ रत्ती तौल का वर्णन आता है। मौर्यों से पूर्व इस तौल के सिक्के मिलते हैं। विभिन्न ढेर में पृथक पृथक तौल (४७ से ८४ ग्रेन तक) के सिक्के पाए जाते हैं। मौर्यों के राजा होने से २.६ से ५ ग्रेन तक के सिक्के घट कर ३.६ तक चले आए। अधिकतर २४ से ३० रत्ती तक के सिक्के भी पाए जाते हैं यद्यपि ३२ रत्ती (असली तौल) का ही नाम लिया जाता है। एलन ने ब्रिटिश संग्रहालय लंदन के भारतीय पंचमार्क सिक्कों की तौल ४१—५७ ग्रेन तक का

उल्लेख किया है। पहले के सिक्कों में मोहन जोदड़ो की तौल पायी जाती है परन्तु मौर्यशासन में उसी औसत को रखकर तौल बढ़ाते गए। उनसे पूर्व नन्द राजाओं ने अपना निजी तौल चलाया था अतएव मौर्य सम्राटों को उस तौल को भी अपनाना आवश्यक था। राज्य तथा व्यापार की बढ़ती से जनता की राय से तौल बढ़ाना पड़ा ताकि किसी भी भाग में मतभेद न हो। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मौर्य काल से बहुत पहले १०० रत्ती के सिक्के थे। वे घटकर २४-३० रत्ती तक चले आए थे। मौर्य सम्राटों ने उसे उचित तौल में लाकर वजन को कुछ बढ़ा दिया। इस तरह सिक्के ३२ रत्ती तक आ गए जिसका वर्णन कौटिल्य ने किया है। मनु ने भी पुराण या धरण को ३२ रत्ती का तौल का सिक्का बतलाया है। जैसा कहा जाता है कि चाँदी और ताँबे के सिक्कों में २ : ५ का अनुपात था। (१६ चाँदी का पण = १६ ताँबे कार्षापण) उसी के अनुसार ३२ रत्ती के चाँदी का सिक्का और ८० रत्ती का ताँबे के सिक्के तैयार किये गए। इन सिक्कों का दूना आधा अथवा चौथाई तौल में भी सिक्के तैयार हुए। सब से छोटे (२ ग्रेन तौल में) को काकिनी कहते थे।

पंचमार्क सिक्कों पर विभिन्न चिन्ह

अब इस बात को दुहराने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती कि भारत में सब से प्राचीन सिक्के पंचमार्क ही समझे जाते हैं। जब सर्वप्रथम सिक्के पत्तर को काटकर तैयार किए गए तो इस बात की आवश्यकता थी कि जनता में इनका प्रचार हो और सब लोग इसे ठीक समझकर व्यवहार करें। अतएव सिक्का तैयार करने वाली संस्था के द्वारा इस पर मुहर 'चिह्न' लगाया जाता जिससे सबको ज्ञात हो जाय कि यह शुद्ध धातु का सिक्का है और इसकी तौल ठीक सिद्धान्त (Standard weight) के अनुसार है। ठप्पे से जनता में इस बात की घोषणा की जाती कि इस सिक्के को उचित अधिकारी ने तैयार किया है। इन सब कारणों से चाँदी या ताँबे के पत्तरों पर चिह्न (Punch) लगाकर नियमानुकूल सिक्के तैयार किए गए। यह प्रथा ईसा पूर्व १०००—३०० वर्ष तक चलती रही। समय समय पर विभिन्न संस्थाओं ने चिह्न लगाए। एलन का मत है कि सिक्के तैयार करने वाली संस्था को यह अधिकार था कि सब चिह्न एक साथ ही लगा सकती थी। ये समय समय पर अंकित चिन्ह नहीं हैं। साधारण जनता को इनसे कोई सम्बन्ध न था। जैसा ऊपर कहा गया है कि मौर्य सम्राटों ने इसे अपने अधिकार में ले लिया था। उस समय से राजांक (राजचिह्न के साथ साथ सिक्कों की जाँच पड़ताल के समय 'दूसरे

प्रकार के चिह्न लगाए गए। इस प्रकार सब एकत्रित करके उन पंच कार्षापणों पर अनेक चिह्न आजकल दिखलाई पड़ते हैं।

उन चिह्नों की परीक्षा करके यदि उन्हें अलग अलग समूह में बाँटा जाय तो यह मालूम पड़ता है कि आरम्भ से ही एक ओर पाँच चिह्न दिखलाई पड़ते हैं। इसी को अग्रभाग कहते हैं। पृष्ठ भाग सबसे पहले पहल तो खाली ही था परंतु जाँच करते समय शुद्धता की मुहर पृष्ठ भाग पर लगादी गयी। फिर जाँच हुआ और उसी ओर मुहर मार दिया जाता था। इस तरह ज्यादा से ज्यादा चौदह चिह्न पृष्ठ की ओर मिलते हैं। ऊपर के चिह्नों से पृष्ठ भाग के चिह्न सदा भिन्न ही हैं। दोनों ओर के चिह्नों में बहुत कम समता है। इसके देखने से मन में यह प्रश्न उठता है कि ऊपरी चिह्नों का किस अर्थ में प्रयोग किया जाता था। वे किस के प्रतिनिधि हैं यह अब तक निश्चित न हो सका है। आरंभ के सिक्कों पर साफ़ तौर से सीधा चिह्न ठप्पे द्वारा लगाया जाता था परंतु समयान्तर में ये चिह्न भद्दे हो गए और एक चिह्न पहले के कई चिह्नों को मिलाकर बनने लगा। इसका यह अर्थ होता है कि पीछे के चिह्न मिश्रित होने के कारण उलझे हुए हैं। ऐसे कुल सौ से अधिक चिह्न भिन्न काल में सिक्के पर आते रहे। अग्रभाग में तो चिह्न अभी भी साफ हैं परंतु पृष्ठ हिस्से में मिट-सा गए हैं। इसका कारण यह है कि पृष्ठ भाग के चिह्न हलके ठप्पे से अंकित किए जाते थे और सालों के चलन से घिस गए। पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों ने इन चिह्नों का अध्ययन किया फिर भी कोई निश्चित मत स्थिर न कर सके। उनका अनुमान है कि ये चिह्न कई भागों में बाँटे जा सकते हैं और कालक्रम के अनुसार राजवंशों से सम्बंधित हो सकते हैं। कुल चिह्नों को छः भागों में बाँटा गया है। पहला—मनुष्य की आकृति (२) युद्ध के हथियार, स्तूप, चैत्य तथा धनुष वाण (३) पशु (४) वृक्ष (५) शिव-पूजा से सम्बंधित चिह्न अथवा ज्योतिष सम्बंधी और (६) कुछ विचित्र चिह्न। एलन का कहना है कि प्राचीन सिक्कों के चिह्न वृक्ष तथा पशु-जगत से लिये गये थे। भारतीय चिह्नों का उनपर सर्वथा अभाव है। उनका सम्बंध न बौद्ध और न हिन्दू धर्म से है। मनुष्य की आकृति को कम स्थान दिया गया है। सूर्य, षट् चक्र, पर्वत, हाथी, वृषभ (नन्दि) तथा कुत्तों की आकृति प्रारम्भिक सिक्कों पर सदा मिलती है। कभी तीन देवों की आकृतियाँ साथ साथ पायी जाती हैं।

काशी के विद्वान मुद्राशास्त्रवेत्ता बाबू दुर्गाप्रसाद जी ने इनका विशेष ढंग से अध्ययन किया और इस नतीजे पर पहुँचे कि इन चिह्नों में से अनेक तंत्र ग्रन्थ में उल्लिखित हैं। कालिविलास तंत्र नामक पुस्तक में वर्णित तांत्रिक चिह्नों को

पंचमार्क सिक्कों पर देखा गया है तथा दोनों में काफी समता है। अनेक चिह्न चित्रलिपि की तरह दिखलाई पड़ते हैं और वही हरप्पा तथा मोहजोदड़ो की मुद्राओं (Seals) में खुदे हुए हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पंचमार्क सिक्कों पर कुछ तो प्राचीन चिह्न चले आ रहे हैं और कुछ तांत्रिक या ज्योतिष सम्बन्धी हैं।

चिन्हों का वर्णन

मोहजोदड़ो से प्राप्त योगीराज पशुपति का नन्दि तथा त्रिशूल सिक्कों पर मिलता है। प्राचीन स्वस्तिका वेदि या यज्ञकुण्ड की आकृतियाँ मिलती हैं। सूर्य चन्द्रमा बहुत पहले से सिक्कों पर स्थान पा चुके हैं। उनके मिलने से (४) ब्राह्मी अक्षर बन जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि यह नन्दि का सिर का द्योतक है। विष्णु चक्र के समान षड्चक्र (स्वस्तिक के नाम से) गोलकपुर (पटना) से प्राप्त सिक्कों पर अधिक पाया जाता है। इसी तरह कई प्रकार की धार्मिक बातें ज्ञात होती हैं। विद्वानों की धारणा है कि वृत्त में विन्दु परमब्रह्म तथा शिव का प्रतीक है। वृत्त के ऊपर त्रिन्दुओं को पूर्णघट का संक्षिप्त रूप मानते हैं। पशुओं के चिह्नों को किसी न किसी देवता का वाहन माना जाता है। नन्दि शिव का, हाथी इन्द्र का, मोर कार्तिकेय का, सिंह शक्ति का, कुत्ता भैरव (शिव) का वाहन तथा मछली शुभ लक्षण समझे जाते हैं। सूर्य के चिन्ह को तंत्रशास्त्र में परमाबीजमुद्रा कहा गया है। षड्चक्र तथा षटकोण तांत्रिक चिन्ह हैं। तीन पवर्तों पर दूज का चाँद मेरु पर्वत माना गया है। ये सिक्के ईसा पूर्व ३०० वर्ष से लेकर ईस्वी सन् तक ६५ फीसदी पंचमार्क सिक्कों पर पाए जाते हैं। इन सब की परीक्षा कर इस नतीजे पर विद्वान पहुँचे हैं कि (१) कुछ चिन्ह सिक्का तैयार करने वाले अधिकारी से सम्बन्धित हैं (२) कुछ धार्मिक हैं (३) जातियों के चिन्ह (४) कुछ तांत्रिक हैं ५) कुछ चिन्हों का अर्थ पता नहीं लगता।

यदि ऊपरी चिन्हों के समूह पर ध्यान दिया जाय तो उनका कुछ न कुछ काल-विभाग स्थिर किया जा सकता है। उनके तीन भिन्न भिन्न समूह ज्ञात होते हैं।

चिन्हों द्वारा काल-विभाग

पहले समूह में बीजमुद्रा, षड्चक्र, का कोई जानवर (हाथी, नंदि) तथा दो और चिन्ह हैं। दूसरे समूह में बीजमुद्रा, षड्चक्र, कुत्ता (नंदि पर्वत पर खड़े) तथा अन्य दो चिह्न दिखलाई पड़ते हैं। तीसरे समूह में बीजमुद्रा, षड्चक्र, मेरु पर्वत तथा अन्य दो चिह्न हैं। इस तरह पाँच चिह्नों में से

प्रत्येक समूह में तीन चिन्ह अधिक सिक्कों पर मिलते हैं। अन्य दो बदलते रहते हैं। ये समूह ईसा पूर्व ३०० वर्ष से प्रचलित हैं। इससे पूर्व में भी परमाबीज-मुद्रा, षड्चक्र, पूर्णघट, षटकोण और एक अन्य प्रकार का चिन्ह तथा दूसरे समूह में बीजमुद्रा, षड्चक्र, ब्राह्मी 'म' या नंदि का सिर प्रधान है। यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि विद्वानों ने मेरु को मौर्यवंश का राजचिन्ह मान लिया है। इससे पूर्व में बीजमुद्रा तथा षड्चक्र के साथ जो मुद्राएँ मिली हैं वह सब मगध की हैं। पुराने से लेकर ईसवी सन् के पंचमार्क सिक्कों में बीजमुद्रा [जिसे सूर्य कहा गया था] तथा षड्चक्र सर्वत्र मिलते हैं। उस समय मगध के सिवाय कहीं भी साम्राज्य नहीं बना था। बिम्बसार से लेकर दशरथ तक (ईसा पूर्व ६०० १००) तक सभी ने मगध में शासन किया। अतएव पहले के दो चिन्ह मगध (स्थान) से सम्बन्ध रखते हैं। नन्दि वाला समूह नन्दों के समय का प्रगट होता है और मेरु वाला तो मौर्यों का कहा जा चुका है। कुछ विद्वानों का मत है कि ये सब सिक्के गणों के चलाए हुए हैं। नन्द तथा मौर्य राजाओं ने अपने चिन्ह (समूह में तीसरा) से मुद्रित कर उसी को फिर से चलाया। इस प्रकार अनुमानतः पंचमार्क सिक्कों का काल-विभाग किया जा सकता है। विभिन्न समूह का पृथक काल-विभाग है यह उल्लेख अग्रभाग के चिह्नों को देख कर किया जाता है। यह तो सभी मानने लगे हैं कि ये चिह्न राजवंश, श्रेणी अथवा किसी अन्य अधिकारी द्वारा अंकित किए गए थे। पृष्ठ भाग के चिह्नों से सिक्के की आरम्भ या प्रचलित अवस्था का बोध होता है। प्रारम्भिक काल में पृष्ठ भाग पर ठप्पे के एक भी चिह्न नहीं मिलते। धीरे-धीरे समय बीतने पर उस तरफ चिह्न बढ़ने लगे। अधिक काल तक प्रचलित सिक्कों पर १४ चिह्न पाए गये हैं। जब जाँच होती तो उस पर जाँच करने वाला मुहर लगा देता था। ये ठप्पे हलके लगाए जाते थे ताकि पत्तर में गहराई न पैदा हो और अग्रभाग साफ बना रहे। यह बहुत सम्भव है कि उसी समय में तैयार किए हुए दो पंचमार्क सिक्के एक से हों परंतु पृष्ठ भाग में समान चिह्न नहीं मिलते। कम चिह्न वाला सिक्का यह बतलाता है कि उसका चलन कम समय तक रहा। एक ही तरह का दूसरा सिक्का चलन के कारण काफी घिसा दिखाई पड़ता है आग की ओर पृष्ठ ओर अधिक चिह्न भी मौजूद हैं। अतः कम निशान से पूर्व का तथा अधिक चिन्ह से बाद के समय वाला सिक्का नहीं कहा जा सकता। इन सिक्कों के काल-विभाग करने से इतिहास की जानकारी में सहायता मिलती है। उस समय की परिस्थिति पर विचार कर सिक्कों का सम्बन्ध स्थिर किया जाता है।

प्रायः सभी ने यह स्वीकार कर लिया है कि पंचमार्क के चिह्नों से राजवंश का पता लग जाता है जिसने कि उन सिक्कों को तैयार किया था। सब से पहले के सिक्कों में भद्दी बनावट तथा बेतुकी शकल दिखलाई पड़ती है। उस समय तौल तथा चिह्नों पर ही विशेष ध्यान दिया जाता था। अट्ठकथा तथा विनय पिटक में पाद नामक सिक्के का उल्लेख मिलता है जिसकी तौल २५ रत्ती के बराबर थी। उस ग्रन्थ में यहाँ तक कहा गया है कि राजगृह में सिक्के प्रचलित थे। जातक ग्रन्थों में कर्षापण का नाम आता है। २४ रत्ती के सिक्के तक्षशिला तथा गोलकपुर (पटना) के ढेर में मिले हैं। इसमें आधी तौल १२$\frac{1}{2}$ रत्ती के छोटे ताँबे के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। सम्भवतः ये पाद (१०० रत्ती का $\frac{1}{4}$) हैं या उचित तौल ३२ रत्ती के बराबर तैयार किए गये थे। चलन के कारण एक चौथाई भाग घिस गए। इन पर बीजमुद्रा, षड्चक्र, पूर्णघट तथा षट्कोण आदि चिह्न मिलते हैं। इस प्रकार के सिक्कों को बिम्बसार तथा अजातशत्रु ने तैयार कराया था। बिम्बसार कालीन साहित्यिक ग्रन्थ (विनय पिटक) में वर्णित तथा खुदाई के ढेर में प्राप्त सिक्के एक ही तरह के हैं। इसमें संदेह का स्थान नहीं रह जाता है। एलन ने इस मत को मान लिया है कि इस प्रकार के सिक्के बुद्ध के समय से भारत में प्रचलित थे।

विभिन्न राजवंश के सिक्के

शैशुनागवंश

अतएव उन्हें शैशुनागवंशी सिक्के मानने में कोई आपत्ति नहीं है। बहुत से सिक्कों पर वृक्ष (बोधी) तथा ब्राह्मी म (४) बनाया गया था। सिक्कों का आकार—पतले तथा चौड़े व बड़े—देखकर ही इन्हें महापद्म के समय की मुद्रा मानते हैं। नन्दि वाले सिक्के नन्दिवर्धन तथा महानन्दि के समकालीन तैयार किए गए होंगे। ऐसे सिक्कों में तथा मौर्यकालीन सिक्कों में काफी भिन्नता दिखाई पड़ती है। पहले सिक्कों से कुछ मोटे पत्तर का, छोटे आकार और गोलाई लिए ३२ रत्ती तौल के बहुत सिक्के मिले हैं जिनके पृष्ठ भाग में मेरु का चिह्न पाया जाता है। अग्रभाग में शैशुनागवंशी चिह्न वर्तमान है। इस प्रकार के सिक्कों की परीक्षा कर यह नतीजा निकाला जाता है कि इन सिक्कों को नंद राजाओं ने तैयार कराया था। यह कई बार कहा गया है कि नंदों ने अपना तौल चलाया था। नंदकाल में भारतवर्ष धनधान्य से पूर्ण था। उसके वैभव का वर्णन यूनानी लेखकों ने भी किया है। महापद्म के पास असंख्य धन था। अतः यह कहना सर्वथा उचित है कि उसने मुद्राएँ खूब अधिक संख्या में तैयार करायी थीं। वे सिक्के इतने संख्या में थे कि उनको शीघ्र हटाना कठिन काम था।

जब मौर्यों ने नंदों से राज्य से ले लिया तो इनके सामने यह प्रश्न था कि अगणित संख्या में नंद सिक्कों को क्या किया जाय। उनको नष्ट करना बुद्धिमानी का काम न था। इसलिए मौर्यों के लक्षणाध्यक्ष ने अपने टकसाल का निशान (मेरु) उनके पीठ पर लगाई और उनको कोश प्रवेश्य बना लिया। यही कारण है कि बहुत से सिक्कों के पीठ पर (पृष्ठ भाग में) मेरु का चिह्न है जो मौर्य सिक्कों पर ऊपरी भाग में पाया जाता है। इनका तौल १०० रत्ती के बराबर मिलता है।

मौर्यवंश के सिक्कों का वर्णन करते समय यह बतलाने की थोड़ी सी आवश्यकता है कि किस परिस्थिति में इतना बड़ा साम्राज्य कायम हो सका।

मौर्यवंश के सिक्के

विदेशियों के आक्रमण को रोक कर चाणक्य की सहायता से चन्द्रगुप्त मौर्य ने मगध पर अधिकार किया। हिमालय से लेकर मैसूर तक तथा अफगानिस्तान से लेकर बंगाल तक का प्रदेश मौर्य साम्राज्य में सम्मिलित था। अशोक ने इसे और बढ़ाया। कलिंग को सम्मिलित कर धर्मविजयी बनने की इच्छा से युद्ध को छोड़ दिया। भारत के बाहर उसका राज्य अफगानिस्तान तक विस्तृत था अतएव सर्वत्र शांति रखने के लिये विशाल सेना रखनी पड़ी। चन्द्रगुप्त ने ही नंदों के सिक्कों को राजांक से विभूषित किया और सिक्के तैयार करने का अधिकार अपने हाथ में ले लिया। यद्यपि मौर्यकालीन सिक्के विशुद्ध चाँदी के नहीं मिलते परन्तु सम्मिश्रण के साथ विभिन्न तौल के सिक्के चलाए गए। ३२ रत्ती के पण को आधे, मासक (ताँबा का सिक्का) को चौथाई कर्षापण के बराबर तैयार कराया। अर्द्ध मासक और काकिनी (चौथाई मासक) की तरह छोटे सिक्के बनने लगे। इससे प्रगट होता है कि विशाल साम्राज्य की जनता तथा व्यापार के लिए नाना प्रकार के सिक्के निकालने की आवश्यकता थी।

मौर्य सिक्कों पर बीजमुद्रा तथा षड्चक्र के अतिरिक्त पर्वत पर मोर या चन्द्रमा मिलता है। विद्वानों ने मोर वाले चिह्न से मौर्यवंश (मोरिय) का अर्थ निकाला है। मोर को मौर्यवंश का राजचिह्न नहीं माना जा सकता। पर्वत पर चन्द्र मेरु वाला सिक्का अगणित संख्या में मिलता है। इसलिए वही राजांक माना जाता है। इस नतीजे पर सब लोग इसलिए पहुँचे हैं कि सोहगौरा ताम्रपत्र पर और पटना के समीप कुम्हरार नामक स्थान में मौर्य स्तम्भ पर मेरु वाला चिह्न मिला है। जिसकी तिथि ईसा पू० ३३० बतलाई जाती है। बुलंदीबाग की खुदाई में मौर्य सतह (१५ से १८ फीट नीचे) से एक मिट्टी की तश्तरी मिली है जिस पर भी मेरु का चिह्न वर्तमान है। तीसरे वैज्ञानिक प्रमाण से उन बातों की अधिक पुष्टि हो जाती है। मेरु चिह्न वाले सिक्कों की रासायनिक परीक्षा की

गयी। उसमें धातु मिश्रण का वही अनुपात मिला है जिसका उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पाया जाता है। इन प्रमाणों के बल पर मेरु वाला चिह्न मौर्य वंश का राजचिन्ह माना जाता है। जिन सिक्कों पर यह चिह्न पाया जाता है वह मौर्य कालीन पंचमार्क सिक्के समझे जाते हैं। ये अधिकतर गोलकार हैं। इन्हें साँचे में ढाल कर ३२ रत्ती तौल का सिक्का तैयार किया जाता था। मौर्य काल में चाँदी तथा ताँबे के सिक्के अच्छे ढंग से साँचे में ढाल कर तैयार किए जाते थे। चाँदी के सिक्कों में मिश्रण रहता था। उनमें ७६ फीसदी चाँदी और शेष में सीसा और लोहा रहता था। अशोक के सिक्के भारत से बाहर भी मिले हैं। उन सिक्कों का रासायनिक विश्लेषण करने पर वही धातुओं का अनुपात निकलता है जिसका वर्णन कौटिल्य ने किया है। अतएव वे सब मौर्य कालीन सिक्के माने जाते हैं। मौर्य कालीन मेरु वाला तथा मोर वाला सिक्का सर्वत्र भारत में पाया जाता है। पेशावर से लेकर गोदावरी तक मौर्य सिक्के अधिकता से मिलते हैं। अधिकतर अशोक के लेखों के प्राप्तिस्थान से ऐसे सिक्के अवश्य ही मिले हैं। सम्भवतः ये सिक्के नन्दों के समय से कुषाण काल तक भारत में प्रचलित रहे। विद्वानों का अनुमान है कि इन पुराण या कार्षापण के प्रचार होने से कुषाण नरेशों ने चाँदी के सिक्के तैयार कराने की आवश्यकता न समझी।

शुंग सिक्के

शुंग वंशीय सिक्कों के विषय में गहरा मतभेद है। यद्यपि पांचाल सिक्कों में मित्र नामधारी राजाओं के नाम आते हैं परन्तु उससे कोई तथ्य का पता नहीं लगता। डा० अलतेकर ने एक शुंगराज वाले लेखयुक्त सिक्के का पता लगाया है जो शुंग वंशीय ताँबे का सिक्का कहा जा सकता है। यद्यपि उस पर किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं मिलता तो भी लिपि के आधार पर शुंगकालीन (ईसापूर्व १८०-१५०) माना जा सकता है। इस लेख शुंगराज की पुष्टि बरहुत के एक द्वार-लेख से की जाती है जिस पर इसी तरह का 'सुगनं रजे' उल्लेख मिलता है। यह सम्भव है कि व्यक्ति का नाम न देकर वंशनाम से सिक्का तैयार किया गया हो।

सिक्कों का प्राप्ति स्थान

प्राचीन भारत के भौगोलिक विस्तार का ज्ञान रखकर आधुनिक भारतीय सीमा को भूल जाना पड़ता है। अफगानिस्तान का वर्तमान क्षेत्र भारत की सीमा के अन्तर्गत था। भारतीय नरेश चन्द्रगुप्त मौर्य तथा अशोक के अधिकार में अफगानिस्तान से लेकर बंगाल तक तथा उत्तर से मैसूर तक के प्रदेश रहे। उत्तर पश्चिमी प्रांत में पेशावर, तक्षशिला और कांगरा के ढेर में कार्षापण (पंचमार्क) पाए जाते हैं। अधिकतर इन सिक्कों के प्राप्ति-स्थान गंगा की घाटी में स्थित हैं।

संकिसा, एटा, मिर्जापुर, बलिया (संयुक्त प्रांत) और तिरहुत गया, पटना, भागलपुर (बिहार प्रांत) में इनके ढेर मिले हैं। बेसनगर, एरण, मालवा कोल्हापुर, बारंगल तथा गोदावरी की घाटी में भी कर्षापण अनगिनत संख्य में पाए गए हैं। इस प्रकार प्रायः सारे देश में ये सिक्के मिले हैं। लखनऊ लाहौर, पटना, तथा कलकत्ता के संग्रहालय में ये पंचमार्क सिक्के सुरक्षित हैं परन्तु अगणित संख्या में विदेशी (ब्रिटिश) संग्रहालय, लंदन में भी संग्रहीत किए गये हैं।

तीसरा अध्याय

भारत में विदेशी सिक्के

प्रायः सर्वसाधारण लोग यही समझते हैं कि यूनानी राजा सिकन्दर के समय से ही विदेशियों का भारत में आना-जाना शुरू हो गया। परन्तु यह धारणा सर्वथा निर्मूल है। भारतवर्ष में पश्चिमी देशों से व्यापार बहुत प्राचीन समय से चला आ रहा था। संगठित रूप से सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया और अपना प्रभाव यहाँ छोड़ गया। पिछले अध्याय में कहा जा चुका है कि लीडिया के सिक्के पश्चिमी एशिया में अच्छे प्रकार प्रचलित थे। भारत में भी विदेशी व्यापार के कारण बाहरी सिक्के यहाँ आने लगे। ईसापूर्व ६०० वर्ष में लीडिया का राज्य पश्चिमी एशिया में नष्ट हो गया और ईरान के राजा दरियावुश ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया। यदि भारत की प्राचीन सीमा तथा भौगोलिक विस्तार देखा जाय तो ज्ञात होगा कि अफगानिस्तान भी भारत में सम्मिलित था। महाभारत कालीन गांधार देश वही है। वह भाग भारत के राजनैतिक कार्य तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में सदा से सहयोग करता रहा है। अतएव प्राचीन भारतीय सीमा गंधार (अफ़गानिस्तान) तक विस्तृत माननी चाहिये। ईरान के विजयी राजा दरियावुश ने पंजाब के पश्चिमी भाग को भी जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार ईसा पूर्व ५०० वर्ष में ईरान तथा भारत का वर्णन वहाँ के लेखों में पाया जाता है। राजनैतिक सम्बन्ध बढ़ने लगा। ईरानी विजेता ने सब बातों के साथ साथ सिक्कों की ओर भी ध्यान दिया। लीडिया के सिक्के के स्थान पर उसने ईरानी मुद्रा का प्रचार किया। उसके सोने तथा चाँदी के सिक्के मिलते हैं। भारत के पश्चिमी प्रान्त में उसका राज्य हो जाने के कारण ईरानी सिग्लोस (Siglos) काम में लाये जाते थे। यही कारण है कि भारत में सब से पुराना विदेशी सिक्का सिग्लोस ही माना जाता है। चाँदी की कमी के कारण भारत में चाँदी में सिक्कों का अधिक प्रचार हुआ। लोगों ने उसका स्वागत किया। उस समय भारत में सोने की अधिकता के कारण चाँदी का अनुपात १ और ८ का था यद्यपि ईरान के राजकीय टकसालों में सोना चाँदी का अनुपात क्रमशः १ और १३:३ का था। इसके साथ पश्चिमोत्तर भारत में उसी समय से बहुत काल तक (ईसा की दूसरी सदी) फारसी लिपी (खरोष्ठी) तथा विदेशी तौल रीति कार्य रूप में लाई गई थी। विदेशी

लिपी तथा तौल रीति को अपनाने का कारण यह था कि जनता राजा का विरोध न कर सकती थी जबकि शासक उन बातों को कार्यान्वित करना चाहता था अन्यथा भारत में तो प्राचीन कर्षापण का प्रचार चला आ रहा था। विदेशी शासक ने भारतीय ढंग को हटाकर अपनी (ईरानी) रीति को स्थापित कर दिया।

ईरानी सिक्का (सिग्लोस) भारतीय ढंग से तैयार किया जाता था। उसमें अग्रभाग पर बादशाह के सिर की आकृति तथा पृष्ठ की ओर ठप्पा लगाए कुछ चिह्न रहते थे। यह सिक्के पंचमार्क की तरह दिखलाई पड़ते थे। ठप्पा लगाने की रीति भी भारत के ढंग थी। केवल भेद यह था कि सिग्लोस में खरोष्ठी लिपि में कुछ लिखा रहता था और पंचमार्क में चिन्हों का प्रयोग किया जाता था। विद्वानों में इसके बारे में मतभेद है कि कौन सा सिक्का किसके अनुकरण पर तैयार किया गया। एलन आदि पश्चिमी विद्वान यह मानते हैं कि ईरानी सिक्कों के ढंग पर पंचमार्क तैयार किये गये थे। चूंकि ईरानी लोगों ने अपना राज्य भारत के पश्चिमोत्तर भाग से भूमध्यसागर तक विस्तृत कर लिया था। अतएव उन सिक्कों का प्रचार काफी दूर तक था। भारतवासियों का आवागमन बलख तक जारी रहा अतएव व्यापार के सिलसिले में भारत से सिक्के भी वहाँ अवश्य पहुँच गये होंगे। ईरानी सिक्के जैसे भी तैयार किये जाते हों परन्तु भारत के पंचमार्क सिक्के तो उससे पूर्व काल से प्रचलित थे और उनकी निजी रीति थी।

भारत में दूसरे प्रकार के विदेशी सिक्के रोम से आए। जब भारतवासी जल या स्थल मार्ग से व्यापार की सामग्री लेकर रोम जाया करते थे तो सामान को बेंचकर वहाँ के असंख्य सिक्के भारत में सदा लाया करते। इन सिक्कों में सोने चाँदी तथा ताँबे सभी प्रकार के सिक्के सम्मिलित रहते थे। प्लिनी ने इसका बड़ा विरोध किया था परन्तु दूसरा कोई मार्ग न था। योरप वाले भारतीय माल के लिए लालायित रहते थे। उन सामग्रियों के बिना उनका जीवन सुखी न था। यही कारण है कि व्यापार के साथ असंख्य रोम के सिक्के भारत में आते रहे। ईसा पूर्व ४०० में इन सिक्कों का पश्चिमी भारत में प्रचार था। पंजाब के राजा सम्भूति ने विदेशी सिक्कों के ढंग और तौल पर अपना सिक्का तैयार कराया था। इस तरह रोम के सिक्कों का अनुकरण भारत में प्रारम्भ हो गया था। आगे के समय में कुशाण तथा गुप्त सम्राटों ने भी रोम की रीति को अपनाया तथा उस तौल के बराबर सिक्के तैयार कराए। यहाँ तक कि गुप्त युग में भारतीय सिक्कों का नामकरण (दीनार नाम) भी रोम की मुद्रा से ही किया गया था। यह मानना पड़ेगा कि भारत में जो विदेशी सिक्के आते गए उनका प्रभाव वहाँ की मुद्रानीति पर पड़ता रहा।

भारत में तीसरे प्रकार के विदेशी सिक्के यूनानी राजाओं के मिलते हैं। इन सिक्कों का भी प्रचार पश्चिमोत्तर प्रांत में ही सीमित रहा । इसका कारण यह था कि उन राजाओं ने पंजाब तक शासन किया और उसी भाग में अपनी मुद्राओं को चलाया । उन सिक्कों का प्रचलन तथा प्रभाव भारत में ईसा की दूसरी सदी तक देखा जाता है। यहाँ पर यूनानी सिक्कों के वर्णन से पूर्व उनके शासनाधिकार का संक्षेप में विवरण देना आवश्यक प्रतीत होता है।

जैसा कहा गया है कि ईसा पूर्व पाँचवी सदी से भारत के पश्चिमोत्तर प्रान्त में ईरानियों का राज्य था। उनका आधिपत्य किस प्रकार समाप्त हो गया उसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में यूनान के बादशाह सिकन्दर ने भारत जीतने का संकल्प किया। इसलिए बहुत बड़ी सेना के साथ भारत की ओर बढ़ा। पश्चिमी एशिया के भूभागों को जीतकर सीस्तान होता हुआ अफगानिस्तान में उसने आराम किया। यहाँ पर अपने नाम पर एक नगर बसाया जो वर्तमान काल में कंधार के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान प्राचीन व्यापारियों का अड्डा था। भारत के व्यापारी वहीं से होकर पश्चिम की ओर जाया करते थे। इतिहास के जानने वालों से यह बात छिपी नहीं है कि पंजाब प्रांत को जीतने में सिकन्दर को अधिक परिश्रम न करना पड़ा। एक तो उस भाग में छोटे छोटे संघ राज्य थे जो आपस में संगठित न हो सके। उस पर तक्षशिला के राजा आम्भि ने सोने के द्रव्य सिकन्दर को भेंट किए और स्वागत करके भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण दिया। जो कुछ भी हो, यहाँ पर उसका विस्तृत वर्णन न्याय संगत नहीं है। सिकन्दर ने पंजाब के कुछ भागों को जीतकर अपनी मनोकामना पूरी की। वह कई कारणों से भारत छोड़ कर शीघ्र वापस चला गया और उसके पूर्वी साम्राज्य का स्वप्न समाप्त हो गया। जाते समय उसने अपने विजीत देशों को विभिन्न भारतीय नरेशों में विभक्त कर गया। राजा पुरु तथा आम्भि को भी पजाब के भाग मिले। इसके अतिरिक्त अपनी यूनानी सेना का कुछ हिस्सा छोड़ गया जो उसके जीते हुए भाग के रक्षक समझे जाते थे।

भारत में यहाँ के निवासियों से और यूनानी लोगों से सम्पर्क बढ़ता गया। सिकन्दर की मृत्यु पश्चात् मगध के मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त ने सारे भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। पश्चिमोत्तर प्रांत पर भी अधिकार कर लिया। उधर यूनान में सिकन्दर के मरने पर सारे राज्य को पाँच सेनापतियों में विभक्त कर दिया गया। पूर्वी भाग सैल्यूकस को दिया गया। सैल्यूकस के राजा होने पर भारतीय सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य से लड़ाई हुई। यूनानी नरेश हार गया और उसने

संधि कर ली। यूनानी लेखकों के विवरण के आधार पर यह मालूम होता है कि सेल्यूकस ने सिन्ध से लगाकर हिन्दकुश के प्रांत चंद्रगुप्त को दे दिये और उस समय से भारत में यूनानी राज्य का अंत हो गया। यह सच है कि भारत में विदेशी यूनानी नरेश राज्य स्थापित न कर सके परंतु अपना प्रभाव छोड़ गए। जहाँ तक सिक्कों का सम्बन्ध है भारत में सिकन्दर के आक्रमण के बाद यूनानी तौल रीति (Attic Standard) का समावेश किया गया। १२४ ग्रेन के सिक्के तैयार होने लगे। सिक्कों पर यूनानी ढंग की आकृति भी मुद्रित की गयी। उनके सिक्कों पर अग्रभाग की ओर राजा के सिर की आकृति तथा पृष्ठ ओर उल्लू की तसवीर बनी है। भारत के पश्चिमोत्तर प्रांत में उसी प्रकार के सिक्के बनने लगे। राजा सम्भूति के सिक्के ठीक इसी प्रकार के (यूनानी ढंग) और तौल के बराबर मिलते हैं। परंतु उल्लू (चूँकि वह यूनान का प्रतीक था) के स्थान पर सम्भूति ने मुर्गे की आकृति तैयार करायी थी। यह अनुकरण सिर्फ उसी भाग में था जहाँ की यूनानी लोगों का संपर्क था अन्यथा भारत के दूसरे समस्त प्रांतों में भारतीय तौल (१४६ ग्रेन) के अनुसार तैयार किए गए कार्षापण का प्रचार था। उन पर ठप्पों के द्वारा निशान बनाए जाते थे। सिक्कों के ढालने का प्रकार काम में नहीं लाया जाता था।

यद्यपि यूनानी लोग भारत से बाहर चले गए थे परंतु सैल्यूकस के उत्तराधिकारी बलख के समीप प्रदेशों पर शासन करते रहे। सैल्यूकस के विशाल राज्य के ध्वंसावशेष के रूप में फारस तथा बाख्टीक की दो स्वतंत्र रियासतें कायम हो गयीं। उनका व्यापारिक सम्बन्ध भारत से चलता रहा। बाख्टीक के राजा दियोदास (Diodotos) ने विद्रोह करके अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। अपने पितृस्थान से नाता तोड़ दिया। उसके बाद उसका पुत्र द्वितीय दियोदास राज्य का स्वामी बना। ये राजा अशोक के समकालीन थे। उनके चाँदी तथा ताँबे के सिक्के मिले हैं। अशोक के मृत्यु पश्चात् भारत के उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश मौर्यवंशी राजाओं के हाथ से निकल गए। सम्भवतः दियोदास के समय में सिन्ध तथा तक्षशिला प्रांत पर यूनानियों का अधिकार हो गया। तक्षशिला के खण्डहरों में दियोदास (प्रथम या द्वितीय) के सोने के सिक्के भी मिले हैं। बलख में विद्रोह के कारण सैल्यूकस वंशी सम्राट अंतियोक ने अपने पैतृक राज्य को वापस लेने के संकल्प से बाख्टीक पर आक्रमण किया। उस समय यूथीदिमस नामक राजा वहाँ शासन करता था। यूथीदिमस ने दियोदास को परास्त कर बाख्टीक पर अधिकार स्थापित कर लिया। अंतियोक ने कई कारणों से यूथीदिमस को स्वाधीन राजा मान लिया। ईसा पूर्व १९० में

हरमेयस का नाम नहीं मिलता। इन्हीं सब कारणों से यूथीदिमस के पुत्र दिमित्रस से लेकर हरमेयस तक के यूनानी राजा भारतीय यूनानी शासक माने जाते हैं। इस प्रकार पहली सदी के मध्य भाग में भारत से यूनानी शासन का नाम निशान मिट गया। यूनानी राजाओं का अधिकतर इतिहास का वर्णन उनके सिक्कों के आधार पर किया जाता है। दूसरा कोई विशेष सहायक प्रमाण नहीं मिलता। इन्हीं राजाओं के सिक्कों का वर्णन किया जायेगा।

सम्भूति का सिक्का (ईसा पूर्व ३०५)

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
शिरस्त्राण पहने राजा का मस्तक बना है। यह सिक्का गोल है और एथेन्स के सिक्कों के ढंग पर बना है।	कुक्कुट की मूर्ति तथा यूनानी भाषा तथा अक्षर में सुम्भूति का नाम लिखा मिलता है।

वाह्लीक के राजा दियोदास का सिक्का

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
राजा का मुख बना है। यह चाँदी का सिक्का बड़े आकार का है।	हाथ में वज्र लिए जूपिटर की मूर्ति, एक तरफ गिद्ध पक्षी बैठा है और उस मूर्ति के हाथ में माला दिखाई पड़ती है। ग्रीक अक्षरों में बैसिलियस डियोडोटास लिखा है।

यूथीदिमस का सिक्का

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
राजा की मूर्ति युवावस्था या वृद्धावस्था की बनाई गयी है।	हाथ में दण्ड लेकर पत्थर की चट्टान पर बैठे हरक्यूलस की मूर्ति है। यूनानी भाषा में उपाधि सहित राजा का नाम अंकित है। दूसरे प्रकार के सिक्के पर हरक्यूलस के जाँघ पर दण्ड दिखलाई पड़ता है।

इसी राजा के अन्य सिक्कों पर हरक्यूलस की मूर्ति बनी है और पीठ की तरफ

फलक सं० ४

उछलते हुए घोड़े की आकृति है उसके ऊपर उपाधि (बैसिलियन) तथा पैरों तले राजा का नाम यूथीदिमस खुदा है।

ऊपर वर्णित सिक्के यद्यपि भारतवर्ष में मिलते हैं परन्तु ये सर्वथा यूनानी माने जाते हैं। यूथिदिमस के पुत्र दिमितस ने इसी प्रकार के सिक्के तैयार किए जिन्हें भारतीय यूनानी सिक्कों के नाम से वर्णन किया जायगा।

भारतीय यूनानी सिक्के

भारत में सर्वप्रथम यूनानी शासक दिमितस ने चाँदी के सिक्कों के अतिरिक्त भारतीय ढंग के चौकोर ताँबे के सिक्के भी चलाए। उसे भारत का राजा कहा गया है। सम्भवतः थोड़े समय तक शासन करने के कारण दो प्रकार के चाँदी के सिक्के मिलते हैं। उनमें

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
राजा का मुख, शिरस्त्राण के बदले में हाथी का सूँड़ सिर पर दिखलाई पड़ता है। सिक्के गोलाकार हैं।	युवावस्था की हरक्यूलस की मूर्ति अथवा इसके बदले में यूनानी देवी पैलास की मूर्ति मिलती है। ग्रीक अक्षरों में उपाधि सहित राजा का नाम लिखा है।

ताँबे के गोल सिक्कों पर सिर पर चमड़ा पहने हरक्यूलस का मुख और पृष्ठ की ओर यूनानी देवी आर्तेमिस की खड़ी मूर्ति है जिसके बाएँ हाथ में धनुष दिखाई पड़ता है और वह देवी दाहिने हाथ से तरकस से बाण निकाल रही है। ग्रीक भाषा में उपाधि सहित राजा का नाम अंकित है। दिमितस के चौकोर ताँबे के सिक्के भी मिले हैं। इसमें सर्वप्रथम खरोष्ठी अक्षरों व प्राकृत भाषा में राजा का नाम लिखा है—महरजस अपरजितस दिमे (त्रियस)। तीसरे प्रकार के सिक्के पर अग्रभाग में ढाल तथा चर्म (राक्षसमुख के साथ) बने हैं और पृष्ठ भाग पर त्रिशूल तथा राजा का नाम खुदा है।

दिमितस के पश्चात् पंतलेव तथा अगथुक्लेय नामक राजा भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर शासन करते रहे। उन लोगों के सिक्कों पर भारतीय प्रभाव दिखाई पड़ता है। दोनों राजाओं के सिक्कों पर अग्रभाग पर शेर की आकृति बनी है और ग्रीक अक्षर में पदवीसहित राजा का नाम अंकित है। पीठ की ओर एक बालिका (नृत्य करती हुई) की मूर्ति है जिसके चारों ओर वृत्त में ब्राह्मी अक्षरों में राजने पंतलेवस अथवा

अगथुक्लेयस लिखा है। दिमितस के खरोष्ठी लेख के स्थान पर इन लोगों ने ब्राह्मी (भारतीय लिपि) को अपनाया इसके पश्चात् यूक्रतिद ने उत्तरी पश्चिमी भारत को जीत लिया। उसने दिमितस की तरह ताँबे में सिक्के निकाले जिन पर ग्रीक भाषा में महान् पदवी मेगाय तथा खरोष्ठी अक्षरों में महरजस ब्रक्रतिदस लिखा है। उसका उत्तराधिकारी हेलियक्रेय बाह्लीक का अंतिम यूनानी राजा था। उसे शक जाति ने जीत लिया। भारत में सभी भारतीय यूनानी राजाओं के सिक्कों पर दोनों ग्रीक तथा खरोष्ठी अक्षरों में उपाधि सहित राजा के नाम अंकित करने की प्रथा चल निकली। यूक्रतिद का पुत्र अपलदतस सारे भारतीय यूनानी राज्य का मालिक बन गया अतएव उसने राजा की महान पदवी धारण की। उसी के चाँदी के सिक्कों पर पृष्ठ ओर खरोष्ठी में महरजस त्रतरस अपलदतस अंकित मिलता है। उसने भारतीय तौल के बराबर गोल तथा चौकोर अनेक सिक्के तैयार कराए। उसी के सिक्कों पर शिव के वाहन नन्दि को सर्वप्रथम स्थान मिला। यूनानी राजा धीरे धीरे अपना प्रभाव पूर्वी पंजाब पर फैलाने लगे। उनमें मिलिन्द का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। मिलिन्द के हजारों सिक्के अफगानिस्तान तथा भारत में मथुरा, रामपुर, आगरे, शिमला आदि स्थानों से मिले हैं। अपलदतस के बाद मिलिन्द बड़ा प्रभावशाली शासक हुआ। मिलिन्द ने पूर्वी पंजाब के अतिरिक्त साकेत, मथुरा तथा पांचाल तक आक्रमण किया था जिसका वर्णन गार्गी संहिता तथा पतंजलि के महाभाष्य में मिलता है।

ततः साकेतमाक्रम्य पंचालान् मथुरां तथा
यवना दुष्ट विक्रांतः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्।

यह यवन राजा सियालकोट (पंजाब) समीप निवास कर भारतीय प्रदेशों पर शासन करता रहा। यह बौद्धधर्म का अनुयायी हो गया। मिलिन्द पन्हो (प्रश्न) नामक पाली ग्रन्थ में यह कथा मिलती है। मिलिन्द के पाँच प्रकार के चाँदी के सिक्के मिले हैं जिनकी तौल ३२-३४२ ग्रेन तक पायी जाती है। अग्र-भाग में मुकुट पहने राजा का मस्तक तथा यूनानी पदवी सहित राजा का नाम मिलता है। पृष्ठ ओर पैलाश-देवी की मूर्ति और खरोष्ठी अक्षरों में महरजस त्रतरस मिनद्रस — लिखा मिलता है। इसके ताँबे के वर्गाकार सिक्कों पर यूनानी देवी पैलाश तथा वृषभ (नन्दि) की मूर्ति स्थान स्थान पर पायी जाती हैं। मिलिन्द के पश्चात् भारत में अनेक यूनानी राजा शासन करते रहे परन्तु उन केसिक्कों के बारे में कोई उल्लेखनीय बात नहीं है। सब पर ग्रीक तथा खरोष्ठी अक्षरों में उपाधि सहित राजा का नाम पाया जाता है। (शक जाति ने दक्षिण पश्चिम से प्रवेश कर सौराष्ट्र से मालवा, मथुरा तथा पूर्वी पंजाब प्रांत पर अधिकार

कर लिया। यूनानी अंतिम राजा हरमेयस ईसवी सन् की पहली सदी में काबुल में शासन करता रहा। उसके अनेक प्रकार के सिक्के मिले हैं। सब से मुख्य सिक्के पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
मुकुट पहने राजा की मूर्ति है और यूनानी भाषा में उपाधि सहित राजा (हरमेयस) का नाम मिलता है।	हरक्यूलस की मूर्ति, दाहिने हाथ में गदा तथा बाए में शेर का चमड़ा खरोष्ठी लिपि में कुजुल कफ्स कुषाण प्रमटिदस लिखा मिला है।

इससे प्रगट होता है कि कुषाण नरेश कदफिस प्रथम (कुजुल) ने यूनानी राज्य का अंत कर अपने नाम से उनके सिक्कों को मुद्रित किया अथवा हरमेयस के साथ शासन करता रहा। कुजुल के बाद वाले सिक्कों पर दोनों ओर उसी का नाम लिखा पाया जाता है।

भारत के प्राचीन पंचमार्क सिक्कों को देखते हुए सभी को विदित हो जाता है कि यूनानी राजाओं के सिक्कों में बहुत सी नयी बातें मौजूद थीं जिनका भारतीय सिक्कों में अभाव था। यद्यपि भारत में सिक्के स्वतंत्र रूप से बनते गए परन्तु यूनानी सिक्कों को देखकर ढालना तथा ठप्पा लगाने की प्रथा का समावेश भारत में किया गया। सब से मुख्य बात यह थी कि सिक्कों पर सम्भवतः यह ग्रीक सिक्कों का प्रभाव था। भारत के पंजाब लेख खुदवाने की प्रथा ईसा पूर्व २०० वर्ष से चलाई गई प्रांत तक भारतीय यूनानी राजाओं के सिक्के काफी संख्या में प्रचलित थे। जब विदेशी आक्रमणकारी (शक, कुषाण आदि) भारत में आए तो देश को जीतकर स्वतंत्रता के प्रतीक सिक्कों को तैयार कराया और उन पर अपना नाम खुदवाया। जो कुछ भी हुआ उन्होंने यूनानी सिक्के के नकल पर (तौल १२० ग्रेन तथा शैली) अपनी मुद्रानीति स्थिर की। शक क्षत्रपों तथा कुषाण नरेशों के सिक्के उन्हीं के अनुकरण पर तैयार हुए। कुषाण राजा कनिष्क तथा हुविष्क ने यूनानी देवी-देवताओं को अपने सिक्कों पर प्रधान स्थान दिया। राजाओं ने ग्रीक भाषा तथा लिपी को भी अपनाया। इस प्रकार ईसवी सन् की दूसरी सदी तक यूनानी सिक्कों का प्रभाव भारतीय मुद्रा पर किसी अंश में अवश्य दिखलाई पड़ता है।

यूनानी सिक्के तथा भारतीय सिक्कों का पारस्परिक प्रभाव

इसके प्रतिकूल यूनानी सिक्के भी भारतीय प्रभाव से अछूता न रह पाए। भारतीय सीमा पर अशोक के समय से ही खरोष्ठी अक्षरों का प्रचार था। उन प्रांत

के शासक के लिए यह आवश्यक था कि जनता की बोली तथा लिपि में राजा की आज्ञा अथवा राजकीय मुद्रा अंकित हो ताकि साधारण जनता उससे परिचित हो सके। अशोक को भी इसी सिद्धांत के कारण शहबाजगढ़ी तथा मानसेरा के लेखों में खरोष्ठी लिपि का प्रयोग करना पड़ा यद्यपि उसके अन्य सारे लेख ब्राह्मी लिपि में खुदे गए थे। इसी नीति के अनुसार डिमितस को भारतीय सीमा पर पहुँचते ही खरोष्ठी अक्षरों का प्रयोग करना पड़ा। एक ओर ग्रीक तथा दूसरी ओर खरोष्ठी लिपि में उपाधिसहित राजा का नाम खुदवाया गया उसी के उत्तराधिकारी एक कदम और आगे बढ़ गए और ब्राह्मी अक्षरों का प्रयोग किया। पंतलेव तथा अगथुक्लेव नामक राजाओं के सिक्कों पर भारतीय प्रभाव (ब्राह्मी लिपि तथा यूनानी देवी के स्थान पर शेर का चिह्न) स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। अपलदतस (Apollodotos) ने अपने सिक्के पर भगवान शिव के वाहन वृषभ (नन्दि) को स्थान दिया। ज्यों ज्यों भारत में पूर्व की ओर (सीमाप्रांत से पूर्वी पंजाब) बढ़ने लगे यूनानी शैली में परिवर्तन आने लगा। मिलिन्द अपने धर्म के प्रतिकूल बौद्ध धर्म पर आस्था रखता था जिसका वर्णन मिलिन्द-प्रश्न में मिलता है। शक क्षत्रियों का नामकरण भारतीय रीति पर होने लगा। कुषाण नरेशों ने अपने सिक्कों पर यूनानी देवताओं के अतिरिक्त भारतीय देवताओं को भी स्थान दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि यूनानी अनुकरण होने पर भी भारतीयता की छाप पड़ने लगी। यहाँ तक कि गुप्त नरेशों ने भारतीय शैली को खूब अपनाया।

भारत में ऐतिहासिक अन्वेषण के आरम्भ होने पर मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ आईं जिसका सामना विद्वानों को करना पड़ा। पुरातत्व विभाग या साधारण खोज में जो सामग्रियाँ मिलती रहीं उनके ऐतिहासिक महत्व की जानकारी आवश्यक थी। भारत में स्थान स्थान पर शिला तथा स्तम्भों पर कुछ लेख खुदे पाए गए जिनका पढ़ना कठिन था। उनकी लिपि के बारे में प्रारम्भिक अवस्था में किसी को ज्ञान न था। इस मार्ग में यूनानी सिक्कों ने पूरी सहायता की। विद्वानों ने जब यूनानी सिक्कों पर दो विभिन्न लिपियों का प्रयोग देखा तो अनुमान किया कि दोनों तरफ एक ही (विषय) बात लिखी गयी होगी। इस अनुमान से जिन सिक्कों पर यूनानी अक्षर एक ओर तथा अन्य (खरोष्ठी) लिपि दूसरी ओर थी, उसी के अध्ययन से और यूनानी अक्षरों की सहायता से उस लिपि के वर्णमाला का ज्ञान प्राप्त किया गया। इस

यूनानी सिक्कों से भारतीय लिपि का जन्म

प्रकार एक लिपि का पता लगा। दूसरे ऐसे भी सिक्के थे जिन पर भारत की विभिन्न दो लिपियों (ब्राह्मी तथा खरोष्ठी) में लेख खुदे थे। चूँकि यूनानी अक्षरों की सहायता से एक (खरोष्ठी) का पता लग चुका था इसलिए दूसरी लिपि की भी जानकारी हो गयी। दायें से बायें लिखी जाने वाली लिपि खरोष्ठी तथा इसके प्रतिकूल (बायें से दाहिने) लिखी जाने वाली लिपि को ब्राह्मी कहा गया। इस प्रकार यूनानी सिक्कों पर अंकित अक्षरों के द्वारा भारत का लिपि-ज्ञान हो गया और उसी के सहारे सारे लेख (प्रशस्तियाँ) पढ़े गए। अतएव यूनानी सिक्के भारतीय लिपि के जन्मदाता कहे जा सकते हैं।

चौथा अध्याय

जनपद तथा गण राज्यों के सिक्के

प्राचीन काल में भारतवर्ष में दो प्रकार की शासन-प्रणालियाँ प्रचलित थीं। पहला राजतंत्र जिसमें वंशपरम्परा से एक ही प्रकार का शासन होता रहा। राजा तत्पश्चात् उसका पुत्र राज्य का अधिकारी कहलाते और स्वतंत्र रूप से अथवा मंत्रिगण की सहायता से शासन करते थे। छोटे राज्य का विस्तार साम्राज्य में हो जाता परन्तु राज्य-विस्तार के कारण शासन में कोई परिवर्तन न होता था। दूसरे प्रकार का शासन प्रजातंत्र के नाम से विख्यात था। उन राज्यों को गण या संघ का नाम भी दिया गया है। संघ अथवा गण राज्य का मुख्य व्यक्ति शासन का प्रधान समझा जाता था। गण के ऊपर जनता द्वारा किसी व्यक्ति का चुनाव प्रधानपद के लिए होता था। उसके पुत्र का कोई उस राज्य में ममत्व न रहता। ईसा पूर्व ४०० से लेकर ईसवी सदी तीन सौ वर्षों तक दोनों प्रकार के शासन उत्तरी भारत में प्रचलित रहे। पाणिनि ने ऐसे संघों का वर्णन अष्टाध्यायी में किया है। सिन्धु-गङ्गा के मैदानों में महान सेना लेकर राज्य स्थापित करना उतना ही सरल था जितना कि मरुस्थलों तथा पर्वतों के समीप निवास करने वाले संघ राज्यों का विजय करना कठिन था। सिकन्दर को भारत पर आक्रमण करते समय इन दोनों प्रकार के राज्यों से सामना करना पड़ा था। पंजाब में स्थित गण राज्यों का मुकाबिला करने पर यूनानी राजा को इनकी शक्ति का ज्ञान हुआ था। पंजाब, राजपूताना, पश्चिमी संयुक्त प्रांत, बुन्देलखण्ड आदि प्रदेशों में गणराज्य कार्य करते रहे। भारतवर्ष में चन्द्रगुप्त मौर्य ने साम्राज्य स्थापना की कल्पना आरम्भ की तथा वह सफल भी रहा। अतएव ऐसे बड़े सम्राट के सम्मुख छोटे छोटे गणराज्य ठहर न सके और मैदानों से हटकर पर्वतों तथा मरुस्थलों में शरण ली। राजा अशोक को साम्राज्य बढ़ाने की लिप्सा न रही अतएव संघ राज्यों को किसी प्रकार की विशेष हानि मौर्यों से नहीं हुई। ईसवी सन् की पहली सदी में कुषाण नरेशों ने अपना राज्य पेशावर से काशी तक फैलाया और पश्चिम के क्षत्रप राजाओं ने मालवा आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया जिससे गणराज्यों की सत्ता कुछ समय के लिए नष्ट हो गयी थी। कुषाण राज्य के अंत होने पर तीसरी सदी में पुनः संघों का विकास हुआ उन्होंने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी और अपने नाम से सिक्के तैयार किए। मौर्यों के

समकालीन. जितने गणराज्य थे उन सब ने सिक्के का प्रचार न किया। व्यापारिक संघ संस्थाओं के अधिकार को (सिक्के तैयार करना) राष्ट्रीय तथा राजनैतिक गण-राज्यों ने ग्रहण न कर लिया परन्तु कुशाण राजाओं के बाद परिस्थिति बदल गयी। सभी स्वतंत्र राजा सिक्के तैयार करने लगे। इसलिए गणराज्यों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित करके सिक्के भी तैयार किए। ईसा की चौथी सदी में गुप्त सम्राट समुद्र-गुप्त ने दिग्विजय में सब गणों का नाश कर उनके राज्यों को साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। इस कारण संघ सदा के लिए काल के मुख में चले गए। इस विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ईसा पूर्व ४०० से लेकर ईसवी सन् की चौथी सदी यानी आठ सौ वर्षों तक संघ या गण शासन भारत में था।

भारत में साम्राज्य स्थापना के साथ शासन की सुविधा के लिए राज्य को सूबों में बाँटा गया था। मौर्यों के राज्य में ऐसी ही प्रणाली थी। कुषाण राजाओं ने भी स्थान स्थान पर अपना कर्मचारी नियुक्त किया था। दूसरे शब्दों में किसी प्रांत (जनपद) का राजा सम्राट का आज्ञाकारी बनकर शासन करता रहा। जब बुरे समय आने पर केन्द्रीय सरकार कमजोर हो जाती थी तो वहाँ के शासक स्वतंत्र हो जाते थे। कुशाण राज्य के बाद कई प्रांत स्वतंत्र हो गए। गणों तथा जनपदों ने सामूहिक रूप से कुशाण शासन का अंत करने में कुछ उठा न रक्खा। उनकी राजधानियाँ उस भाग (जनपद) की प्रधान नगरी हो गयी। उन राजाओं के सिक्के उसी स्थान से निकाले गए तथा उस जनपद में प्रचलित थे। अयोध्या, अवन्ति, मथुरा, कौशाम्बी, आदि प्रधान नगर थे जहाँ पर सिक्के तैयार किए गए। ऐसे सिक्कों को जनपद के सिक्कों के नाम से वर्णन किया जायगा।

शुंग राज्य के पश्चात् ही गणराज्यों की उन्नति होने लगी। उस समय के मुख्य मार्गों तथा स्थानों पर संघों का अधिकार था। कुषाण राज्य के अंत होने पर संघ शासन का अधिक प्रचार हो गया जिसके इतिहास के बारे में सिक्कों के ही सहारे सब बातें मालूम की जाती हैं। सिक्कों के अतिरिक्त दूसरे साधन ऐसे नहीं हैं जो संघों के विषय में विशेष बतला सकें। अधिकतर संघों का इतिहास दो भागों में विभक्त किया है। कुषाणों के पूर्व तथा उसके बाद के गणराज्य जिनका शासन उन्नत अवस्था में था। साधारणतः इन दो काल-विभाग में संघ सिक्के प्रचलित थे और वे सिक्के मिले भी हैं। साहित्य में उपलब्ध वर्णन से संघ की स्थिति ईसा पूर्व शताब्दियों में अच्छी मालूम पड़ती है।

गण-सिक्के

सिक्कों की तौल

गणराज्यों के सिक्कों की तौल के विषय में मतभेद है। यह तो सभी जानते हैं कि कुषाण काल से पूर्व भारत में भारतीय यूनानी सिक्के प्रचलित थे जो ईरानी तथा यूनानी तौल पर तैयार किए जाते थे। ईरानी तौल (८६:४ ग्रेन) के भी आधे से कम चाँदी के सिक्के बनते रहे तथा यूनानी तौल ६७ ग्रेन को भी काम में लाया जाता था। उस ईरानी तौल को गणराज्यों ने अपनाया जिसकी आधी तौल से कम वजन के सिक्के मिलते हैं। औदुम्बर, कुणीन्द तथा यौधेय गणों ने इसी रीति पर चाँदी के सिक्के चलाए। उन लोगों ने इस धातु के लिए प्राचीन भारतीय तौल (८० रत्ती) को छोड़ दिया पर जब अर्जुनायन, नाग, मालव आदि संघ राज्यों ने ताँबे के सिक्के तैयार करना प्रारम्भ किया तो उन्होंने प्राचीन तौल (८० रत्ती) का ही प्रयोग किया। नाग सिक्के ४२ ग्रेन के मिलते हैं जो भारतीय तौल के आधे हैं। ईसवी सन् के आरम्भ से कुणीन्द तथा यौधेय गणराज्यों ने भी चाँदी के सिक्के निकालना बन्द कर दिया क्योंकि कुषाण नरेशों ने सोने को अपनाया था और सोने के सिक्के बनने लगे जिसे गणों के छोटे राज्यों में चलना कठिन था। उस समय विदेशों से चाँदी का आना प्रायः बन्द हो गया था। इस कारण ताँबे को ही सिक्कों की धातु के लिए प्रयोग किया गया। चाँदी की कमी तथा ताँबे की अधिकता से ताँबे के सिक्के वजनी बनाए जाने लगे। कुणीन्द (सन् १०० ई०) के सिक्के २२१:६ या २६१ ग्रेन के मिलते हैं। यौधेय सिक्के १७८ ग्रेन के पाए जाते हैं। चाँदी के ग्रम २६ ग्रेन के बराबर मिलते हैं। इससे चाँदी तथा ताँबे का अनुपात १:६ के बराबर हो जाता है जो उस समय के लिए सर्वथा उचित था। उन ताँबे के सिक्कों को आजकल के पैसे से मुकाबिला नहीं किया जा सकता। वर्तमान पैसे का स्थान प्राचीन समय में कौड़ियों को दिया गया था। पैसे का क्रय मूल्य इतना अधिक था कि सर्वसाधारण का काम चल जाता था। ताँबे का सिक्का जीवन की उपयोगी वस्तुएँ खरीदने के लिए पर्याप्त था।

धातु

यह कहा जा चुका है कि सब से प्रथम भारत में ताँबे का प्रयोग मुद्रा में किया गया था और उसके बाद स्वतंत्र रूप से चाँदी का भी प्रयोग होने लगा। चाँदी बाहरी धातु थी जो सदा भारत में विदेश से आती रही लेकिन इसके सिक्कों से ताँबे के सिक्के बन्द नहीं हो गये। दोनों एक साथ या पृथक प्रदेशों में चलते रहे। गणराज्यों ने अधिकतर ताँबे का ही प्रयोग किया केवल औदुम्बर, कुणीन्द तथा यौधेय गणों ने दोनों धातुओं (चाँदी तथा ताँबा) के सिक्के चलाये। ताँबे के सिक्के

काफी सहूलियत (सुगमता) मालूम होती थी। इसके बाद गोल आकार के साथ दोनों तरफ ठप्पा मारने का तरीका चल निकला। उनका व्यास ˙६ से ˙७ इंच तक पाया जाता है। अर्जुनायन के सिक्के ˙६ इंच कुणीन्द के ˙६५ इंच, यौधेय के बड़े सिक्के (वृषभ तथा हाथी वाले) ˙७ या ˙८ इंच और ब्रह्मण्य शैली के सिक्कों का व्यास ˙६ से १˙१ इंच तक पाया जाता है। मालवा के सिक्के गोल आकार के मिलते हैं परन्तु वे बहुत छोटे होते हैं। उनके छोटेपन का अन्दाजा सिक्कों के व्यास से लगाया जा सकता है। सब से छोटे सिक्के ˙२ इंच व्यास के मिलते हैं सम्भवतः संसार में जितने सिक्के उपलब्ध हैं उनमें मालवगण के सिक्के सब से छोटे माने गए हैं।

पिछले अध्याय में यह बतलाया जा चुका है कि सिक्कों पर खुदे लेखों का क्या महत्व था। गणराज्य के सिक्कों पर ठप्पे के साथ लेख उत्कीर्ण करने की परिपाटी प्रचलित हुई। इन सिक्कों पर अधिकतर ब्राह्मी लिपि में लेख मिलते हैं परन्तु औदुम्बर, कुणीन्द तथा यौधेय सिक्कों पर ब्राह्मी के साथ खरोष्ठी लिपि में भी लेख खुदे गये हैं। तीसरी सदी से गण सिक्कों पर खरोष्ठी को हटा कर सदा ब्राह्मी लिपि का प्रयोग होने लगा। प्राकृत भाषा के स्थान पर संस्कृत को स्थान दिया गया। अधिकतर गण सिक्कों पर एक ओर लेख तथा दूसरी ओर मूर्ति या आकृति खुदी रहती है। मालव के छोटे सिक्कों पर स्थान की कमी के कारण लेख को दोनों ओर बाँट कर लिखा गया है। एक ओर जय तथा दूसरी ओर मालवानां खुदा रहता है। इन लेखों की एक विशेषता है जो अन्यत्र नहीं पायी जाती। गण सिक्कों में (१) जाति (गण) का नाम, (२) शासक का नाम, (३) दोनों का सम्मिलित नाम, (४) गण के इष्टदेव का नाम अथवा (५) किसी आदर्श वाक्य का उल्लेख पाया जाता है।

सिक्कों पर लेख

'अर्जुनायनानां, शिवदतस, महाराजदेव नागस्य, राज्ञाधरघोषस औदुम्बरस भगवतो महादेवस्य, मालवानां जयः' अथवा 'यौधेय गणस्य जयः' आदि लिखे मिलते हैं।

सिक्कों पर विभिन्न प्रकार के चिह्नों से कई बातों का अनुमान किया जाता है। गण सिक्कों पर भी कुल चालीस तरह के चिन्ह पाए जाते हैं। किसी पर आराध्य देवता शिव या कार्तिकेय की आकृति मिलती है। जातीय चिह्न हाथी या छत्र को भी गण सिक्कों पर स्थान दिया गया था। घेरे में पेड़ वाला चिह्न बहुत अधिक सिक्कों पर मिलता है। औदुम्बर, कुणीन्द, यौधेय तथा मालव सिक्कों

चिन्ह

पर इसको प्रधान स्थान मिला था। इनके अतिरिक्त त्रिशूल, स्वस्तिक, तथा देवता के वाहन का चित्र सिक्कों पर खुदा मिलता है। वृषभ (शिव के वाहन) को यौधेय मुद्राओं पर जातीय चिह्न मान कर प्रमुख रूप से स्थान दिया गया था। यदि गण सिक्कों के चिह्नों को पृथक पृथक अध्ययन किया जाय तो उनको कई विभागों में रक्खा जा सकता है। पशु, पक्षी, वृक्ष, शस्त्र, मनुष्य की मूर्ति तथा सूर्य आदि चिह्न मुख्यतया दिखलाई पड़ते हैं। मनुष्य की मूर्ति को कभी हनुमान या जातीय सरदार के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। यौधेय गण अपने शक्ति के लिए प्रसिद्ध था अतएव उन्होंने कार्तिकेय (युद्ध देवता) को सिक्के पर अंकित कराया। इस प्रकार प्राकृतिक, सांसारिक तथा धार्मिक क्षेत्रों से विभिन्न चिह्नों को लेकर गण सिक्कों पर स्थान दिया गया था।

यौधेय सिक्के

बहुत प्राचीन समय से यौधेय जाति व्यास नदी के पार भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रांत में रहती थी। ईसा पूर्व ४०० वर्ष में पाणिनि ने इसे आयुध जीविन संघ में सम्मिलित किया था। जिसका यह तात्पर्य था कि इस जाति का प्रधान कार्य युद्ध करना था। यौधेय लोगों का उल्लेख साहित्य तथा लेखों में मिलता है। इनका अस्तित्व मौर्य शासन, क्षत्रप तथा कुषाण काल में ज्यों का त्यों बना रहा। ईसवी सन् की दूसरी सदी में यौधेय जाति उन्नति के शिखर पर पहुँच गयी थी। मौर्य शासन के अंत होने पर वे स्वतंत्र राजा बन गए और फलस्वरूप अपना सिक्का तैयार कराया। उनका राज्य बहुधान्यक के नाम से प्रसिद्ध था। वर्तमान समय में वह प्रांत रोहतक के नाम से विख्यात है। कुषाण राज्य को नष्ट करने में अर्जुनायन तथा कुणीन्द गणों के साथ मिलकर यौधेय संघ ने एक दृढ़ संघ बनाया था। सन् १५० ई० में गिरनार के (रुद्रदामन महाक्षत्रप के) लेख से ज्ञात होता है कि यौधेय का नाम सब से वीर क्षत्रियों में गिना जाता रहा। स्यात् इन लोगों ने कुषाण काल में उत्तरी पश्चिमी प्रांत को छोड़ कर राजपूताना (विजयगढ) में शरण ली थी। बृहत्संहिता में इस जाति का नाम आता है। प्रयाग की प्रशस्ति में प्रशस्तिकार हरिषेण ने लिखा है कि यौधेय संघ अन्य गणों की तरह गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त को कर दिया करता था। विद्वानों का मत है कि आधुनिक समय में पश्चिमी पंजाब के बहावलपुर राज्य में यौधेय जाति के वंशज, जोहिया नाम से पुकारे जाते हैं। ये लोग सतलज नदी के दोनों किनारों पर बसे हुए थे। भरतपुर राज्य में यौधेय लोगों का एक लेख मिला है जिसमें एक अधिपति की उपाधि महाराज महासेनापति उल्लिखित है। इस प्रकार प्रायः आठ सौ वर्षों तक यौधेयगण का शासन स्थिर रहा।

इनके सिक्के पूर्वी पंजाब सतलज और यमुना नदियों के बीच रोहतक जिले में (यौधेय लोगों का प्राचीन स्थान) मिलते हैं। यौधेय गण के सिक्के तीन भागों में कालक्रम के अनुसार विभक्त किए गए हैं। पहला ईसवी पूर्व २०० का जिसे 'नन्दि तथा हाथी' वाला सिक्का कहा जाता है। इसमें

अग्रभाग	पृष्ठभाग
नन्दि तथा स्तम्भ की आकृति, ब्राह्मी अक्षरों में यौधेयानां बहुधानके लिखा है।	हाथी तथा नन्दिपाद का चिह्न है।

दूसरे काल-विभाग में ब्रह्मण्यदेव वाला सिक्का ईसा की दूसरी सदी में तैयार किया गया था। इसके अग्रभाग में षडानन (कार्तिकेय) की मूर्ति कमल पर खड़ी दिखलायी गयी है। उसी ओर ब्राह्मी अक्षरों में यौधेयों के ब्रह्मण्यदेव नामक राजा का नाम—'ब्रह्मण्य देवस्य भागवता', 'स्वामी भागवतः' अथवा 'भागवतः यधेयनः' लिखा मिलता है। कभी ब्रह्मण्यदेव के स्थान पर कार्तिकेय का नाम कुमारस खुदा मिलता है। इससे प्रगट होता है कि युद्ध के प्रेमी (पाणिनि का आयुधजीवि संघ) यौधेय लोगों ने कार्तिकेय (युद्ध के देवता) का नाम सिक्कों पर अंकित कराया था। इसके पृष्ठभाग में बोधी वृक्ष, सुमेरु पर्वत, नन्दिपाद चिह्न तथा कार्तिकेयानी देवी की मूर्तियाँ हैं। सब लेखों को मिलाकर भागवतः स्वामिनो ब्रह्मण्यदेवस्य—बन सकता है।

दूसरे प्रकार का ब्रह्मण्यदेव का सिक्का मिला है जिस पर नाम के साथ द्रम शब्द आता है। दोनों तरफ चिह्न वही हैं परन्तु लेख में परिवर्तन है और ब्रह्मण्यदेवस्य द्रम (ब्रह्मदेव का सिक्का) खुदा है। सम्भवतः यहाँ द्रम शब्द से सिक्के का भाव प्रगट होता है। तीसरे काल-विभाग में सिक्के कुषाणों के अनुकरण पर तैयार किए गये थे। ईसवी सन् की चौथी सदी में योद्धा ढंग के सिक्कों का हाल मिलता है।

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
शूल लिए राजा या कार्तिकेय की मूर्ति और बाईं ओर मोर, ब्राह्मी अक्षरों में 'यौधेय गणस्य जय' लिखा मिलता है। (सम्भवतः यह सिक्का किसी विजय के उपलक्ष में तैयार किया गया था)	देवमूर्ति जो कुषाण सिक्कों की सूर्यमूर्ति (मिहिर) के समान है।

इसी ओर कुछ सिक्कों पर संख्यावाचक द्वि या तृ लिखा है। बहुत सम्भव है कि यह संख्या यौधेय जाति के दूसरे या तीसरे गण का बोधक है।

कुणिन्द नामक जाति सतलज नदी के प्रदेश में शिमला रियासत में निवास करती थी। इस का नाम पुराण (विष्णु और मार्कण्डेय) तथा बृहत्संहिता में मिलता है जिससे प्रगट होता है कि यह गण मद्र के समीप शासन करता रहा (मद्रे शोहन्यश्च कौणिन्दा) कांगड़ा, अम्बाला तथा सहारनपुर के जिलों में कुणिन्द के सिक्के मिले हैं इससे प्रगट होता है कि यह गण शिवालिक पर्वत के अधोभाग से जमुना तथा सतलज के बीच राज्य करता था। औदुम्बर तथा कुणिन्द के राज्यों में दोनों लिपियों (खरोष्ठी तथा ब्राह्मी) का प्रचार था अतएव इनके सिक्कों पर दोनों लिपियों में लेख पाए जाते हैं। इस जाति के कुल दो प्रकार के सिक्के पाए जाते हैं जिसको दो अधिकारियों ने चलाया। पहले मृग वाले सिक्के पर अमोघभूति का नाम मिलता है। इसने चाँदी और ताँबे के सिक्के चलाए जिनकी तौल यूनानी तौल (चाँदी ३२ रत्ती और ताँबा १४४ ग्रेन) के बराबर है परन्तु शैली भारतीय है। इससे प्रगट होता है कि यह सिक्का प्राचीन ईसवी सन् पूर्व का है और दूसरा छतेश्वर वाला सिक्का तीसरी सदी का है। मृग वाले सिक्के को किसी राजा से सम्बन्धित न मानकर अमोघभूति शब्द से पदवी का अर्थ निकालते हैं। इसका अर्थ हुआ जिसकी विभूति कभी भी कम न हो। पर सभी विद्वान इस तर्क से सहमत नहीं हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कुणिन्द गण ने दो प्रकार के सिक्के चलाए जो ईसा पूर्व १५० से ईसवी सन् २०० तक प्रचलित थे। मृग वाले सिक्के पर

कुणिन्द गण के सिक्के

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
कमल सहित लक्ष्मी की मूर्ति, एक मृग, छत्र सहित चौकोर स्तूप तथा एक चक्र बना है तथा ब्राह्मी में 'अमोघभूतस महरजस राज्ञ कुणदस' लिखा है।	सुमेरु पर्वत, स्वस्तिक नन्दिपाद तथा बोधी वृक्ष बनाया गया है। खरोष्ठी में 'राज्ञो कुणीदस अमोघ-भूतिस महरजस' लिखा है।

कुणिन्द शासक ने भारतीय यूनानी राजाओं द्वारा

प्रचलित चाँदी के सिक्कों के
स्पर्धा में देशी ढंग से चाँदी
का सिक्का तैयार कराया था।

अमोघभूति के इसी तरह के ताँबे के सिक्के मिले हैं। जिन पर ब्राह्मी तथा खरोष्ठी में लेख दोनों ओर मिलते हैं। बाद के सिक्कों पर राजा का वही नाम है परन्तु सिर्फ ब्राह्मी अक्षरों में। अमोघ के अतिरिक्त कुणिन्द के जाति के छतेश्वर नामक राजा का ताँबे का सिक्का मिला है। उसके अग्रभाग में त्रिशूल लिए शिव की मूर्ति खड़ी है। लेख साफ तो नहीं है पर रैपसन ने उस पर 'भागवत छत्रेश्वर महात्मनः' पढ़ा है। पृष्ठ भाग में मृग, नन्दिपाद, बोधी वृक्ष तथा सुमेरु पर्वत आदि की आकृति पायी जाती है। यह सिक्का अमोघभूति से पीछे का है।

अर्जुनायन गण के सम्बन्ध में कोई विशेष बात मालूम नहीं है परन्तु यह कहा जाता है कि इन्होंने यौधेय गण के साथ मिलकर कुषाण तथा पद्मावती के नाग राजाओं को परास्त किया था और स्वतंत्रता की घोषणा की थी। साहित्यिक प्रमाणों से तो ज्ञात होता है कि अर्जुनायन नामक गण ईसा पूर्व चौथी सदी में वर्तमान था। पाणिनि के गणपाठ में यौधेय लोगों के साथ अर्जुनायन का भी नाम आता है। इनकी रियासत उनसे पूर्व के हिस्से में आगरा तथा जयपुर के प्रांत में फैली हुई थी। उस समय से लेकर ईसा की चौथी सदी तक अर्जुनायन गण की स्थिति का पता लेखों से मिलता है। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग की प्रशस्ति में सीमा जातियों में अर्जुनायन का भी नाम मिलता है। अतः प्रायः आठ सौ वर्षों तक इनके राज्य का पता चलता है। उसी भाग में अर्जुनायन गण के सिक्के भी मिले हैं। यद्यपि इनकी स्वतंत्रता बहुत समय तक बनी रही परन्तु कुषाण काल के बाद इनके सिक्कों का पता नहीं लगता। स्यात् बाद में इन्होंने सिक्के का काम बन्द कर दिया था। ईसा पूर्व के यौधेय सिक्कों की तरह इस गण ने भी सिक्के तैयार कराए परन्तु जो सिक्के मिलते हैं वे भी विदेशी ढंग के अनुकरण हैं। आगरा, मथुरा भरतपुर, जयपुर तथा अलवर राज्य में अर्जुनायन जाति के (गण) सिक्के मिले हैं। इस गण ने कुल दो प्रकार के सिक्के प्रचलित किए। उन पर भारतीय चिह्न तथा ब्राह्मी अक्षर पाए जाते हैं।

अर्जुनायन गण के सिक्के

पहले प्रकार के सिक्के पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
खड़े मनुष्य की मूर्ति और	लिङ्ग के सम्मुख नन्दि की

ब्राह्मी अक्षर में श्रर्जुनायनानां, रैपसन खड़ी मूर्ति को लक्ष्मी की आकृति मानते हैं।	मूर्ति मिलती है। यह सिक्का वजन में भी दूना है।

दूसरे प्रकार के सिक्के में अग्रभाग पर वेष्टनी या घेरा बना है। ब्राह्मी अक्षरों में 'अर्जुनायनानां जयः' लिखा है। पृष्ठ भाग पर घेरे में बोधी वृक्ष की आकृति बनी है। सम्भवतः यह सिक्का किसी विजय का सूचक है।

पाणिनि के गणपाठ में उल्लिखित अन्य राजन्य समूह में औदुम्बर का भी नाम लिया जाता है। महाभारत में जितने गणों का वर्णन मिलता है उसमें औदुम्बर का भी नाम आया है। विष्णु पुराण में त्रिगर्त अथवा कुणीन्द जाति के साथ इसका नाम आता है। यह जाति कांगड़ा और अम्बाला प्रांत में निवास करती थी। सम्भवतः इनकी एक शाखा पश्चिम भारत में चली गयी।

औदुम्बर गण के सिक्के

उन्हीं के वंशज आजकल गुजरात में औदुम्बर ब्राह्मण (गुजराती) के नाम से विख्यात हैं। औदुम्बर का नाम केवल सिक्कों से मिलता है। पंजाब के गुरुदासपुर तथा कांगड़ा के ईरीयल नामक स्थानों में औदुम्बर सिक्कों का ढेर मिला है। उन सिक्कों को तीन श्रेणी में बाँटा जा सकता है। पहला चौकोर ताँबे के सिक्के जो सब से पहले इस गण ने तैयार कराये थे। ये सर्वथा भारतीय ढंग के हैं। इन सिक्कों पर ब्राह्मी तथा खरोष्ठी दोनों लिपियों में राजा के नाम के साथ गण (औदुम्बर) का नाम पाया जाता है। उसकी लिपि से अनुमान किया जाता है कि वे ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से पहले के हैं तथा पह्लव और कुषाण राजाओं के आने से पूर्व तैयार किए गए हैं। इन पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
घेरे में वृक्ष तथा हाथी का चित्र खरोष्ठी लिपी में महादेव रानो उपाधि के साथ राजा का नाम	दो मंजिल की इमारत, त्रिशूल ब्राह्मी में भी उपाधि सहित राजा का नाम

चार राजाओं के नाम—शिवदास, रुद्रदास, महादेव और धरघोष—सिक्कों से मिलते हैं।

दूसरे चाँदी के सिक्के हैं जो कम मिलते हैं। इसके चिह्न तथा धरघोष के नाम से पता चलता है कि यह औदुम्बर गण का सिक्का है। ये भारतीय यूनानी सिक्कों अर्द्ध द्रम के अनुकरण पर तैयार किए गए थे। इन सिक्कों पर एक ओर मनुष्य की आकृति है। सम्भवतः कंधे पर बाघ का चमड़ा रक्खे शिव की मूर्ति

है और खरोष्ठी में 'महदेवस रानो धरघोषस औदुम्बरिस' लिखा है। राजा के नाम के अतिरिक्त नीचले भाग में घेरे में वृक्ष तथा त्रिशूल बना है जो औदुम्बर गण के ताँबे के सिक्कों पर मिलता है। ब्राह्मी अक्षरों में राजा का नाम उल्लिखित है। कुछ सिक्के 'विश्वमित्र शैली' के भी कहे जाते हैं क्योंकि उस पर मनुष्य की आकृति को विश्वमित्र (गण के देवता) कहा जाता है। धरघोष महादेव का उपासक था या महादेव औदुम्बर जाति के उपास्य देव थे। एक दूसरे प्रकार का चाँदी का सिक्का मिला है जो महादेव सिक्के के ढंग का है। हाथी तथा त्रिशूल भी दिखलायी पड़ता है। इसी कारण इसे औदुम्बर गण का सिक्का मानते हैं। लेख 'विजय रानो वेमकिस रुद्रवर्मस' खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपियों में पाया जाता है। इस राजा की स्थिति के बारे में अधिक प्रमाण नहीं मिलता है।

तीसरे प्रकार के गोल ताँबे के सिक्के मिले हैं जो चिह्नों के आधार पर इस गण के माने जाते हैं। उन पर घेरे में वृक्ष हाथी त्रिशूल आदि दिखलायी पड़ते हैं जो औदुम्बर सिक्कों से मिलते-जुलते हैं। इन पर दो मंजिल का मंदिर दिखलाई पड़ता है। उनपर खरोष्ठी तथा ब्राह्मी मे राजाओं के नाम मिले हैं। इनके विषय में कोई निश्चित मत नहीं कायम किया जा सकता। ये मथुरा के राजा के समान 'मित्र' उपाधि धारी हैं जो इस गण के सिक्कों पर कम पाया जाता है। ब्रिटिश संग्रहालय में राज्ञो अजमित्रस तथा तीन अन्य शासकों—महीमित्र, भानुमित्र और महाभूतिमित्र—के सिक्के सुरक्षित हैं। ये पंजाब के होशियारपुर से मिले हैं जो पहली सदी में वहाँ प्रचलित थे। औदुम्बर सिक्कों से भारतीय वास्तुकला पर प्रकाश पड़ता है। उनपर मंदिर की आकृति मिलती है जिसके ऊपरी भाग में छत्र भी है। समीप में ही परशु के साथ त्रिशूल बना रहता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि औदुम्बर शैव मतानुयायी थे।

बहुत प्राचीन काल से मालव जाति भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी भाग में निवास करती थी। यूनान के राजा सिकन्दर ने जब (ई० पू० ३२३) पंजाब पर आक्रमण किया तो मालव जाति का राज्य रावी तथा सतलज के द्वाब में विस्तृत था। यूनानी लेखकों ने इसके लिए मैलोई (Malloi) शब्द का प्रयोग किया है। विदेशियों के दबाव से इस जाति की एक शाखा अजमेर (मेवाड़ा) के प्रांत में आकर बस गयी और वहाँ स्वतंत्रता-पूर्वक प्रजातंत्र के रूप में बहुत दिनों तक (पहली सदी) शासन करती रही। इस (मालव) जाति के निवास करने के कारण प्राचीन अवन्ति देश मालवा के नाम से प्रसिद्ध हो गया। ईसा पूर्व ५७वें वर्ष में एक सम्वत् भारतवर्ष में प्रचलित किया गया

मालव गण के सिक्के

जिसे इस गण के नाम पर मालव सम्वत् कहते हैं (इस सम्वत् के संस्थापक के बारे में अभी तक कोई मत निश्चित न हो सका है) सम्भवतः उस सम्वत को मालवा से अथवा मालव जाति के नाम से सम्बन्धित कर सर्वत्र प्रसिद्ध किया गया। कुषाण तथा पश्चिम की क्षत्रप राजाओं की उन्नति के कारण एक सौ वर्षों तक मालव जाति का सूर्य अस्त रहा। क्षत्रपों ने इनके राज्य को अपनी रियासत में सम्मिलित कर लिया। ईसा की दूसरी सदी तक शक लोगों के अधीन होकर यह जाति समय व्यतीत करती रही। परन्तु कुछ ही समय के बाद क्षत्रप जीवदामन और रुद्रसिंह में झगड़ा हो जाने के कारण मालव जाति ने विद्रोह का झंडा उठाया। इस तरह तीसरी सदी में मालव गण पुनः स्वतंत्र हो गया। क्षत्रप अथवा कुशाण नरेश मालव जाति को दबाने में असमर्थ रहे। मालव गण ने तीसरी तथा चौथी सदी में अगणित सिक्के तैयार कराए जिससे यह प्रगट होता है कि वे स्वतंत्र रूप से शासन करते रहे। उनके शासक की उपाधि महाराजा या सेनापति नहीं मिलती जिससे यह अनुमान किया जाता है कि गण का अधिपति चुना जाता था। समुद्रगुप्त की प्रयाग की प्रशस्ति में अन्य गण (यौधेय, मद्र) के साथ मालव का भी नाम आया है। डा० अलतेकर का मत है कि और गणों की तरह समुद्रगुप्त मालव का अंत न कर सका। ये किसी प्रकार मालवा में शासन करते ही रहे जब कि पाँचवी सदी में हूण लोगों ने मध्यदेश पर अधिकार कर मालव गण को सदा के लिए नष्ट कर दिया।

मालव गण ने ईसा पूर्व २०० से लेकर ईसवी सन् की चौथी सदी तक सिक्के चलाए। इनके सिक्के हजारों की संख्या में जयपुर राज्य के खंडहरों में मिले हैं। मालव जाति के सिक्के आकार में बहुत छोटे हैं। स्यात् संसार में इनसे छोटे आकार के सिक्के नहीं मिले हैं। पुराने सिक्के नये के मुकाबिले में बड़े हैं और उनका व्यास आध इंच के बराबर है। तौल में औसत साढ़े दस ग्रेन से अधिक नहीं है। सब से छोटे सिक्के डेढ़ ग्रेन के बराबर मिले हैं।

मालव गण ने दो प्रकार के सिक्के तैयार कराए। पहले समय में सिक्कों पर मालव जाति का नाम मिलता है और दूसरे प्रकार के सिक्कों पर राजाओं का नाम खुदा है। सिक्कों की बनावट तथा लेखनकला (लिपि) के आधार पर बहुत से सिक्के मालव गण के सिक्के बतलाए गए हैं। सभी सिक्के ताँबे के बने हैं। ईसवी पूर्व के गोलाकार सिक्कों पर अग्रभाग पर घेरे में बोधि वृक्ष तथा ब्राह्मी अक्षर में 'मालवानां जयः' अथवा 'जय मालवानां' लिखा मिलता है प्राकृत में इसे 'मालवण जय' लिखा गया है। पृष्ठ भाग पर सूर्य और सूर्य का चिह्न दिखाई पड़ता है। अन्य सिक्कों के पृष्ठ भाग पर घड़ा, सिंह की मूर्ति, नन्दि, राजा का

मस्तक, मोर की मूर्ति या नन्दिपाद सूर्य आदि की आकृतियाँ पायी जाती हैं परन्तु अग्रभाग की ओर प्रायः सभी पर घेरे में बोधी वृक्ष और ब्राह्मी में जाती का नाम (लेख) पाया जाता है ।

इनसे सर्वथा भिन्न चौकोर ढंग के सिक्के हैं जिनपर मालव जाति (गण) का नाम न लिखकर प्रत्येक राजा का नाम खुदा हुआ है । प्रायः सिक्कों से चालीस राजाओं के नाम विदित हुए हैं । यम, मयय, मगज, गजव, पछ, पय इत्यादि विचित्र नामों के साथ महराय नाम भी आता है । परंतु इसे पदवी न मानकर राजा विशेष का नाम ही माना जा सकता है । स्मिथ महोदय ने अपने सूची-पत्र में ऐसे सिक्कों की सूची दी है जिनपर कोई लेख नहीं मिलता है परन्तु घड़ा, अथवा वृक्ष की आकृति मिलती है । नन्दि की भी मूर्ति मिली है । इसलिए बनावट के विचार से इन सिक्कों को मालव सिक्के कहा जा सकता है ।

पूर्वी राजपूताना में कुछ ऐसे सिक्के मिले हैं जिनपर रजञ (संस्कृत में राजन्य) लिखा मिलता है । ये सिक्के ईसा पूर्व पहली सदी में तैयार किए गए थे । स्मिथ का अनुमान था कि राजन्य शब्द से क्षत्रिय जाति का बोध होता है पर व्याकरण ग्रन्थों (कात्यायन, पतंजलि) के आधार पर राजन्य से एक जाति का अर्थ समझा जाता है । अब यह निश्चित रूप से कहा जाता है कि वे उन सिक्कों को एक जाति (गण) ने तैयार कराया था । सिक्कों के अग्रभाग पर हाथ उठाए मनुष्य की मूर्ति और खरोष्ठी में 'राजन्य जनपदस' लिखा है । पृष्ठ भाग में नन्दि की आकृति है । अन्य सिक्के भी उसी तरह के हैं पर खरोष्ठी के स्थान को ब्राह्मी ने ले लिया है ।

राजन्य सिक्के

इस अध्याय के आरम्भ में कहा जा चुका है कि सर्वप्रथम भारतवर्ष में चंद्रगुप्त मौर्य ने साम्राज्य या एक राष्ट्र की भावना को कार्यरूप में परिणत किया था । उसने पाटलिपुत्र के छोटे राज्य को जीतकर विशाल साम्राज्य कायम किया । उस वंश के अंतिम नरेश उस राज्य को सँभाल न सके और सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया । शुंगवंश का राज्य बहुत समय तक न रह सका । मौर्य साम्राज्य के छिन्न भिन्न होते ही स्थान स्थान पर प्रान्त के गवर्नर अथवा अन्य व्यक्तियों ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी । पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी उन प्रान्तों (जनपदों) को अपने वश में न रख सके । ऐसे स्थानों में तक्षशिला, मथुरा, पांचाल, कौशाम्बी (वत्स राज्य), कोसल की राजधानी अयोध्या (साकेत) आदि का नाम लिया जा सकता है । शुंगवंश के कुछ सिक्के अभी

जनपद के सिक्के

तक मिले हैं परन्तु उसके समकालीन जनपदों के राजाओं के सिक्के बहुत संख्या में मिले हैं। उन जनपदों में गुप्तकाल से पूर्व शासक राज्य करते रहे परन्तु समुद्रगुप्त के दिग्विजय से सब का अंत हो गया। यही कारण है कि जनपदों के सिक्के ईसा पूर्व २०० वर्ष से प्रारम्भ होकर तीसरी सदी तक समाप्त हो जाते हैं। गुप्त शासन में किसी भी अन्य अधीन राजा को सिक्का तैयार करने का अधिकार न था। मौर्य के बाद तथा गुप्त सम्राटों से पूर्व के समय में उत्तरी भारत में जनपद राज्यों के सिक्के मिलते हैं। अयोध्या तथा अहिच्छत्र (पांचाल) के सिक्कों पर मित्र नाम अधिक पाया जाता है। विद्वानों ने इससे अनुमान लगाया है कि किसी 'मित्र' वंश का राज्य इन स्थानों में था। परन्तु नाम के ऊपर वंश स्थिर करना किसी तरह प्रामाणिक नहीं समझा जा सकता। अग्निमित्र नामधारी राजा के सिक्के मिले हैं जिसका शुंगवंश से सम्बन्ध स्थापित करना कठिन है। केवल नाम की समानता पर ऐतिहासिक तथ्य नहीं स्थिर किया जा सकता। अभी तक जनपदों के सिक्कों के आधार पर किसी वंश के शासन के सम्बन्ध में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है। जिस जनपद में सिक्के मिले हैं उसी स्थान के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन सिक्कों की बनावट तथा लिपि (लेखन शैली) को देखकर तिथि का अनुमान किया जाता है वरन् उन राजाओं के नाम के अतिरिक्त सिक्कों से कुछ पता नहीं लगता। उनके शासन काल को निश्चित करना कठिन है।

कोसल जनपद के सिक्के अयोध्या में प्राप्त होने के कारण इसी नाम से विख्यात हैं। अयोध्या का इतिहास बड़ा प्राचीन है। साकेत नाम से इसे पुकारते थे। इस स्थान पर शासन करने वाले राजाओं का इतिहास लुप्त हो गया है। सिक्कों पर धनदेव तथा विशाखदेव का नाम अंकित है। ये सिक्के ईसा पूर्व पहली शताब्दी के माने जाते हैं जो साँचे में ढालकर तैयार किए गये थे।

अयोध्या के सिक्के

अयोध्या से 'सूर्य तथा नन्दि' चिह्न वाले अनेक सिक्के मिले हैं जिनपर राजाओं के नाम के साथ मित्र शब्द जुड़ा मिलता है। इसे देखकर कुछ लोगों का विश्वास हो गया था कि अयोध्या में मित्रवंश के व्यक्तियों ने राज्य किया। कनिंघम का मत था कि मित्र नामधारी पांचाल के राजाओं का राज्य अयोध्या तक फैला था। मित्र शब्द से अहिच्छत्र (पांचाल) तथा अयोध्या के मित्रवंश में एकता बतलाई जाती है। कहाँ तक इसमें ऐतिहासिक तथ्य है यह कहना कठिन है। अयोध्या के दस राजाओं के नाम सिक्के से मिले हैं। पहले के सिक्के साँचे में ढाले गए थे और बाद वाले ठप्पे पर तैयार किए गए थे। ये सर्वथा भारतीय शैली के हैं। कोसल (अयोध्या) राज्य की मुद्राएँ ईसा पूर्व २०० से ईसवी सन् २०० तक

प्रचलित रही। अयोध्या के सिक्के चिह्नों के द्वारा पुकारे जाते हैं। मित्रवंश के दस विभिन्न राजाओं के सिक्के मिले हैं। उनको 'वृषभ तथा मूर्गे' प्रकार के नाम से पुकारा जाता है।

अग्रभाग	पृष्ठभाग
खड़े नन्दि की मूर्ति और ब्राह्मी अक्षरों में राजा का नाम आयुमित्र या सत्यमित्र या देवमित्र या विजयमित्र आदि लिखा मिलता है।	बीच में ताड़ वृक्ष, बाईं और मूर्गा वृक्ष को देखता हुआ चित्रित है।

ताँबे के सिक्के अन्य प्रकार के मिले हैं। उनपर एक ओर नन्दि, हाथी अथवा स्वस्तिक आदि का चिह्न मिलता है। ऊपर की ओर विशाखदेव धनदेव, कुमुदसेन, अजवर्मा आदि राजाओं के नाम ब्राह्मी अक्षर में खुदा रहता है। इन सिक्कों के पृष्ठ भाग पर सूर्य का चिह्न, घेरे में वृक्ष, त्रिशूल या नन्दिपाद अथवा किसी स्त्री की मूर्ति दिखलाई पड़ती है। ये सिक्के ऊपरी चिह्न से नन्दि वाला, हाथी वाला, लक्ष्मी वाला तथा स्वस्तिक वाला (शैली के सिक्के) पुकारे जाते हैं। इन तमाम सिक्कों को क्रमशः काल के अनुसार निम्न प्रकार से रख सकते हैं। (१) विशाखदेव (२) धनदेव (३) मूलदेव (४) कुमुमसेन (५) अजवर्मा (६) संघमित्र (७) विजयमित्र, (८) देवमित्र (९) सत्यमित्र तथा (१०) आयुमित्र के सिक्के प्रचलित रहे।

प्राचीन समय में पंचाल देश रुहेलखण्ड के प्रान्त का बोधक था। पांचाल जनपद गङ्गा नदी के कारण उत्तरी तथा दक्षिण भागो में बँटा था। उत्तरी भाग की राजधानी अहिच्छत्र थी जो नगर आधुनिक रामनगर से साढ़े तीन मील उत्तर की ओर स्थित था। दक्षिण की राजधानी काम्पिल्य थी। पांचाल जनपद के सिक्के उत्तरी भाग से संबंध रखते हैं और बरेली के समीप भूभाग में पाए गए हैं। यहाँ पर सभी सिक्के ठप्पा द्वारा तैयार किए जाते थे।

पांचाल के सिक्के

यद्यपि पांचाल जनपद के सिक्के अधिकतर अहिछत्तर नामक स्थान से मिले हैं परंतु राज्य की सीमा निर्धारित करना कठिन है। स्मिथ आदि विद्वानों का अनुमान है कि पांचाल वंश के नरेशों का राज्य पूर्वी कोसल (गोरखपुर, बस्ती आदि के जिले) तक फैला था। सम्भवतः वे दोनों पांचाल तथा कोसल (राजधानी अयोध्या) जनपदों के शासक थे। इन सिक्कों की लिपि तथा लेख से प्रगट होता है कि ये ईसा पूर्व २०० से लेकर ईसा की पहली सदी तक प्रचलित रहे। काल का विचार करके तथा पभोसा लेख के प्रमाण पर यह प्रगट होता है कि पांचाल (अहिछत्तर के राजा) तथा वत्स (कौशाम्बी के राजा) दोनों राज्यों पर एक ही वंश का राज्य था। इसकी पुष्टि वंगपाल के ताम्बे के प्राप्त सिक्के से की जाती है। यह नाम अहिछत्तर के एक सिक्के में उल्लिखित है तथा पभोसा के लेख में भी वंगपाल का नाम आता है। डा० अलतेकर ने सिक्के तथा लेख वाले वंग-पाल को एक ही व्यक्ति माना है।

पांचाल के सिक्कों पर जो नाम मिलते हैं उनके अंत में मित्र शब्द जुड़ा हुआ है। अतएव यह विचार किया जाता है कि मित्रवंश का अहिछत्तर में राज्य था जिसके राजाओं ने सिक्के चलाए। यहाँ के सिक्कों में अग्निमित्र नामक राजा का सिक्का मिला है। कुछ विद्वान रैपसन आदि इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि शुंग वंश का द्वितीय शासक पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र तथा अहिछत्तर का राजा (सिक्कों वाला) अग्निमित्र एक ही व्यक्ति थे। पुराण तथा मालविकाग्निमित्र में उल्लिखित अग्निमित्र की समता सिक्कों के चलाने वाले राजा अग्निमित्र से करते हैं। परन्तु यह विचार युक्तिसंगत नहीं है। केवल नाम की अभिन्नता तथा मित्र पदवी के सादृश्य से कोई ऐतिहासिक निर्णय नहीं किया जा सकता। यह सम्भव है कि वे (पांचाल के राजा) शुङ्ग वंश के समकालीन राज्य करते रहे हों और अधीनता स्वीकार कर ली हो। अहिछतर में शिवमंदिर की खुदाई में पांचाल वंशी राजाओं के सिक्के मिले हैं जिनसे प्रायः बारह नरेशों के नाम ज्ञात होते हैं। स्यात् ऐसी लम्बी तथा एक समान सिक्कों की श्रेणी अन्यत्र नहीं पायी जाती। सभी सिक्के ताँबे के हैं, गोलाकार हैं तथा ठप्पा से राजा का नाम और चिह्न अंकित किए गए मिले हैं। प्रायः सभी सिक्कों पर तीन चिह्न एक से मिलते हैं और ब्राह्मी में राजा नाम। पृष्ठ भाग पर घेरा या कुण्ड की आकृति अथवा अग्नि या इन्द्र की मूर्ति दिखलाई पड़ती है। इन सिक्कों पर तीन चिह्नों (बाईं ओर घेरे में वृक्ष, मध्य में शिवलिंग जिसकी रक्षा नागदेवता कर रहे हैं तथा दाहिनी ओर सर्पों से बनाया गया वृत्ताकार चिह्न है) के नीचे किसी एक राजा— अग्निमित्र, भानूमित्र, भूमिमित्र, बृहस्पतिमित्र, ध्रुवमित्र, इन्द्रमित्र, जयमित्र,

फाल्गुनिमित्र, सूर्यमित्र या विष्णुमित्र आदि में से—का नाम लिखा रहता है। दूसरी ओर हवनकुण्ड, ज्वालायुक्त अग्नि, अथवा मनुष्य की आकृति बनी रहती है। किसी किसी पर नन्दिपाद, शिव, इन्द्र आदि की मूर्तियाँ अंकित मिलती हैं। संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अहिछत्तर के राजाओं ने दो सौ वर्षों तक राज्य किया, सिक्के चलाए तथा वत्स और पांचाल में समान रूप से शासन किया। इसके अतिरिक्त पांचाल वंशी नरेशों के विषय में कोई अन्य ऐतिहासिक बातें मालूम नहीं हैं। सिक्कों के आधार पर डा० अलतेकर ने पांचाल में शासन करने वाले दूसरे राजाओं के नाम का पता लगाया है।

आधुनिक इलाहाबाद नगर से तीस मील दक्षिण पश्चिम यमुना के समीप वत्स नामक जनपद था जिसका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में भी मिलता है। वर्तमान कोसम (प्राचीन कौशाम्बी) उस राज्य की राजधानी थी। जैसा कहा जा चुका है कि शुङ्ग काल के बाद ही यहाँ के राजा स्वतंत्र रूप से सिक्के चलाने लगे और अपना नाम उस पर अंकित कराया। कौशाम्बी के समीप पभोसा के लेख से प्रगट होता है कि वत्स तथा पांचाल दोनों जनपद एक राजा के अधीन थे और उसी वंश का दोनों स्थानों पर शासन था। उस लेख में यह वर्णित है कि कौशाम्बी के राजा वहसतिमित्र का पितामह भागवत अहिछत्तर के राजा का पुत्र था। इसकी पुष्टि सिक्कों से की जाती है। कौशाम्बी के राजा वहसतिमित्र के सिक्के कौशाम्बी के अतिरिक्त अहिछत्तर में भी मिले हैं, जो पांचाल राजधानी थी। कौशाम्बी के शासकों के सम्बन्ध में विशेष बातें ज्ञात नहीं हैं परन्तु सिक्कों के द्वारा इस जनपद में राज्य करने वाले राजाओं के नामों का पता लगता है। वहसतिमित्र के सिक्के अधिक मिले हैं। कनिंघम ने अश्वघोष, जेठमित्र, तथा देवमित्र आदि का नाम सिक्कों पर पढ़ा था। वर्तमान समय में डा० अलतेकर ने कौशाम्बी के सिक्कों का विशेष रूप से अध्ययन कर उसके इतिहास पर प्रकाश डाला है तथा अनेक नए राजाओं के नामों का पता लगाया है। कौशाम्बी के सारे सिक्कों पर नन्दि तथा घेरे में वृक्ष का चिह्न पाया जाता है। अग्रभाग में घेरे में वृक्ष दिखलाई पड़ता है तथा उसके नीचे सीधी लकीर में अश्वघोष, राधामित्र, सूरमित्र, वरुणमित्र, प्रजापतिमित्र, राजनिमित्र आदि का नाम मिलता है। पृष्ठ ओर नन्दि (वृषभ) की मूर्ति सब सिक्कों में पायी जाती है। इन सिक्कों के लेखन-शैली तथा लिपि के आधार पर स्थिर किया जाता है कि ईसा पूर्व दूसरी तथा पहली सदी में ये राजा शासन करते थे। राजमित्र तथा वरुणमित्र के सिक्के अहिछत्तर (रामनगर) में भी मिले हैं परन्तु उनपर पांचाल चिह्न

कौशाम्बी के सिक्के

वर्तमान नहीं है। वरुणमित्र का शिलाखण्ड पर एक लेख कौशाम्बी में मिला है (राज्ञो गोतीपुतस वरुणमितस... ..) जिस आधार पर ये सिक्के कौशाम्बी नरेश द्वारा चलाए माने जाते हैं।

कौशाम्बी के सिक्कों से मध्यदेश (संयुक्त प्रान्त) के प्राचीन इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ा है। मौर्य शासन के बाद इस भूभाग का इतिहास अंधकारमय समझा जाता था परन्तु नए खोज से प्राप्त सिक्कों द्वारा दो विभिन्न वंशों का पता लगता है जो ईसा पूर्व दूसरी सदी में तथा ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी में राज्य करते रहे। सब से पहला कौशाम्बी का शासक बवघोष माना जाता है जिसके सिक्के पर वृषभ (वत्स) की आकृति के कारण उस राज्यवंश का नाम वत्स रक्खा गया। सम्भवतः वह ईसा पूर्व १५० में राज्य करता था। पुष्यमित्र शुङ्ग का भी राज्य मध्यदेश तक विस्तृत था जिसके शासन पश्चात् मित्र नामधारी राजागण कौशाम्बी पर ईसवी सन् ५० तक राज्य करते रहे। इसी वंश के अनेक राजाओं का नाम डा० अलतेकर ने सिक्कों को पढ़कर प्रकाशित किया है। केवल मित्र पदवी से शुङ्ग वंश से इनका कोई सम्बन्ध न समझना चाहिए। मित्रवंश के पश्चात् पचास वर्षों तक कुशाण वंश का अधिकार कौशाम्बी पर स्थिर रहा। कनिष्क के महाक्षत्रप इस प्रान्त में शासन करते रहे परन्तु उस अवधि के बाद मग नामधारी राजाओं ने कुशाण शासन को नष्ट कर कौशाम्बी पर राज्य स्थापित कर लिया था। उस वंश के शिवमग, भद्रमग, मतमग, विजयमग तथा पूरमग आदि राजाओं के नाम डा० अलतेकर ने पता लगाया है। उनके कथनानुसार पुशवश्री नामक अंतिम कौशाम्बी नरेश को समुद्रगुप्त ने परास्त कर इसे गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था।

कौशाम्बी के सिक्के केवल ताँबे के मिले हैं जिनकी तौल आधा तोला के बराबर मिलती है। उनका मूल्य आजकल के चार आने के बराबर माना गया है। ताँबे के सिक्के चलाने का मुख्य कारण यह था इसी से पर्याप्त सामग्री खरीदी जा सकती थी सर्वसाधारण के लिए चाँदी के सिक्कों की आवश्यकता न थी जैसे वर्तमान समय में सोने के मुहर जनता में प्रयोग नहीं होते। आजकल के पैसा के स्थान पर कौड़ियाँ चलती थीं। एक रुपया (एक तोला चाँदी) में एक गाय, ३२ सेर अच्छा चावल अथवा ५ सेर घी खरीदा जाता था। इसलिए साधारण जनता का कार्य उन ताँबे के सिक्कों से ही सुगमता से चलता रहा।

मथुरा के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। यह सभी को

मालूम है कि प्राचीन काल से ही यह हिन्दू तथा जैनियों का एक प्रधान तीर्थ-स्थान रहा है। यों तो मथुरा का नाम श्रीकृष्ण के साथ

मथुरा के सिक्के सम्बन्धित है परन्तु ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से मथुरा में कुछ शासकों ने सिक्के चलाए जिनके बारे में विशेष रूप से कुछ ज्ञात नहीं है केवल उनका नाम मात्र सिक्कों पर अंकित मिलता है। स्यात् वे शुंग सम्राट के अधीन होकर राज्य करते थे। मथुरा में उन राजाओं का शासन शक क्षत्रपों से पूर्व (ईसा पूर्व प्रथम सदी) में रहा। हगाम (मथुरा के क्षत्रप) के सिक्कों के साथ कई राजाओं के सिक्के मिले हैं जो उसके पूर्व के माने गए हैं। उन पर बलभूति, पुरुषदत्त, भवदत्त, उत्तमदत्त, रामदत्त, गोमित्र, विष्णुमित्र तथा ब्रह्ममित्र के नाम खुदे हैं। बलभूति कौशाम्बी के बृहस्पतिमित्र का समकालीन राजा था। कुल सिक्कों को चिह्न के अनुसार कई भागों में विभक्त किया जाता है। अधिकतर सिक्के ताँबे के बने हैं। ऊपरी भाग में चिह्न के अतिरिक्त राजा का नाम मिलता है। मथुरा के सिक्कों पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
(सब सिक्कों पर) एक मनुष्य (कृष्ण) की मूर्ति, ब्राह्मी में बलभूति लिखा है। एलन इस आकृति को लक्ष्मी की मूर्ति मानते हैं।	बिन्दुओं का समूह अथवा घेरे में वृक्ष या हाथी की मूर्ति या घोड़े की मूर्ति मिलती है। (इन्हीं चिह्नों के अनुसार सिक्कों में भेद पाया जाता है)

कुछ राजाओं के सिक्कों पर 'राज्ञो' शब्द नाम से पूर्व खुदा मिलता है। सब पर भगवान् कृष्ण की मूर्ति मिलती है यह मथुरा के सिक्कों की विशेषता है। इनके पश्चात् (ईसा पूर्व ५० वर्ष के बाद ही) शक लोगों का मथुरा पर अधिकार हो गया। ब्रिटिश संग्रहालय लंदन में मथुरा शैली के कई सिक्के सुरक्षित हैं जो एक ही साँचे में ढाले गये हैं। उनके अग्रभाग पर लक्ष्मी की आकृति तथा पाँच विभिन्न चिह्न खुदे हैं। पृष्ठ भाग पर हाथी या घोड़े की मूर्ति दिखलाई पड़ती है। इस प्रकार के जितने गोलाकार सिक्के मिले हैं उन पर ब्रह्ममित्र, सूर्यमित्र, उत्तमदत्त या रामदत्त आदि राजाओं का नाम मिलता है। इसी प्रकार के और भी सिक्के मिले हैं जिनकी बनावट एक समान नहीं है। एलन ने उन्हें भी मथुरा के सिक्के कह कर उल्लेख किया है।

तक्षशिला नगर बहुत प्राचीन काल से अपनी स्थिति बनाए चला आ रहा है उसकी प्रसिद्धि तो सभी ने सुनी होगी। तक्षशिला के सांस्कृतिक केन्द्र के विषय को छोड़ कर वहाँ से चलाए गए सिक्कों के बारे में दो शब्द कहना पर्याप्त होगा। पंजाब के रावलपिंडी से बीस मील उत्तर-पश्चिम यह नगर स्थित है। वह व्यापार के मुख्य मार्ग में स्थित होने के कारण भारत तथा पश्चिमी एशिया से सम्बन्ध स्थापित करता रहा। यहाँ पर ईरानी, यूनानी, मौर्य, भारतीय, ग्रीक, शक, पह्लव तथा कुषाण वंशी नरेशों ने राज्य किया। यों तो सभी राजाओं के सिक्के वहाँ मिलते हैं परन्तु स्थानीय राजा के सिक्के का वर्णन यहाँ किया जायगा। भारतवर्ष में सर्वप्रथम तक्षशिला में ठप्पे से सिक्के तैयार करने की विधि निकाली गयी। धातु को काफी गर्म करके ठप्पे से निशान लगा दिया जाता था। इस तरह सिक्के पर चिह्न तथा नाम आदि अंकित हो जाते थे। स्मिथ का अनुमान है कि यह प्रथा ईसा पूर्व ३५० से पहले की है। इस शैली (अग्रभाग पर ठप्पा द्वारा चिह्न तथा पृष्ठ भाग खाली) का प्रयोग तक्षशिला के सब सिक्कों में सर्व प्रथम पाया जाता है। तक्षशिला के दोनों ओर ठप्पे से चिह्न तथा नाम अंकित करने का तरीका बाद में काम में लाया गया। वहाँ पर पहले चौकोर तथा भारी सिक्के तैयार होते रहे। पीछे मोटे तथा गोलाकार बनने लगे। सब से अंतिम समय में प्रचलित पतले और गोल आकार के सिक्के मिलते हैं। पहले प्रकार के सिक्कों पर अग्रभाग में चिह्न है। उसी ओर चैत्य, नन्दिपाद, विहार (मठ) तथा तक्षशिला का विशेष चिह्न मिलता है। पृष्ठ भाग पर सब सिक्कों में किसी प्रकार का चिह्न नहीं (खाली स्थान) है। कुछ सिक्के ऐसे भी मिले हैं जिनपर दोनों ओर चिन्ह बने हैं। अग्रभाग में मेरु पर्वत, नन्दिपाद, शेर और हाथी, घोड़े तथा हाथी की आकृतियाँ बनायी गयी हैं। पृष्ठ भाग की ओर हाथी, पर्वत वृक्ष आदि की मूर्ति अथवा अग्र भाग की तरह चिह्न दिखलाई पड़ते हैं। तीसरे ढंग के सिक्के को नैगम मुद्रा के नाम से पुकारते हैं। ये तक्षशिला में मिले हैं। इन सिक्कों को निगम या श्रेणी संस्थाओं ने तैयार कराया था। ऐसे सिक्कों पर

तक्षशिला के सिक्के

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
ब्राह्मी अक्षर में स्थान का नाम तालीमत, जो दोजक अटका आदि लिखे मिलते हैं।	ब्राह्मी अक्षर में नेगमा (नैगम के लिए) खुदा है।

तक्षशिला में भीर नामक टीला की खुदाई में दो प्रकार के पंचमार्क सिक्के मिले हैं जिनपर ठप्पे से चिह्न लगाया गया था। उनकी टेढ़ी तथा गोल आकृति के भेद के कारण प्रचलित काल का भी अनुमान किया जा सकता है। सबसे पुराने ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के सिक्के चाँदी के छड़ को काटकर तैयार किये जाते थे जिनकी लम्बाई १·२ इंच से १·७ इ० तक तथा चौड़ाई ·४ इंच तक पायी जाती है। इन सिक्कों पर भी ठप्पे से चिह्न लगाए जाते थे जिसका व्यास इन सिक्कों की चौड़ाई से अधिक था। ऐसे सिक्के मिले हैं जिन सिक्कों की चौड़ाई ·२, ·३ या ·४५ इंच है परन्तु उन्हें ·६ इ०, ·७ इ० या ·८ इ० के व्यास वाले ठप्पे से चिह्नित (आहत) किया गया है। इस कारण पूरा चिह्न इन छड़ वाले सिक्कों पर नहीं मिलता। ये छड़ कुछ झुके (टेढ़े) रहते थे। एलन का कहना है कि ये छड़ वाले चाँदी के सिक्के वही हैं जिन्हें तक्षशिला के राजा आम्भि ने सिकन्दर को भेंट किया था। इनकी औसत तौल १६६ ग्रेन तथा १७५ ग्रेन तक मिली है। इससे प्रगट होता है कि ये भारतीय शतमान १०० रत्ती या १८० ग्रेन के बराबर तैयार होते रहे। ये सर्वथा भारतीय ढंग के थे और इनका ईरानी रीति से कोई सम्बन्ध नहीं था। इन झुके छड़ सिक्कों के दोनों किनारों पर तक्षशिला चिह्न दिखलाई पड़ता है। इन टेढ़े छड़ सिक्कों के अतिरिक्त गोलाकार आहत सिक्के भी अधिक संख्या में मिले हैं जिनका प्रचार छड़ सिक्कों के पश्चात् तक्षशिला प्रांत में ईसा पूर्व सदियों में रहा। छड़ सिक्के मौर्य काल से पूर्व प्रचलित थे। भीर टीला से चाँदी के सिक्कों के अतिरिक्त ताम्बे के टेढ़े छड़ की आकृति में सिक्के मिले हैं जिन पर वही चिन्ह पाया जाता है।

आधुनिक मालवा का प्राचीन नाम अवन्ति था। इसकी राजधानी उज्जैन थी। यों तो यह स्थान मौर्य काल से महत्त्वपूर्ण रहा परन्तु उस नगर में राज्य करने वाले कुछ ऐसे व्यक्ति थे जिनके नाम का पता नहीं

अवन्ति के सिक्के लगता। उनके चलाए हुए सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों पर एक विशेष प्रकार का चिह्न मिलता है जिसे मालव चिह्न कहते हैं। यह चिह्न केवल उज्जयिनी में ही नहीं पर वेसनगर एरण आदि स्थानों के सिक्कों पर पाया जाता है। कुछ सिक्कों पर उजेनिय लिखा मिलता है।

लेखन शैली तथा अक्षरों के प्रमाण पर ये सिक्के ईसा पूर्व दूसरी सदी के माने जाते हैं।

विभिन्न चिह्नों के कारण उज्जयिनी के सिक्के कई प्रकार के मिलते हैं। अधिकतर उज्जयिनि के सिक्के गोल आकार के बनते थे परन्तु जहाँ पर चौकोर हैं वहाँ पर भी गोल ठप्पे से अंकित किए जाते थे। इन सिक्कों के अग्रभाग की ओर कई चिह्न

पाए जाते हैं और पृष्ठभाग पर अधिकतर मालव चिह्न ही पाया जाता है।

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
घेरे में वृक्ष, चैत्य मेरु पर्वत, नन्दि, हाथी, घोड़े, लक्ष्मीदेवी छत्र अथवा महाकाल की आकृति तैयार की गयी है (महाकाल उज्जयिनी की स्थानीय आराध्य देव माने जाते हैं)	मालव चिह्न (कभी इसके साथ स्वस्तिका) तथा 'उजेनिय' शब्द लिखा मिलता है।

यहाँ एक विशेष प्रकार का सिक्का मिला है जो अधिक संख्या में प्रचलित था उसके अग्रभाग की ओर खड़े हुए मनुष्य की मूर्ति है जो स्यात् देव, राजा अथवा राज्यध्वजा पकड़े आदमी की आकृति है। उसके साथ में नन्दिपाद, स्वस्तिक, तालाब और मछली, घेरे में वृक्ष या छत्र की भी आकृति बनी पायी जाती है। पृष्ठभाग पर मालव चिह्न है।

एरण के सिक्के

एरण मध्य प्रांत के सागर जिले में शहर से ४१ मील तथा भिलसा से ५० मील उत्तर पूर्व स्थित है। अवन्ति के सिक्कों की तरह एरण में भी अनेक ढंग के सिक्के मिले हैं जिन पर उज्जयिनी वाले सिक्कों के चिह्न पाए जाते हैं। कुछ तो सिक्के ढाल कर तैयार किए गए थे और कुछ पर दोनों ओर ठप्पे के निशान बने हैं। सम्भवतः लेख वाला सिक्का सर्वप्रथम एरण में ही पाया गया है। एरण में विदिशा (बेसनगर) तथा उज्जयिनी की तरह असंख्य सिक्के मिले हैं। उनका आकार चौकोर या वर्ग में मिलता है। उनके देखने से प्रगट होता है कि विदिशा, एरण तथा उज्जयिनी में किसी प्रकार का राजनैतिक सम्बन्ध था। दो विशेष ढंग के सिक्के एरण में मिले हैं। पहले पर अग्रभाग में 'धर्मपालित' खुदा है तथा पृष्ठ भाग की ओर खाली है। भारतवर्ष में यह लेख वाला सब से पुराना सिक्का माना जाता है। दूसरे सिक्के पर 'एरण' लिखा पाया गया है। ये सिक्के गोल हैं। अक्षर एक के नीचे दूसरा लिखा है। यहाँ के कुछ सिक्के तो अधिक बड़े और भारी हैं तथा कुछ बिलकुल छोटे तथा हलके हैं।

इस तरह अनेक छोटे छोटे स्थानों पर सिक्के मिले हैं। उसके चलाने वाले राजा के विषय में अधिक जानकारी नहीं है सिर्फ सिक्कों से उनका नाम ज्ञात हो जाता है। प्राप्ति स्थान के कारण सिक्कों को उस स्थान से सम्बन्धित किया जाता

है। अलमोड़ा के पर्वतीय प्रदेश से भी शिवदत्त तथा हरिदत्त नामक राजाओं के सिक्के मिले हैं जिनका पता इतिहास से नहीं लगता। इन सिक्कों पर प्राकृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में लेख खुदे हैं तथा दोनों तरफ चिह्न भी पाए जाते हैं। अग्रभाग पर रेखा में वृक्ष के सम्मुख वृषभ की मूर्ति है और पृष्ठभाग में विचित्र चिह्न है। ब्रिटिश संग्रहालय लंदन में कुछ पंचमार्क चिह्न वाले सिक्के सुरक्षित हैं जिन्हें प्राप्तिस्थान के कारण कन्नौज के सिक्के कहते हैं। प्राकृतभाषा में ब्रह्ममित्तस तथा सूर्यमित्तस लिखा पढ़ा गया है। कन्नौज के इतिहास में ईसा पूर्वसदी में इन राजाओं के शासन का कुछ पता नहीं मिलता। परन्तु चिह्नों से प्राचीन सिक्के प्रगट होते हैं। इस प्रकार के सिक्के यत्र तत्र मिल जाते हैं जिनके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता।

——

पांचवां अध्याय

सातवाहन राजाओं के सिक्के

ईसा पूर्व की द्वितीय शताब्दी में दक्षिण भारत में एक राज्य का उदय हुआ था जो इतिहास में सातवाहन के नाम से प्रसिद्ध है। यह जाति दक्षिण भारत में निवास करती थी जिसने आर्य संस्कृति को ग्रहण किया था। इनका मूल निवास स्थान महाराष्ट्र था। वहाँ से यह जाति गोदावरी तथा कृष्णा के मध्य प्रदेश जिसे आंध्र देश या तेलेगु प्रांत कहते हैं निवास करने लगी। इस प्रांत में रहने के कारण सातवाहन लोग आंध्र नाम से भी प्रसिद्ध हुए। यह नाम पुराणों में (मत्स्य, भागवत, विष्णु आदि) सर्वत्र मिलता है परन्तु इस जाति की प्रशस्तियों में सदा शातकर्णी या सातवाहन शब्द का ही प्रयोग मिलता है। यद्यपि यह जाति दक्षिण भारत में पहले से चली आरही थी परन्तु अशोक के बाद (ई० पूर्व २४०) इसका विकास हुआ। उसी समय से तीसरी सदी तक सातवाहन वंश का राज्य बना रहा। इस वंश के समय निर्धारित करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं परन्तु अन्य शासकों से उनकी समकालीनता स्थिर कर किसी नतीजे पर पहुँच सकते हैं। मत्स्य पुराण में आंध्र वंश के २६ राजाओं का उल्लेख मिलता है जिन्होंने ४६० वर्ष तक राज्य किया। परन्तु लेखों तथा सिक्कों के आधार पर ऐसी कोई वंशावली तैयार नहीं की जा सकती। पिछले अध्याय में यह बतलाया जा चुका है कि नन्दवंश के शासन काल से पुराण या कार्षापण का भारतवर्ष में अधिक प्रचार था। मौर्य राज्य काल में भी पंचमार्क (पुराण) सिक्के सारे भारत में प्रचलित थे। दक्षिण भारत में सब से पुराने पंचमार्क सिक्के ही पाए जाते हैं। उसके पश्चात् सातवाहन वंश के सिक्के कई स्थानों से मिले हैं। इन सिक्कों का विस्तृत वर्णन करने से पूर्व उनका संक्षिप्त इतिहास जानना आवश्यक है जो अप्रासंगिक न होगा।

इतिहास

मौर्य साम्राज्य की अवनति होने पर भारतवर्ष में शुंग और कण्व के अतिरिक्त गण (प्रजातंत्र) तथा छोटे राज्यतंत्र कायम हो गए थे। यह काल 'अश्वमेध यज्ञ' युग के नाम से पुकारा जाता है। इसमें शासकों ने अश्वमेध 'यज्ञ का पुनरुद्धार किया। मौर्य सत्ता के छिन्न भिन्न हो जाने पर दूर के जनपद अलग होकर स्वतंत्र हो गए। दक्षिण में आंध्र में एक नई राजसत्ता स्थापित हो गयी जो सातवाहन

वंश के नाम से प्रसिद्ध हुई। उस समय एकछत्र राष्ट्र न होने के कारण मगध, कलिङ्ग, महाराष्ट्र, आंध्र और काबुल में नए नए राज्य उदय हो गए। दक्षिण में सातवाहन (दूसरा रूप शालिवाहन) राज्य का संस्थापक शिमुक बतलाया जाता है। उसके पुत्र शातकर्णी का नाम सह्याद्रि में स्थित नानाघाट के लेख तथा उड़ीसा के राजा खारवेल (ई० पू० १७० वर्ष में) की प्रशस्ति में उल्लिखित है। इससे प्रगट होता है कि शातकर्णी का राज्य आंध्र प्रदेश से बाहर विस्तृत था। उसके दो अश्वमेध यज्ञ करने का विवरण लेखों से मिलता है। पहली शताब्दी तक सातवाहन वंश की प्रधानता जाती रही। उस समय क्षत्रपों की शक्ति बढ़ जाने से आंध्र राज्य तेलेगु प्रदेश में ही सीमित रहा। इन तीन सौ वर्षों में सब से उल्लेखनीय बात यह है कि सातवाहन वंश में हाल नामक एक राजा पैदा हुआ जिसने 'गाथासप्तशती' नामक प्राकृत ग्रन्थ की रचना की थी। यहाँ यह कहना उचित मालूम पड़ता है कि इन शताब्दियों में भारत की राष्ट्र भाषा प्राकृत थी। सातवाहनों के दरबार में प्राकृत ही को विशेष आश्रय मिला। उनके सब लेख प्राकृत में मिले हैं। दक्षिण पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ कर प्रायः सारे दक्षिण पर शातकर्णी का अधिकार हो गया था अतएव वह 'दक्षिणापथपति' की पदवी से विभूषित किया गया। ईसवी पूर्व शताब्दी में शकस्थान से आकर सुराष्ट्र तथा गुजरात पर अधिकार करने वाले शक क्षत्रपों को उसने परास्त किया। शकों में नहपान नामक शासक बड़ा प्रतापी था। उसके दामाद ऋषभदत्त के लेखों तथा नहपान के हजारों सिक्कों से प्रगट होता है कि क्षत्रपों का राज्य दक्षिण पश्चिम भारत पर स्थापित हो गया था। इसी खहरात (क्षत्रप) वंश को परास्त करने वाला सातवाहन वंश का राजा गौतमीपुत्र शातकर्णी का नाम लेखों में मिलता है। जिसकी पुष्टि नासिक ज़िले से प्राप्त हज़ारों सिक्के से होती है। वे सिक्के क्षत्रप नहपान द्वारा तैयार कराए गए थे। परन्तु गौतमीपुत्र शातकर्णी के विजयी होने पर आंध्र राजा के नाम से उन सिक्कों को पुनः मुद्रित किया गया। इन सिक्कों से प्रगट होता है कि नहपान के बाद शीघ्र ही सब प्रांत सातवाहन राज्य में आ गए थे। ईसवी सन् की पहली सदी में गौतमीपुत्र ने सातवाहन राज्य के गौरव को बढ़ाया था। उसका नाम गौतमी बालश्री (उसकी माता) के गुहालेख में खहरात वंश का नाशकर्ता के रूप में पाया जाता है। गौतमीपुत्र ने गुजरात, सौराष्ट्र, मालवा (आकरावन्ती) बरार, कोकण तथा नासिक का प्रांत क्षत्रपों से जीत कर अपने अधिकार में कर लिया था और इसी कारण नहपान के सिक्कों को फिर से अंकित किया। इस तरह महाराष्ट्र से मथुरा तक शक साम्राज्य नष्ट हो गया।

सातवाहन राज्य की चरम उन्नति गौतमीपुत्र के बेटे पुलुमावि के शासन काल में हुई। इस राजा के लेख नासिक कनहेरि तथा अमरावती में पाए जाते हैं। इसने सन् १३०-से महाराष्ट्र तथा आंध्रप्रांत पर २४ वर्ष तक राज्य किया। इसके सिक्के मालवा से चोलमण्डल किनारे तक पाए जाते हैं। सिक्कों पर उज्जैन के भी चिह्न मिलते हैं तथा चोलमण्डल तट में प्रचलित दो मस्तूल वाले जहाज चिह्न-युक्त सिक्के मिले हैं। सम्भवतः इसका राज्य अधिक विस्तृत था। तट पर जहाज़ी बेड़ा वर्तमान था। ईसवी सन् की पहली शताब्दी के आरम्भ में (आंध्र राजाओं के समय में) गोदावरी तथा कृष्णा के मुहाने से जहाज सामान लाद कर सुवर्ण भूमि (हिन्द चीन) को जाया करते थे। यहीं से तलैंग (तैलंग) लोगों ने समुद्र पार कर सुमात्रा जावा में जाकर अपना उपनिवेश बनाया और भारतीय संस्कृति को पहले हिन्द चीन में फैलाया था।

इन शातकर्णी राजाओं से पूर्व सातवाहन वंश केवल दक्षिण का राज्य समझा जाता था। परन्तु मालवा और सुराष्ट्र जीतने से आंध्र भारत के सब से शक्तिशाली शासक बन गए। सच पूछा जाय तो इतिहास में इन सौ वर्षों तक के समय को सातवाहन युग कहना चाहिए। ईसवी सन् में उत्तर पश्चिम में कुषाण वंश का राज्य काशी तक फैला था। कनिष्क के पश्चात् उनके सामंत स्वतंत्र होने लगे। सातवाहन राजाओं ने आक्रमण करना स्थगित कर दिया। इसी कारण से लगभग ११० ई० में उज्जैन में दूसरे शकवंश ने अपना राज्य स्थापित किया। सातवाहन नरेश इसको सहन न कर सके और उस शकवंश के राजा चष्टन से राज्य छीन लिया। वह कौन सातवाहन विजेता था यह ठीक तरह से कहा नहीं जा सकता। जायसवाल महोदय का मत है कि उस समय कुन्तल तथा सुन्दर शातकर्णी राजा राज्य करते थे। सिक्कों से वासिठीपुत्र तथा गोतमीपुत्र विलिवायकुर के नाम मिलते हैं। विलिवायकुर (आंध्र शब्द) का संस्कृत रूप पुलोभावी है। अतएव पुलमावी नामक अन्य शासक ने चष्टन को परास्त किया था। परन्तु शक शासकों ने अपने राज्य को उनसे वापस ले लिया। रुद्रदामन के जूनागढ़ के सन् १५० ई० वाले लेख से यह प्रगट होता है कि महाक्षत्रप ने अपने वंश की राज्यलक्ष्मी को फिर से वापस लिया। सातवाहन नरेश द्वारा विजित प्रदेश को उसने फिर से जीता। जो कुछ भी हो परन्तु यह बात सत्य है कि शक चष्टन के पौत्र महाक्षत्रप रुद्रदामन ने शातकर्णी नामक किसी सातवाहन शासक को हराया था। रुद्रदामन ने उस आंध्र नरेश का नाश नहीं किया वरन् उन्हें मुक्त कर दिया। कारण यह था कि उस वंश में रुद्रदामन की पुत्री ब्याही थी। तौ भी प्रलुमावी नामक आंध्र नरेश के

मरने पर शकों के विजित प्रदेश को उनसे रुद्रदामन ने वापस ले लिया।

रुद्रदामन के गिरनार वाले संस्कृत लेख से पता लगता है कि उसका राज्य गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ, कोकण, मालवा तथा राजपूताने के कुछ भाग पर विस्तृत था। महाराष्ट्र पर सातवाहनों का शासन बना रहा। समयान्तर में इस भाग पर भी शकों का अधिकार हो गया था जिसका प्रमाण नासिक (पांडुलेना) तथा पूना (कार्ले) के लेखों से मिलता है। नहपान के बाद महाक्षत्रप रुद्रदामन इस प्रदेश पर अधिकार न कर सका। सन् १५० ई० के बाद आंध्रों की शक्ति सदा के लिए क्षीण हो गयी। पिछले सातवाहन राजाओं में यज्ञश्री शातकर्णी का नाम बहुत प्रसिद्ध था जो सम्भवतः दूसरी शताब्दी के अंत में शासन करता था। इसका नाम नासिक तथा कन्हेरी के लेखों में मिलता है। यज्ञश्री के सिक्के मध्यप्रांत के चाँदा जिले में मिले हैं। वे सिक्के क्षत्रप सिक्कों के नकल पर तैयार किए गए मालूम पडते हैं। इस आधार पर कुछ लोग सोचते हैं कि स्यात् यज्ञश्री ने रुद्रदामन के बाद क्षत्रपों पर आक्रमण किया हो और वहाँ के प्रचलित सिक्कों के ढंग पर अपनी मुद्रा तैयार करायी हो। अन्य प्रमाणों के अनुपस्थिति में कोई निश्चित मत स्थिर नहीं किया जा सकता। इस युग में दक्षिण भारत का इतिहास धुँधला सा है। अंतिम सातवाहन नरेशों में से शिवश्री तथा चन्द्रश्री शातकर्णी के सिक्के आंध्र देश में पाए गए हैं। सारांश यह है कि अंतिम समय में सातवाहन राज्य आंध्र देश में ही सीमित था। उत्तरी महाराष्ट्र आभीरों के हाथ में चला गया। उज्जैन में क्षत्रप शासक दृढ हो गए। दक्षिण मराठा देश में (सातवाहन के मूलनिवास स्थान में) इनके सगे सम्बन्धियों के एक वंश ने अपनी सत्ता कायम कर ली। मैसुर में कदम्बों ने राज्य की स्थापना की। आंध्रदेश में भी माठरीपुत्र इक्ष्वाकुवंश ने इनका स्थान ग्रहण कर लिया। इस तरह सातवाहन वंश का अंत लगभग तीसरी सदी के मध्य में हो गया।

(संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि चार शताब्दियों (ईसा पूर्व प्रथम से ई० स० तीसरी सदी) तक सातवाहन नरेश दक्षिण भारत में शासन करते रहे। पहली सदी सातवाहनों का समृद्धि का युग था और तीसरी सदी के मध्य तक इस साम्राज्य के बुढापे का समय था। प्रोफेसर भंडारकर का मत है कि इस शासनकाल को दक्षिण के सातवाहन युग के बदले भारतीय इतिहास का सातवाहन-काल कहना चाहिये। कारण यह है कि किसी अंश तक सारे भारत पर इनका प्रभाव था।)

सातवाहन युग में भारतवर्ष का वाणिज्य क्षेत्र बहुत ज्यादा बढ

गया। चीन तथा परले हिन्द (हिन्द चीन) के साथ भारत का सम्पर्क स्थापित हो गया था। चोलमंडल किनारे से भारत-

सातवाहन सिक्के वासियों ने समुद्र पार कर सुमात्रा जावा में उपनिवेश बनाया और जहाज से माल ले जाकर बेचने लगे। सातवाहन राजधानी पैठन से सर्वत्र सुगम मार्ग बनाए गए थे। इस आर्थिक समृद्धि की सूचना सातवाहनों के सिक्कों से मिलती है। जिस स्थान पर इनका अधिकार हुआ शीघ्र वहाँ की प्रचलित मुद्रा के ढंग पर सातवाहन राजाओं ने सिक्के तैयार कराए। यही कारण है कि विभिन्न प्रांत में सातवाहन सिक्के एक से नहीं मिलते। उनमें समता बहुत कम है। अलग अलग प्रांत में उस शैली के सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों के अध्ययन करने से कोई आंध्र शैली की बात नहीं कही जा सकती। सातवाहनों ने कोई अपना विशिष्ट ढंग को मुद्रानीति में समावेश न किया।

सातवाहन सिक्के तीन धातुओं से तैयार किए जाते रहे जिसमें पोटीन (चाँदी तथा ताम्बा मिश्रित) तथा सीसा की प्रधानता

धातु और तौल थी। चाँदी के सिक्के थोड़े से मिले हैं जो क्षत्रपों के सिक्कों की नकल पर तैयार किए गये थे। नासिक जिले के जोगलथेम्बी नामक स्थान से एक चाँदी के सिक्कों की ढेर मिली है जिसमें क्षहरात वंश के राजा नहपान के हजारों सिक्के मौजूद हैं। इस राजा को जीतने के बाद गौतमीपुत्र शातकर्णी ने इन चाँदी के सिक्कों को फिर से मुद्रित किया था। अतएव फिर से छाप देने के कारण ये सिक्के सातवाहनवंशी समझे जाते हैं। इस प्रकार सीसा पोटीन तथा चाँदी धातु के सिक्के सातवाहन राज्य में तैयार होते रहे। इनका आकार क्रमशः छोटा था। आकार तथा तौल में परस्पर सहयोग था। सीसा के सिक्के तौल में पाँच सौ ग्रेन के लगभग होते थे। पोटीन से तैयार सिक्के उनसे कम तौल ५० से १५० ग्रेन के लगभग तथा चाँदी के सिक्के अर्द्ध द्रम (क्षत्रप सिक्कों के बराबर) की तौल ३२ ग्रेन के लगभग पाए गए हैं। परन्तु उनकी तौल निश्चित रूप से एक सी नहीं मिलती है। सीसा का सब से भारी, पोटीन के मध्यम तथा चाँदी के हलके सिक्के मिलते हैं। इन तमाम सिक्कों की बनावट विभिन्न स्थानों के ऊपर निर्भर करती थी। उन सिक्कों के विशेष चिन्हों को देखकर यह कहा जा सकता है कि वह सिक्का अमुक स्थान में प्रचलित था। कारण यह है कि जिस स्थान का जो चिन्ह निश्चित था वही तमाम सिक्कों पर अंकित किया जाता था। जैसे मालवा के सिक्कों पर 'उज्जैनी का चिन्ह' सदा पाया

जाता है। आंध्रवंश के जितने सिक्कों पर उज्जैनी का चिन्ह मिलता है वे सब पश्चिमी मालवा में प्रचलित रहे।

आंध्र सिक्कों से उस वंश के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सातवाहन वंश के सिक्कों के आधार पर शासकों की सूची तैयार की जाती है। सातवाहन राजाओं में बहुत से ऐसे शासक थे जिनका केवल सिक्कों से ही पता लगता है। उनके कोई लेख नहीं मिले हैं परन्तु सिक्कों से आंध्र पुराणों की सूची में उनका नाम मौजूद है। उदाहरण के इतिहास का ज्ञान लिए शिवश्री शातकर्णी तथा श्रीचन्द्र शती का नाम सिक्कों से ही पता लगता है। इन का कोई लेख अब तक नहीं मिला है परन्तु मुद्रा-शैली से प्रगट होता है कि ये पुलमावी के बाद सातवाहन राज्य पर शासन करते रहे। मत्स्य पुराण में इनका नाम पाया जाता है। इसी प्रकार अंतिम आंध्र नरेश श्रीकृष्ण शिवश्री तथा चन्द्रश्री शातकर्णी का नाम केवल सिक्कों से मिला है जो तेलेगु प्रदेश पर तीसरी सदी के मध्य में राज्य करते रहे। सातवाहन वंश की सबसे विशेष बात यह थी कि इन राजाओं ने अपने प्रांत के अधिपति (वाइसराय) को भी सिक्के तैयार करने का अधिकार दे रक्खा था। आंध्र साम्राज्य के अधिकारी महारट्ठी तथा महाभोज लोगों ने अपने नाम से सिक्के प्रचलित किए थे। वनवासी (करवार जिला) प्रांत से कई आंध्रों के सामंतों (वाइसराय) द्वारा तैयार किए गए सिक्के मिले हैं जो चुटुवंश के शासक थे। आगे चलकर ये स्वतन्त्र शासक हो गये। तीसरा ऐतिहासिक विषय सातवाहन राज्य सीमा से सम्बन्ध रखता है। आंध्र साम्राज्य की सीमा विस्तार का ज्ञान सिक्कों के प्राप्त शैली से पता लगता है। आंध्र देश, मध्यदेश, मालवा तथा मैसूर प्रांत (चितलदुर्ग) की अपनी अपनी निजी शैली थी। सातवाहन सिक्कों के अधिक प्रचार तथा विभिन्न शैली के कारण राज्य विस्तार की बातें प्रमाणित होती है। गौतमी पुत्र शातकर्णी तथा पुलमावी के समय में सातवाहन सिक्कों का सब से ज्यादा प्रचार था। उनकी विभिन्न शैली भी इस बात को पुष्ट करती है कि वह समय सातवाहनों का समृद्धि काल था तथा उनकी समृद्धि चरम सीमा को पहुंच गयी थी। गौतमीपुत्र शातकर्णी तथा पुलमावी के सिक्के उनके विशाल साम्राज्य-विस्तार के द्योतक हैं।

स्थान तथा शैली

ऊपर कहा जा चुका है आंध्र सिक्के जिस प्रांत में मिले हैं उनपर उसी स्थान की शैली का उपयोग किया गया है। सातवाहन वंश की कोई निजी शैली न थी जैसा अन्य भारतीय सम्राटों ने किया था। सातवाहन के मूल स्थान महाराष्ट्र में सीसा तथा पोटीन

धातुओं के सिक्के तैयार किये जाते थे। क्षत्रपों के सिक्कों के अनुकरण पर अग्रभाग में सुमेरु पर्वत तथा बोधी वृक्ष के चिन्ह मिलते हैं तथा पृष्ठ भाग की ओर धनुष-बाण तथा नन्दिपाद के चिन्ह वर्तमान हैं और चारों तरफ लेख मिलता है। दूसरी शैली आंध्र देश (गोदावरी तथा कृष्णा के बीच का भाग) के नाम से पुकारी जा सकती है। उसमें भी दो उपविभाग हैं। एक पर सुमेरु पर्वत और उज्जैनी का चिन्ह है, दूसरे उपविभाग में हाथी तथा घोड़े की आकृतियाँ सिक्कों पर पायी जाती हैं। आंध्रदेश के सिक्के सीसा के बने हैं। तीसरी शैली मध्य प्रदेश की मानी जाती है जहाँ चाँदा जिले में सब सिक्के पोटीन के बनते रहे। इस पर हाथी की मूर्ति तथा दूसरी ओर उज्जैनी चिन्ह पाया जाता है। मालवा के सिक्के चौथे ढंग के हैं। ये मालवगण सिक्कों के प्रभाव से वंचित न रह सके। सीसा तथा पोटीन के अतिरिक्त कुछ ताँबे के भी सिक्के मिलते हैं। अग्रभाग की ओर जानवर (हाथी या सिंह) की मूर्ति तथा पृष्ठ भाग पर घेरे में बोधी वृक्ष और उज्जैनी चिन्ह बने हैं। चोलमण्डल के तटीय प्रदेश में जहाज की आकृति सातवाहन सिक्कों पर पायी जाती है। ये पाँचवें ढंग के सिक्के थे। इनके अतिरिक्त अनन्तपुर, चितलदुर्ग तथा कनाडा देश से सीसा धातु के सिक्के आंध्रों के सामंतों द्वारा मुद्रित किए गए मिले हैं। वे महारट्ठी तथा चुट्ट वंश के लोगों द्वारा तैयार किए गए थे।

सातवाहन राजाओं ने कई प्रकार के सिक्के प्रचलित किये थे। उनका वर्णन पृथक पृथक किया जायगा। शातकर्णी के पोटीन सिक्के पश्चिमी भारत में मिलते हैं जो आंध्र शैली के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(अ) अग्रभाग	पृष्ठ भाग
बोधीवृक्ष, उज्जैनी चिन्ह तथा नन्दिपाद का चिन्ह है	हाथी तथा स्वस्तिक चिन्ह, लेख पढ़ा नहीं जा सकता।

शातकर्णी के दूसरे प्रकार के पोटिन के चौकोर आकार के सिक्के मिले हैं जिन पर चिन्ह पहले से सर्वथा विपरीत है। इसमें

अग्रभाग	पृष्ठभाग
शेर की आकृति तथा ब्राह्मी अक्षरों में तथा प्राकृत भाषा में लेख — रञो शातकणिस खुदा है।	उज्जैनी चिन्हों तथा घेरे में बोधी वृक्ष बना है।

आंध्र देश के सिक्के सीसा के बनते थे। उसी शैली में वाशिष्टपुत्र पुलमावी, वाशिष्टपुत्र शातकर्णी चन्द्र शति तथा गौतमीपुत्र यज्ञश्री शातकर्णी ने सिक्के तैयार किए थे। पहले विभाग में

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
मेरुपर्वत तथा शासक का नाम राञो.. शातकर्णिस लिखता है।	उज्जैनी चिन्ह मिलता है।

आंध्र देश के दूसरे उपविभाग के सिक्कों पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
जानवर घोड़े या हाथी की आकृति तथा राजा का नाम ब्राह्मी अक्षरों में भाषा प्राकृत राञो— पुतस सिरियञस खुदा है। (लेख पूरे नहीं मिलते हैं)	उज्जैनी का चिन्ह पाया जाता है।

(ब) मध्य प्रदेश (चांदा जिले) शैली के सिक्के, पुलमावी, श्रीयस, श्रीकृष्ण तथा श्रीकृष्ण नामक राजाओं के मिलते हैं। ये पोटिन के बनते थे। सम्भवतः इन पर क्षत्रप सिक्कों का प्रभाव पड़ा था। इनका आकार (गोल) तथा तौल (अर्द्धद्रम ३२ ग्रेन) क्षत्रप सिक्कों से कुछ अधिक था। इनके

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
हाथी की मूर्ति बनी है तथा राजा का नाम पुलमाविस अथवा सिरी यञ सात (लेख अपूर्ण) का नाम लिखा है।	उज्जैनी का चिन्ह मिलता है।

आंध्र राजाओं के दो प्रकार के चाँदी के सिक्के मिलते हैं। पहला नासिक जिले के जोगलथेम्बी ढेर से मिले हैं। इस ढेर में सिक्कों की संख्या कई हजार है। आरम्भ में ये सिक्के क्षत्रप नहपान द्वारा तैयार किए गए थे परन्तु गौतमीपुत्र ने उसे जीतने के बाद फिर से छाप दिया। इनके अग्रभाग पर चैत्य तथा राजा का नाम और पृष्ठभाग की ओर उज्जैनी चिन्ह पाया जाता है। दूसरे ढंग के चाँदी के सिक्के सोपारा (पश्चिमी भाग) से प्राप्त हुए हैं जो शैली, आकार तथा तौल में क्षत्रपों के सिक्कों से मिलते हैं। इसमें केवल आंध्र चिन्ह (चैत्य तथा उज्जैनी चिन्ह) क्षत्रप सिक्कों से विभेद करते हैं। अन्यथा अग्रभाग की ओर राजा का अर्द्धशरीर का चित्र तथा राजा यज्ञश्री का नाम ब्राह्मी अक्षर में खुदे हैं। पृष्ठभाग पर उज्जैनी चिन्ह है।

(अ) पूर्वी मलवा से वहाँ की शैली के ढंग पर चार तरह के सिक्के मिलते हैं। उनमें कुछ तो पोटिन के हैं तथा कुछ ताँबे के चौकोर सिक्के हैं। उनमें चिह्नों की विभिन्न योग से नए उपविभाग बन गए हैं।

चोलमण्डल किनारे पर एक विचित्र सिक्का मिलता है

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
मस्तूल युक्त जहाज की मूर्ति तथा पुडुमावि लिखा है	उजैन्नी चिन्ह वर्तमान है।

(द) महाराष्ट्र देश के दक्षिण भाग कोल्हापुर में सीसा के बड़े गोलाकार सिक्के मिले हैं जिन पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
चैत्य तथा स्वस्तिक की आकृति	धनुष बाण तथा उसके चारों ओर लेख-शासक का नाम (१) वासिठी पुतस वडिवायकुरस (२) माटरिपुत सिवलकुरस (३) गौतमीपुतस विडिवायकुरस लिखा मिला है।

विद्वानों की राय है कि ये सिक्के आंध्र नरेशों के नहीं हैं। इन्हें उनके विभिन्न प्रदेश के शासकों (वाइसराय) ने तैयार किया था। विडिवायकुरस तथा शिवल-कुरस स्थानीय पदवियां थीं। इसी प्रकार मैसूर के चितलदुर्ग तथा उत्तरी कनारा-प्रांन्त से सीसा के ही सिक्के मिले हैं जिन पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
चैत्य या कुम्भ तथा शासक का नाम कवलाय महाट्ठीस या चुटकडानन्दस लिखा है।	घेरे में बोधी वृक्ष तथा नन्दिपाद का चिह्न वर्तमान है।

ये सभी सिक्के आंध्र राजाओं के अधीनस्थ सामन्तों द्वारा तैयार किए गए थे। इन लेख युक्त सिक्कों के अतिरिक्त प्रायः प्रत्येक शैली के सैकड़ों सिक्के मिले हैं जिनपर किसी भी व्यक्ति का नाम नहीं मिलता।

१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२

छठा अध्याय

शक—पह्लव तथा कुषाण सिक्के

ईसा पूर्व दो सौ वर्ष में चीन देश में बड़ा उथल पुथल आरम्भ हुआ। वहाँ से अनेक जातियाँ तीतर-बितर होने लगी और उसी सिलसिले में भारत में भी आयी। भारत के पश्चिमोत्तर प्रांत में यूनानी राजा शासन करते थे। ईसा पूर्व २२० के आस पास चीन के सम्राट् शी हुआंग-ती ने बाहरी लोगों के हमले रोकने के लिए चीन की प्रसिद्ध दीवार बनाई। इस कारण हूण जातियों को घर छोड़ना पड़ा और पश्चिम की ओर हटना पड़ा। इसी प्रकार ताहिया और युइशि जातियों को भी चीन के समीप प्रान्तों को छोड़ कर हटना पड़ा। युइशि जाति के कबीले तितर-बितर हो गये पर मुख्य शाखा थियानशान पर्वत को पार कर वंक्षु नदी के पार देश पर अधिकार कर लिया। तुषार जाति के लोग भी इसी के समीप दक्षिण की ओर आए। इसी युइशि जाति की शाखाएँ कुषाण के नाम से भारत में प्रसिद्ध हुई। युइशि लोगों के वल्ख के आस पास देशों को जीतने के कारण वहाँ की बसी जातियां (शक शाखा) दक्षिण की तरफ बढ़ी। वे हिन्दूकुश से होकर भारत में न आयी परन्तु कपिशा के दक्षिण हिरात होकर शकस्थान (सीस्तान) में पहुँच गयी। इसलिए काबुल में यूनानी राज्य ज्यों का त्यों बचा रहा। उन शक योद्धाओं से पार्थव राजाओं से युद्ध हुआ। पहले तो शक लोगों की विजय हुई परन्तु शाहानुसाहि मिथ्रदात द्वितीय (पार्थव राजा) के समय में शकों ने भारत में प्रवेश किया।

शकों ने भारत में शकस्थान (सीस्तान) से सिन्ध के पश्चिमी सीमान्त को लांघ कर प्रवेश किया था यही कारण है कि सिन्ध के मुहाने को शक द्वीप का नाम दिया गया। शक तथा पह्लव जाति का पृथक इतिहास नहीं है। दोनों एक की शाखाएँ हैं। यह घटना ईसा पूर्व पहली शताब्दी का है। शकों ने पश्चिमी भारत में छोटे छोटे राज्यों को दबाकर अपना राज्य स्थापित कर लिया। परन्तु उनका मूलस्थान शकस्थान बना रहा। शकद्वीप होकर ही इन्होंने यूनानी राजा को परास्त किया तथा पहली सदी में उनका अंत हो गया। शक लोगों ने धीरे धीरे सिन्ध, सौराष्ट्र, उज्जैन, विदिसा तथा मथुरा जीत लिया और काफी समय तक राज्य करते रहे। पह्लव राजा मोअ भी पश्चिमी पंजाब जीतकर तक्षशिला प्रान्त में शासन करने लगा। इस प्रकार वे एक वृत्त के घेरे में शासन विस्तृत कर लिए।

भारत में शकों का शासन तीन मुख्य स्थानों में केन्द्रीत रहा। पहला उत्तरी पश्चिमी भाग जिसका मुख्य स्थान गान्धार तथा तक्षशिला था। दूसरा केन्द्र मथुरा में था जहाँ पर शक के बाद कुषाण राज्य कायम हो गया। तीसरा प्रधान केन्द्र पश्चिमी भारत के सौराष्ट्र, मालवा तथा गुजरात में था जहाँ चौथी सदी तक क्षत्रप लोगों का राज्य बना रहा।

पश्चिमी भारत में दो विभिन्न वंशों ने शासन किया। पहला क्षहरात वंश जिसका प्रधान व्यक्ति नहपान था और दूसरा वंश चष्टन से आरम्भ हुआ।

पश्चिम भारत में शक-शासन

इनके सिक्कों पर के लेख से ज्ञात होता है कि पिता तथा पुत्र साथ शासन करते रहे। लेखों में महाक्षत्रप तथा क्षत्रपकी उपाधियाँ राज्ञो (राजा) शब्द के साथ उल्लिखित मिलती है। अतः लेखों के आधार पर चष्टन वंश का वंशवृक्ष सरलता से तैयार किया जाता है। इनका क्षहरात से क्या सम्बन्ध था यह ठीक कहा नहीं जा सकता परन्तु यह तो निश्चित है कि उत्तर पश्चिमी राज्यवंश से सम्बन्धित थे। उत्तरी शक्ति के प्रतिनिधि (वाइसराय) के रूप में पश्चिमी भारत में शासन करते थे। इसका स्पष्ट प्रमाण उनकी उपाधियों (क्षत्रप तथा महाक्षत्रप) तथा खरोष्ठी लिपि के प्रयोग से मिलता है। शक शासक स्वतंत्र होकर भी क्षत्रप या महाक्षत्रप की उपाधि क्यों धारण करते रहे इसमें संदेह मालूम पड़ता है। इस उपाधि से उनको परतंत्र नहीं माना जा सकता। क्षत्रप की समता तो गवर्नर के अवश्य की जाती थी। इसका प्रमाण कनिष्क के सारनाथ वाले मूर्ति लेख में पाया जाता है। कनिष्क का गवर्नर खरपल्लाना महाक्षत्रप कहा गया है। अतः यह प्रश्न उठता है कि महा-क्षत्रप की उपाधि शकों के लिए किस प्रकार राजा की पदवी मानी जा सकती है। लेखक के विचार से सिक्का चलाने का अधिकार स्वतंत्र राजा को ही था। इस विधान से शकों को राजा ही माना जा सकता है, गवर्नर नहीं। उनकी उपाधियाँ भ्रममूलक हैं। उपाधि तथा लिपि उत्तर पश्चिम में प्रयुक्त की जाती थी। ईसवी सन् की पहली सदी से शकों ने विदेशीपन को छोड़कर भारतीय संस्कृति की ओर झुकना आरम्भ किया। भारतीय ढंग के नाम जैसे ऋषभदत्त रुद्रसिंह तथा लिपि (ब्राह्मी) का प्रयोग करने लगे। चष्टन के बाद खरोष्ठी लिपि का प्रयोग बन्द हो गया। परन्तु यूनानी अक्षर अलंकार के रूप में सिक्कों पर बने रहे। जैसा कहा गया है प्रथम क्षहरात वंश का प्रतापी राजा नहपान ही था जिसके कई हजार सिक्के मिले हैं। उसके एक प्रकार के सिक्के पर मेरु पर्वत और आंध्र राजा का नाम तथा उनका चिन्ह (उज्जैनी चिन्ह) अंकित पाया जाता

है। इसके अध्ययन से विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सातवाहन नरेश गौतमीपुत्र शातकर्णी ने नहपान को परास्त किया था और उसके बाद खहरात सिक्कों को पुनः आहत किया तथा अपना नाम अंकित कराया। इस तरह खहरात वंश का पश्चिमी भारत में अंत हो गया।

नहपान के जामाता ऋषभदत्त के नासिक तथा कार्ले में कई एक लेख मिले हैं जिनसे तत्कालीन मुद्रानीति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ब्राह्मणों को गाय ग्राम तथा पैधों के दान का वर्णन करते हुए उस लेख में वर्णन आता है कि चार हज़ार कर्षापण (कार्षापण) की मूल्य वाली जमीन को ऋषभदत्त ने दान कर दिया ताकि सब प्रकार के साधुओं के भोजन का प्रबन्ध हो सके। दूसरे लेख में संघ को गुफा दान करते समय उषवदत्त द्वारा मुद्रा दान का भी वर्णन आता है। उसने घोषित किया था कि तीन हज़ार कर्षापण वस्त्र में व्यय किया जाय। इन द्रव्य को पटकार गण को सूद के ऊपर दे दिया गया था। इन लेखों से प्रगट होता है कि क्षत्रप लोगों के सिक्कों को कर्षापण ही कहा जाता था। यद्यपि उन पर यूनानी अक्षर के चिन्ह हैं परन्तु क्षत्रप सिक्के सर्वथा भारतीय ढंग तथा नाम वाले थे। शुद्ध भारतीय चाँदी के सिक्कों की तरह उनकी बनावट थी।

दूसरा वंश चष्टन का था। उसने सातवाहन राजाओं के उदासीन होने से मालवा में राज्यस्थापित किया और सौराष्ट्र तक विस्तृत कर लिया। यह घटना ईसा की दूसरी सदी की है। इस वंश का सब से प्रतापी राजा चष्टन का पोता रुद्रदामन था जिसने शकों की राज्यलक्ष्मी को फिर से वापस ले लिया। इसके गिरनार के प्रसिद्ध संस्कृत लेख में वर्णन मिलता है कि महाक्षत्रप रुद्रदामन ने दक्षिणापथपतेः शातकर्णी को दो बार युद्ध में हराया था। इसने सातवाहन राज्य को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। आकरावन्ती (मालवा) सौराष्ट्र तथा कच्छ तक शक साम्राज्य विस्तृत हो गया। रुद्रदामन का गिरनार वाला लेख बहुत बड़ा सांस्कृतिक महत्व रखता है। यह सब से प्रथम संस्कृत भाषा का लेख है। इससे पूर्व तीन सौ वर्षों तक भारत की राष्ट्रभाषा प्राकृत थी। सातवाहन वंश के सब लेख प्रकृत ही में मिले हैं। महाक्षत्रप रुद्रदामन के पश्चात् पश्चिमी भारत में शक लोगोंका राज्य तीन सौ वर्षों तक बना रहा। गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शकों पर विजय प्राप्त की और उनके वंश का अंत हो गया। शकों के चाँदी तथा ताँबे के सिक्के सैकड़ो वर्षों तक चलते रहे। इनपर अंत तक राजा का मस्तक तथा कुछ निरर्थक यूनानी अक्षर मिलते हैं। पृष्ठ पर मेरुपर्वत और ब्राह्मी अक्षरों में उपाधि सहित (क्षत्रप तथा महाक्षत्रप) पिता (राजा) के साथ पुत्र का नाम लिखा मिलता

है। प्रत्येक शासक के दो प्रकार के सिक्के मिले हैं। एक बार पिता के साथ क्षत्रप तथा दूसरे में महाक्षत्रप कहलाता है। सिक्कों के द्वारा ही शकों के इतिहास का ज्ञान होता है। अतएव सिक्कों के विस्तृत विवरण से पूर्व उनके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन समुचित मालूम पड़ता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि नहपान (क्षहरात वंश) के पश्चात् चष्टन (क्षत्रप) वंश का राज्य पश्चिमी भारत में आरम्भ हुआ। रुद्रदामन सर्वप्रथम महाक्षत्रप हो गया था परन्तु उसका पुत्र दामजद श्री क्षत्रप के रूप में शासन करता रहा। उसके महाक्षत्रप होने पर उसका पुत्र जीवदामन राज्य का भार संभालने लगा। सब से प्रथम क्षत्रपों के सिक्कों पर जीवदामन ने तिथि अंकित करायी थी और उसी समय से ही पश्चिमी भारत के क्षत्रप सिक्कों पर सर्वदा तिथि का उल्लेख मिलता है। जीवदामन की तिथियाँ तथा लेख से प्रगट होता है कि वह दो बार क्षत्रप तथा दो बार महाक्षत्रप के रूप में शासन करता रहा। इसका कारण यह था कि गद्दी के लिए उत्तराधिकारियों में झगड़ा पैदा हो गया। जीवदामन के जीवन काल में क्षत्रप कौन हो यही प्रश्न था। रुद्रदामन के पुत्र रुद्रसिंह तथा जीवदामन का भाई सत्यदामन में झगड़ा खड़ा हो गया। रुद्रसिंह की विजय हुई। वह महाक्षत्रप जीवदामन के समय में क्षत्रप के रूप में शासन में सहायक था। तत्पश्चात् वह जीवदामन को हटाकर स्वयं महाक्षत्रप होगया। इस कारण जीवदामन और रुद्रसिंह में झगड़े होते रहे, कुछ काल बाद जीवदामन पुनः महाक्षत्रप हो गया। यह आपस के झगड़े बढ़ते ही गये। रुद्रसिंह की बढ़ती शक्ति को कोई रोक न सका। जीवदामन को हटाकर वह स्वयं दूसरी बार महाक्षत्रप हो गया और उसका भतीजा सत्यदाम क्षत्रप बनाया गया। यह घटना दूसरी सदी के अंत की है और १७८ से १९८ ई० (१००-१२०) तक यानी बीस वर्ष तक क्षत्रप शासक आपस में लड़ते रहे। क्षत्रपों के शासन के कुछ ही वर्ष बाद फिर ऐसी ही स्थिति आ गयी और उत्तराधिकार के लिए झगड़ा एक साधारण बात बन गया। सत्यदाम के पश्चात् रुद्रसिंह प्रथम का पुत्र रुद्रसेन करीब बीस वर्षों (२०३-२२२ ई० तक) तक महाक्षत्रप बना रहा जो उसके सिक्कों के अध्ययन से तथा तिथियों के अनुसार यह प्रमाणित होता है। उसका पुत्र पृथ्वीषेण ज्यों ही २२१ ई० में क्षत्रप बना उसी समय उसका चचा संगदामन महाक्षत्रप बन बैठा। सिक्कों पर के लेख इसकी पुष्टि करते हैं —

राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसेनस पुत्रस राज्ञो क्षत्रपस पृथ्वीषेणस (तिथि १४४ = २२२ ई०)

राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसिंहस पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस संगदामन (तिथि १४४ = २२२ ई०)

यह अवस्था अधिक समय तक न चल सकी। संगदामन के भाई दामसेन ने ईर्ष्या के कारण उसी समय (१४५ = २२३ ई०) स्वयं महाक्षत्रप का स्थान ग्रहण कर लिया। संगदामन तथा उसके सिक्कों के लेख स्पष्ट प्रगट करते हैं कि राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसिंहस पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनस। दामसेन के राज्यकाल में अनगिनत सिक्के तैयार किए गए। सिक्कों की संख्या तथा तिथियाँ यह बतलाती है कि वह २२३ ई० से २३६ ई० तक महाक्षत्रप के रूप में शासक बना रहा। इसी काल में उसके दो सहयोगी क्षत्रप कार्य करते रहे। पहला जामजद श्री द्वितीय (भतीजा) तथा दूसरा उसका पुत्र वीरदामन। दामसेन का प्रथम पुत्रक्षत्रप वीरदामन महाक्षत्रप न बन सका। इसका विशेष कारण यह था कि क्षत्रपों के पड़ोसी आभीर ईश्वरदत्त दामसेन के बाद स्वयं पश्चिमी भारत का शासक बन बैठा। उसके सिक्कों पर निम्न प्रकार का लेख मिलता है—

राज्ञो महाक्षत्रपस ईश्वरदत्तस वर्षे प्रथमे अथवा द्वितीये।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वरदत्त दो वर्षों तक महाक्षत्रप बना रहा। उसने सिक्कों पर शकसम्वत् में तिथि का प्रयोग नहीं किया परन्तु शासनकाल के राज्य वर्ष का उल्लेख किया है। दो वर्षों के बाद पश्चिमी भारत का शासन फिर क्षत्रपों के हाथ में चला गया जो बातें दामसेन के द्वितीय पुत्र यशोदामन के सिक्कों से मालूम होती हैं। उसने १६१ = २३६ ई० में महाक्षत्रप की उपाधि धारण की। यशोदामन ने क्षत्रपों की शक्ति को सुसंगठित करके अपने छोटे भ्राता (दामसेन का तृतीयपुत्र) विजयसेन को क्षत्रप बनाया था। यह शासक दस वर्षों (१६२-१७२ = २४०-२५० ई०) तक महाक्षत्रप बना रहा और बहुत सिक्के तैयार कराए। सन् २५० ई० के बाद दामसेन के चौथे पुत्र जामजद् श्री तीसरा तथा उसके पौत्र (प्रथम पुत्र वीरदामन का पुत्र) रुद्रसेन द्वितीय महाक्षत्रप के नाम से शासन करते रहे। यह सम्भव है कि उनमें गद्दी के लिए झगड़ा हो गया हो और एक दूसरे के विरोधी बन कर महाक्षत्रप कहलाए। चष्टन वंश के अंतिम दो शासक भर्तृदामन तथा उसका पुत्र विश्वसेन सन् ३०४ ई० तक राज्य करते रहे। इसके पश्चात् शासन की बागडोर एक दूसरे वंश के हाथ में चली गयी जिसका आदि पुरुष स्वामी जीवदामन था। इसी कारण इस वंश के सब राजाओं के नाम के साथ स्वामी शब्द जुटा मिलता है। इस वंश में कुल पाँच राजा हुए। स्वामी रुद्रसेन तीसरे के समय क्षत्रप शासक ने सीसा (धातु) के सिक्के तैयार कराए जो

मालवा शैली के ढंग पर तैयार किये गये थे। विद्वानों की धारणा है कि क्षत्रप राज्य मालवा में ही सीमित हो गया था। उस समय से पश्चिमी भारत के शकों की अवनति होने लगी। स्वामी रुद्रसेन तृतीय के राज्य में कोई सिक्का न तैयार किया गया। सम्भवतः कोई राजनैतिक उथल पथल ही इसका कारण था और उसी विद्रोह के कारण सिक्के तैयार नहीं किए गए। स्वामी रुद्रसिंह तृतीय इस वंश का अंतिम शासक था जिसको तिथि ३१० = ३८८ ई० सिक्कों पर उल्लिखित है। उनकी अवनति के सूचक सिक्के भी हैं जो भद्दे ढंग से तैयार मिलते हैं। यों तो क्षत्रपों के पड़ोसी आभीर लोग उन पर आँख लगाए थे और शनैः शनैः विद्रोह खड़ा करते रहे परन्तु उनके नाश करने का श्रेय गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को है। उसके उदयगिरी गुहालेख से प्रगट होता है कि चन्द्रगुप्त ने सन् ४०१ ई० में शकों को परास्त कर मालवा को अपने राज्य में मिला लिया था। धीरे धीरे पूरा पश्चिमी भारत गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। गुप्तों के चाँदी के सिक्के इस बात को पुष्टि करते हैं जो शक सिक्कों के अनुकरण पर तैयार किए गए थे। क्षत्रप सिक्कों को हटाकर विक्रमादित्य ने अपने नाम से वैसे ही सिक्के पश्चिमी भारत में प्रचलित किया।

सिक्के तैयार करने की रीति तथा स्थान

क्षत्रप सिक्कों की शैली को देखकर स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि ये सिक्के किस ढंग से तैयार किए जाते थे। उनका आकार तथा ढंग को देख कर अनुमान किया जाता है कि इन्हें ढालने के लिए कोई यंत्र अवश्य होगा। सांची (भोपाल राज्य) से ऐसी मिट्टी की मुद्राएँ (seals) मिली हैं जो परीक्षा लेने पर पक्के मिट्टी के साँचे प्रगट होते हैं। उन्हीं साँचों मे चाँदी के क्षत्रप सिक्के ढाले जाते थे। अग्रभाग में क्षत्रप शासक का चिन्ह खुदा है। पृष्ठ में मेरुपर्वत (चैत्य) तथा लेख मिलता है। हैदराबाद (दक्षिण) की रियासत में कोण्डपुर भी क्षत्रप सिक्कों के तैयार करने का एक प्रधान स्थान था। इन मिट्टी के साँचे में एक समय एक ही सिक्का तैयार होता था और उसे फिर प्रयोग कर सकते थे। यद्यपि उसमें नली दिखलाई नहीं पड़ती परन्तु चाँदी को गलाकर साँचे में डाल कर सिक्का तैयार किया जाता था।

क्षत्रपों के सिक्के

प्रारम्भ में यह कहा जा चुका है कि भारतवर्ष में तीन प्रांतों-उत्तर पश्चिम (गांधार और तक्षशिला), मथुरा तथा पश्चिमी भारत (सौराष्ट्र मालवा तथा गुजरात) में क्षत्रप वंशों का शासन था। इन स्थानों पर क्षत्रप तथा महा क्षत्रप

के रूप में शासकों के सिक्के मिलते हैं। क्षत्रपवंशी सिक्के ही उनके इतिहास जानने का एक साधन है जिन पर शक सम्वत् में तिथियाँ उल्लिखित मिलती हैं। पश्चिमी भारत मे शक शासकों ने यूनानी सिक्कों के ढङ्ग पर अपनी मुद्रानीति स्थिर की। उनकी तौल, आकार तथा शैली को क्षत्रपों ने अपनाया। इनके सिक्कों पर एक ओर यूनानी अक्षरों मे लेख भी अंकित होते रहे परन्तु रुद्रदामन के बाद ग्रीक लेख समाप्त हो गए। यों तो ग्रीक सिक्कों पर यूनानी अक्षर भद्दे तौर से बहुत दिनों तक खुदे जाते रहे परन्तु उनको अलंकरण के रूप में सिक्कों पर स्थान दिया गया था। चूँकि उत्तर पश्चिम भारत से शक लोग गुजरात तथा सौराष्ट्र में आकर बस गए थे अतएव वहाँ की लिपि खरोष्ठी में कुछ समय तक लेख अंकित होते रहे। शासन में स्थानीय भाषा तथा लिपि की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी इसलिए पश्चिमी भारत में जनता की लिपि ब्राह्मी को प्रमुख स्थान दिया गया ताकि सिक्कों को लोग पढ़ सकें। चष्टन वंश के राज्य प्रारंभ होते ही यूनानी तथा खरोष्ठी लिपियाँ लुप्त होने लगीं। इनका सिक्कों पर प्रयोग बन्द हो गया और धीरे-धीरे भारतीय ढङ्ग को अपनाया गया। प्रारम्भिक अवस्था में क्षहरात सिक्कों पर वाण, वज्र, धर्मचक्र आदि चिह्न मिलते हैं परन्तु सातवाहनों से सम्पर्क में आने पर क्षत्रपों ने मेरुपर्वत को अपना वंशचिह्न मान लिया और सारे सिक्कों पर यह पाया जाता है। आंध्र के सिक्कों पर यह चिह्न अग्रभाग पर मिलता है। परन्तु क्षत्रपों ने उसे पृष्ठ की ओर स्थान दिया। अग्रभाग में राजाओं का मस्तक तथा निरर्थक यूनानी अक्षर मिलते हैं। पृष्ठ भाग पर केन्द्र में मेरुपर्वत (जिसके नीचे टेढ़ी लकीर तथा ऊपर की ओर सूर्य तथा चन्द्र की आकृतियाँ) तथा चारों ओर लेख खुदा रहता है।

भाषा तथा लिपि

यह कहा जा चुका है कि यूनानी अनुकरण तथा उत्तर पश्चिम से सम्बन्ध के कारण वहाँ की लिपियों को सिक्कों पर स्थान दिया गया था। यूनानी भाषा में लेख कुछ काल तक रहे पर लेख के समाप्त हो जाने पर भी ग्रीक अक्षर अंत तक बने रहे। खरोष्ठी तथा ब्राह्मी साथ साथ लिखी जाती थीं। भाषा प्राकृत थी। भारतीय प्रभाव के कारण खरोष्ठी का लोप हो गया और ब्राह्मी ही प्रधान लिपी मानी गयी। रुद्रदामन ने संस्कृत में लेख खुदवाया इसी कारण उसने सिक्कों पर भी प्राकृत के स्थान पर संस्कृत का प्रयोग किया। उसके पौत्र सत्यदामन ने भी संस्कृत भाषा में 'राज्ञो महाक्षत्रपस्य दामजदश्रीय पुत्रस्य क्षत्रपस्य सत्यदाम्नः' लेख खुदवाया था। इसके अतिरिक्त आभीर ईश्वरदत्त के लेख भी संस्कृत में पाए जाते हैं। शेष क्षत्रप शासकों ने ब्राह्मी लिपि मे प्राकृत भाषा को ही अपनाया।

सब के सिक्कों पर राज्ञो महाक्षत्रपस—राज्ञो क्षत्रपस रुद्रसिंहस (कोई नाम) लिखा मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि दूसरी सदी में पश्चिमी भारत में संस्कृत तथा प्राकृत दोनों का प्रचार था।

पश्चिमी भारत (सौराष्ट्र, गुजरात, मालवा आदि) में शकों के सिक्के अधिकतर चाँदी के ही बनते रहे। यद्यपि चाँदी भारत में विदेशों से मँगायी जाती थी तो भी यूनानी शासकों के अनुकरण के कारण

धातु तथा तौल

क्षत्रपों ने चाँदी को विशेष रूप से अपनाया। सब ने चाँदी के सिक्के तैयार किए जिसकी तौली अर्द्ध द्रम ३२ ग्रेन के बराबर थी। परन्तु इनको सदा कार्षापण के नाम से पुकारा जाता था। जैसा ऋषभदत्त के नासिक लेख से प्रगट होता है। उनकी तौल २७ से ३६ ग्रेन तक मिलती है। जीवदामन, रुद्रसिंह तथा रुद्रसेन ने पोटिन धातु के भी सिक्के तैयार कराए थे। रुद्रसेन के पोटीन के सिक्के मालवा शैली के मिले हैं जिनकी तौल बहुत कम १२ ग्रेन तक मिली है और आकार में बहुत छोटे हैं। सम्भवतः आंध्र सिक्कों के प्रभाव के कारण पोटीन धातु को काम में लाया गया। ई० स० की चौथी शताब्दी में स्वामी वंश के राजा स्वामी रुद्रसेन तृतीय ने सीसा का भी प्रयोग किया। उन सिक्कों का आकार चौकोर है तथा तौल में ५० ग्रेन (आंध्र सिक्कों के बराबर) के बराबर है। उनपर राजा के सिर के स्थान पर नन्दि को स्थान दिया गया है।

सिक्कों के वर्णन से पूर्व उसी आधार पर क्षत्रपों के वेशभूषा के सम्बन्ध में कुछ कहना असंगत न होगा। सिक्कों पर केवल सिर का भाग है। राजाओं के लम्बे घुंघराले बाल तथा मूछें दिखलायी पड़ती हैं। सिर

सिक्कों पर वेश भूषा

पर गोल चिपकी हुई टोपी है। कान में कुण्डल है और गले में एक पट्टी है जो परसियन (ईरानी) लम्बे कोट का स्मरण दिलाती है। उत्तर पश्चिम में शक तथा कुषाण नरेश ऐसे ही कोट पहनते थे। छहरात सिक्कों में सिर पर गोल पगड़ी सी मालूम पड़ती है।

छहरात सिक्के पर

छहरात वंश का प्रथम राजा भूमक था जिसके सिक्कों

अग्रभाग	पृष्ठभाग
बाण, वज्र की आकृति खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा में	स्तम्भ का सिरा, सिंह की आकृति धर्मचक्र ब्राह्मी लिपि में लेख

छहरतस नशपस भूमकस लिखा　　(पढ़ा नहीं जाता) मिलता है।
है।

नहपान के सिक्के इससे भिन्न हैं। ये चाँदी के बने हैं जिनकी तौल यूनानी सिक्कों के अर्द्ध द्रम के बराबर हैं।

अग्रभाग	पृष्ठभाग
राजा का अर्द्धशरीर तथा यूनानी अक्षर में लेख मिलता है जो भारतीय लेख का अनुवाद मात्र है।	बाण, वज्र का चिन्ह ब्राह्मी में लेख राजा छहरातस नहपानस उसके समान खरोष्ठी लिपि में भी लेख खुदा है रानो छहरतस नहपानस

नहपान के हजारों सिक्कों को आंध्र राजा गौतमीपुत्र शातकर्णी ने अपने नाम से आहत किया। उसके अग्रभाग की ओर चैत्य। का चिन्ह और ब्राह्मी अक्षरों में 'रानो गौतमीपुत्रस सिरि सातकनिस' छपा है। पृष्ठ भाग पर उज्जैनी चिन्ह है। ये सब चाँदी के सिक्के हैं और नासिक जिले से मिले हैं। इन सिक्कों पर राजा का सिर तथा ग्रीक अक्षर दिखलायी पड़ते हैं। उज्जैनी चिन्ह खरोष्ठी या ब्राह्मी लेख को पूरी तरह ढक न सका और जहाँ तहाँ अक्षर दिखलाई पड़ते हैं। ऐसे सिक्के जोगलथेम्बी ढेर से मिले हैं।

नहपान की मुद्राओं के समान क्षत्रपों के सिक्के भी हैं। चष्टन का वंश चष्टन नाम के साथ क्षत्रप तथा महाक्षत्रप लगा रहता है। इनमें

अग्रभाग	पृष्ठभाग
राजा का अर्द्धशरीर तथा यूनानी अक्षरों में लेख खुदा रहता है।	चैत्य, दोनों तरफ तारे तथा दूज के चन्द्र की आकृति, नीचे टेढ़ी लकीर बनी है तथा ब्राह्मी अक्षरों में लेख—राञो महाक्षत्रपस घसमोतिक पुत्रस चष्टनस—मिलता है। खरोष्ठी लिपि में भी सिक्के पर 'चष्टनस' लिखा मिलता है।

चष्टन के पौत्र रुद्रदामन के सिक्के अक्षरशः चष्टन की तरह हैं। उसमें केवल भिन्नता इतनी है कि खरोष्ठी लेख रुद्रदामन के सिक्कों पर नहीं है। ब्राह्मी लेख इस प्रकार है—राज्ञो क्षपस जयदामपुतस राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदामनस। उसके पुत्र दामजदश्री के सिक्कों पर यूनानी लेख तथा खरोष्ठी लिपि का अभाव है। (लोप हो गया)। अग्रभाग की ओर केवल राजा का सिर है और पृष्ठ की ओर केवल ब्राह्मी अक्षरों में

राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदामन पुत्रस राज्ञो दाम घसदस, लिखा रहता है।

जीवदामन के सिक्कों पर सर्वप्रथम तिथि अंकित करायी गयी जो संसार के मुद्राशास्त्र के लिए नयी बात थी। इनमें

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
अर्द्धशरीर सिर के पीछे तारीख (संख्या) खुदी रहती है (इसका सम्बन्ध शक सम्वत् से है)	पहले की तरह क्षत्रप सिक्कों पर सदा चैत्य मिलता है और ब्राह्मी अक्षर में—राज्ञो महाक्षत्रपस दामजदश्रीय पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रप जीवदामन—खुदा है।

जीवदामन की तिथियों से ज्ञात होता है कि वह दो बार महाक्षत्रप बना। दोनों सिक्कों पर एक सा लेख खुदा है। इसके सिक्के चाँदी के अतिरिक्त पोटिन के भी मिलते हैं। सन् १७८ ई० में जीवदामन महाक्षत्रप रहा। उसके कुछ समय पश्चात् १८१ ई० में रुद्रसिंह महाक्षत्रप हो गया। रुद्रसिंह के सिक्के पर १०३ तिथि मिलती है और "राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदामन पुत्रय राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसिंहस" लिखा मिलता है। इसी कारण दोनों में गद्दी के लिए झगड़े की बात कही गयी है। सम्भवतः वह पहले कुछ दिनों क्षत्रप रहा परन्तु जीवदामन को हटाकर महाक्षत्रप बन गया। जीवदामन के सिक्कों पर ११० की तिथि (१८८ ई०) तथा महाक्षत्रप शब्द का प्रयोग मिलता है जो कथित बात को प्रमाणित करता है कि जीवदामन ने फिर महाक्षत्रय के रूप में शासन किया। इस बात की अधिक पुष्टि रुद्रसिंह के सिक्कों से होती है जिन पर तिथि ११० (१८८ ई०) और 'राज्ञो क्षत्रप रुद्रसिंहस' लिखा मिलता है। यह परिस्थिति फिर बदलती दिखलायी पड़ती है। दोनों के सिक्कों पर ११८ (१९६ ई०) का उल्लेख मिलता है परन्तु

राज्ञो महाक्षत्रपस जीवदामस तथा राज्ञो क्षत्रपस रुद्रसिंहस

लेख पाए जाते हैं। ये तिथियाँ तथा लेख उत्तराधिकार के झगड़े को

निश्चित रूप से घोषित करते हैं। सिक्कों की शैली में तनिक भी अन्तर नहीं है। रुद्रसिंह ने पोटिन के भी सिक्के तैयार कराए जो बिल्कुल जीव दामन के सिक्के से मिलते जुलते हैं।

रुद्रसिंह के परचात् चष्टन के वंशज वीरदामन तक सिक्कों में कोई विशेषता नहीं दिखलाई पड़ती। उनके लेख तथा तिथियाँ पहले की तरह मिलती हैं। केवल वीरदामन के सिक्कों पर प्राकृत के बदले संस्कृत भाषा में राजा का नाम मिलता है (राज्ञो महाक्षत्रपस दामसनस पुत्रस राज्ञः क्षत्रपस वीरदाम्नः) यह अभी महाक्षत्रप नहीं हो पाया था कि आभीर ईश्वरदत्त ने राज्य छीन लिया और स्वयं महाक्षत्रप बन बैठा। इसका एक मात्र आधार उसके सिक्के हैं। उसमें

अग्रभाग	पृष्ठभाग
राजा का अर्द्ध शरीर, सिर के पीछे तिथि (१४८) तथा कुछ यूनानी अक्षर दिखलाई पड़ते हैं।	चैत्य, चाँद तथा तारे की आकृतियाँ, नीचे टेढ़ी लकीर, ब्राह्मी में लेख-राज्ञो महाक्षत्रपस ईश्वरदत्तस वर्षे प्रथमे अथवा वर्षे द्वितीये

इससे प्रगट होता है कि वह दो वर्ष तक राजा बना रहा। ई० स० २३६ के बाद ३०४ ई० तक क्षत्रपों के सिक्के प्रचलित थे। उनमें कोई उल्लेखनीय बातें नहीं है। सब सिक्के एक ही शैली के बनते रहे। उनपर अंतिम तिथि २२६ (३०४ ई०) ही मिलती है।

क्षत्रप विश्वसेन के शासन के पश्चात् एक नए वंश का राज्य आरम्भ हुआ जिन्हें स्वामी कहा जाता था। यद्यपि इस वंश के सिक्कों की बनावट (शैली), तौल, आकार, तिथि तथा ब्राह्मी लिपि के लेख में चष्टनवंशी सिक्कों से कोई भेद नहीं पाया जाता परन्तु स्वामी उपाधि के कारण यह क्षत्रपों से पृथक माने गए हैं। ये रुद्रसिंह द्वितीय के वंशज कहे जाते हैं। इस वंश के सिक्कों पर

अग्रभाग	पृष्ठभाग
राजा का अर्द्ध शरीर, सिर के पीछे तिथि।	चैत्य तथा ब्राह्मी में लेख; जैसे राज्ञो महाक्षत्रपस स्वामी रुद्रदामन पुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस स्वामी रुद्रसेनस

इससे स्पष्ट हो जाता है कि शासक के नाम के साथ स्वामी शब्द के अतिरिक्त इस वंश के सिक्कों में कोई विशेष बात नहीं मिलती। राजा स्वामी रुद्रसेन तृतीय ने चाँदी के अतिरिक्त चौकोर सीसा के भी सिक्के चलाए।

इन सिक्कों पर किसी प्रकार का लेख नहीं मिलता है। प्रायः सिक्के भद्दे ढंग से तैयार किए गए थे जिनकी तिथियाँ २७०-३०० तक (३४८ ई० से ३७८ ई० तक) मिलती हैं। इस वंश के अंतिम नरेशों के लेखों से ज्ञात होता है कि किसी कारणवश उन्होंने अपने को क्षत्रप नहीं लिखा परन्तु राज्ञो महाक्षत्रपस स्वामी नाम से प्रसिद्ध हुए। यह परिस्थिति किसी प्रकार के विद्रोह की सूचना देती है अन्यथा सभी स्वतन्त्र शासक थे। महाक्षत्रप घोषणा करने की कोई आवश्यकता न थी।

शक लोगों ने उज्जयिनी से उत्तर पूर्व की ओर अपना राज्य विस्तार किया और ईसा पूर्व पहली सदी के मध्य में मथुरा पर अधिकार कर लिया था।

मथुरा के क्षत्रप

ईसा पूर्व तीसरी सदी से लेकर शक विजय से पूर्व मथुरा पर किसी वंश का अधिकार था जिनके अनेक सिक्के मिले हैं। मित्रवंश के बाद दत्त उपाधिधारी शासकों के नाम मिलते हैं जिनके सिक्कों पर नाम के साथ राजा (राजन, राज्ञो) की पदवी अंकित है। इन सिक्कों को मथुरा के हिन्दू शासकों की मुद्रा कहने में कोई आपत्ति न होगी। हिन्दू राजाओं के बाद शक जाति के क्षत्रप या महाक्षत्रप का अधिकार हो गया जिनके सिक्कों से सब बातें स्पष्ट हो जाती हैं। उन शक क्षत्रपों के सिक्के दो श्रेणी में विभक्त किये जाते हैं। पहले समूह में क्षत्रप शिवघोष हगामश तथा हगान के सिक्के और दूसरे समूह में महाक्षत्रप रंजुबुल तथा उसके पुत्र सोडास के सिक्के रक्खे जाते हैं। हगामश तथा हगान के सिक्के पर अग्रभाग में लक्ष्मी की आकृति वृक्ष तथा नदी के स्थान पर एक विशेष चिह्न अंकित मिलता है। पृष्ठभाग पर घोड़ा तथा क्षत्रपान हगानस हगामसस लिखा मिलता है। रंजुबुल के सिक्के स्थानीय शैली के नहीं हैं अतः मालूम पड़ता है कि वह विस्तृत क्षेत्र पर शासन करता था। मथुरा के सिंह मस्तक वाले लेख में रंजुबल तथा सोडास का नाम मिलता है जो प्राप्त सिक्के से पुष्ट किया जाता है। उनके सिक्कों पर महाक्षत्रप तथा क्षत्रप की उपाधि मिलती है। एलन का मत है ईसा पूर्व पहली सदी के मध्य तक मथुरा में हिन्दू शासन समाप्त हो गया था। ई० पू० ६० ४० तक हगामश वंश तथा रंजुबुल का वंश ई० पू० ४०-१० तक राज्य करता रहा।

गुजरात तथा मथुरा वाले क्षत्रप शासक गांधार में भी थे। इसके लिए अनेक प्रमाण मिले हैं। तक्षशिला में ताम्रपत्र में एक सहरात वंशी मोश्र राजा का नाम आता है जिसके सिक्के काबुल के प्रांत में मिलते हैं। तक्षशिला तथा गांधार इनका मुख्य केन्द्र था। पहले बतलाया जा चुका है कि शकों ने गुजरात तथा महाराष्ट्र पर शासन किया। उज्जैन विजय कर मथुरा की ओर बढ़ गए थे।

गांधार के शक क्षत्रप

इस प्रकार वे मध्यदेश के स्वामी बन बैठे। महाराष्ट्र के सातवाहन लोगों से झगड़ा चलता रहा। इनकी स्थिति दक्षिण में स्थिर न रह सकी और इन्होंने उत्तर की ओर राज्य बढ़ाया। गान्धार प्रदेश में यवनों को जीता और अपनी शक्तियाँ दृढ़ कर लीं। यद्यपि कुसुलुक आदि के सिक्के तक्षशिला प्रदेश में मिले हैं परन्तु मोश्र ही उस भाग का सर्वप्रधान शक शासक माना जाता है। उस प्रांत में शक ने अन्य शक राजाओं (सौराष्ट्र तथा मथुरा के) से भिन्न पदवियाँ धारण कीं। गांधार में ईसा पूर्व पहली सदी तक यूनानी लोगों का राज्य था। अतएव उनके सिक्कों की शैली को शकों ने अपनाया। पार्थव वंशी सिक्कों पर शाहनुशाहि (राजतिराजस) की उपाधि मिलती है जिसको यूनानियों ने भी अपने सिक्कों पर रक्खा था। मोश्र को राजतिराजस महतस मोश्रस लिखा गया है। कुछ समय के बाद सौराष्ट्र, मालवा तथा मथुरा से शकों को हटना पड़ा। अतएव सिन्ध तथा गांधार में ही उनका राज्य सीमित हो गया। इस स्थान पर भी पह्लव नरेशों ने शकों को जीतकर अपना राज्य स्थापित किया और शक राज्य का अंत हो गया।

भारतवर्ष के इतिहास में शकों के साथ पह्लवों का नाम जुड़ा हुआ है। व्यापक भाव में शक तथा पह्लव में कोई अन्तर नहीं है। दोनों एक ही की शाखें हैं। परन्तु पश्चिम में पह्लव को छोड़ कर शक पहले भारतवर्ष में चले आए। जैसा कहा गया है कि मिथ्रदात द्वितीय के समय शक भारत में घुसे। ठीक उसी समय सीस्तान

पह्लव राजा

में पह्लव वंश का राज्य आरम्भ हुआ। भारत से उनका सम्बन्ध पश्चिमी अफगानिस्तान की अपेक्षा अधिक रहा। धीरे धीरे, हिरात काबुल, गांधार को जीत लिया। इस वंश के सिक्कों से ये बातें सिद्ध होती हैं। वोनान इस वंश का संस्थापक कहा जाता है। उसका भारतीय ढंग का कोई सिक्का नहीं मिला है। केवल यूनानी अक्षर सिक्कों पर खुदे हैं। उसने राजाधिराज की महान पदवी धारण की। उसने यूनानी सिक्कों की रीति को अपनाया। उसके साथ उसके भाई शासन करते थे। परन्तु वे स्वतंत्र नहीं थे। वोनान के सिक्कों पर उसके भाइयों का नाम पृष्ठ भागपर खरोष्ठी लिपि में मिलता है भ्राता स्पलहोर के नाम के साथ अमिभ्रस,

(धार्मिक) शब्द भी जुड़ा हुआ पाया जाता है जिससे प्रगट होता है कि उसके भाई बौद्ध धर्मावलम्बी थे।

योनान के बाद शासक स्पलिरिप ने इस प्रथा को बंद कर दिया और यूनानी तथा खरोष्ठी अक्षरों में अपना ही नाम अंकित कराया था। इसी प्रकार अय का नाम भी आता है। इन सिक्कों के अध्ययन के प्रगट होता है कि राजा सिक्कों पर अपने नाम के साथ उपराज (सहायक शासक) का भो नाम अंकित कराता था। इन राजाओं के सिक्के ठीक यूनानी सिक्कों के ढंग पर तैयार किये गए थे। कुछ विद्वानों का मत है कि काबुल के अंतिम यूनानी राजा हरमेयस का अंत पह्लव राजा स्पलिरिप या अयस ने किया था। कन्धार मद्र आदि को जीत कर अय ने पंजाब से शकों को भगाया। इसके सिक्कों पर त्रिशूल की आकृति खुदी मिलती हैं। यही नहीं गांधार प्रदेश के पूर्व शासक शक राजा मोग्र के सिक्कों पर भी बैल की मूर्ति खुदी है। इससे प्रगट होता है कि गांधार तथा तक्षशिला प्रांत में शैवधर्म का प्रचार था। उनके सिक्के यूनानी रीति पर तैयार होने पर भी भारतीय प्रभाव से न बच सके। यदि यूनानी अक्षरों को ध्यान से देखा जाय तो ज्ञात होता है कि वे क्षत्रप कुजुल के समय से ही अवनति की ओर जा रहे थे। उनकी कला निन्यप्रति हीन होती चली जा रही थी। यूनानी अक्षरों की खराबी से उनका प्रभाव क्षीण मालूम पड़ता है। यद्यपि पह्लव राजाओं ने यूनानी रीति को अपनाया तो भी वे भारतीय प्रभाव से अछूता न रह सके। लिपि तथा चिन्ह (त्रिशूल, बैल) भारतीय हैं। सम्भव है काबुल प्रदेश में हरमेयस के बाद यूनानी प्रजा को शांत करने के लिए यह नीति काम में लायी गयी हो जहाँ उन लोगों की अधिक बस्ती थी। राजा ने लोकप्रिय बनने के लिए ऐसा किया था। भारतीय प्रभाव के कारण सिक्कों में एक नयी कला का आरम्भ दिखाई पड़ता है जो तक्षणकला (मूर्तिकला) में गांधार शैली के नाम से विख्यात है। यह तो मानना पड़ेगा कि गांधार कला का मूल स्रोत तत्कालीन सिक्कों में दिखलाई पड़ता है। यूनानी रीति को प्रधान स्थान न देकर उसको भारतीय ढंगसे अपनाया गया। पह्लव सिक्कों का अध्ययन इन सारी बातों को बतलाता है।

पह्लव राजाओं के सिक्के

शक (पह्लव) राजाओं के जितने सिक्के मिले हैं उनमें सब से पुराना मोग्र या मोग का सिक्का मिलता है। ईसा पूर्व दूसरी सदी का एक लेख तक्षशिला से मिला है जिसमें भी मोग्र का नाम उल्लिखित है। विद्वानों में मतभेद था कि सिक्के वाला मोग और ताम्रपत्र वाला मोग्र दो व्यक्ति हैं अथवा एक। दोनों में एक सी लिपि मिलती है और उस समय किसी दूसरे मोग राजा का अस्तित्व मालूम

फलक सं० ७

नहीं है अतएव मोअ नामधारी दोनों राजा एक ही व्यक्ति ज्ञात होते हैं। चूँकि मोअने यूनानी लोगों को हटा कर शासन किया था अतएव उसके सिक्कों में यूनानी देवता तथा यूनानी लिपि की प्रधानता है। दूसरी ओर खरोष्ठी लिपि में उपाधि सहित राजा का नाम अंकित है। मोग ने दो प्रकार के चाँदी तथा चौदह ढंग के ताँबे के सिक्के तैयार कराये थे। चाँदी के. सिक्के पर अग्रभाग की ओर हाथ में राजदण्ड लिए ज्यूपिटर की तथा पृष्ठ भाग पर विजया देवी की मूर्ति है। अग्रभाग में यूनानी उपाधि बैसिलियस बैसिलियान मेआय लिखा है और खरोष्ठी में राजाधिराजस महतस मोअस अंकित है। दूसरे प्रकार के सिक्के पर अग्रभाग में सिंहासन पर बैठे देव की मूर्ति तथा पृष्ठ भाग पर विजयादेवी को हाथ में लेकर खड़ी ज्यूपिटर की आकृति बनी है। ताँबे के सब सिक्के चौकोन हैं। इनके पृष्ठ भाग पर यूनानी देवी देवताओं के स्थान पर भारतीय.जानवरों की मूर्तियाँ मिलती हैं। सबसे पहले पहल नन्दि की मूर्ति मोग के सिक्के पर मिली है। सम्भवतः तक्षशिला प्रांत में शैव मत का प्रचार था अथवा पंचमार्क के चिन्हों में से नन्दि की मूर्ति नकल कर मुद्रा तैयार की गयी हो। इस विचार का एक कारण और भी है कि मोग से लेकर (ईसा पू० २००) ईसवी सन् की कई शताब्दियों तक गंधार प्रांत से जो सिक्के मिले हैं उन पर नन्दि की प्रधानता है। अतएव उस प्रांत में शैवमत के प्रचार का अनुमान किया जाता है जिसके वाहन नन्दि को सिक्कों पर शासकों ने स्थान दिया। मोअ के ताँबे के सिक्कों पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
यूनानी देवता मर्करी के हाथ का दण्ड (caduceus) बना है और ग्रीक अक्षरों में बैसिलियस मेयस	हाथी के मस्तक का चित्र और किनारा अलंकरण से सुशोभित है।

(२) दूसरे प्रकार ताँबे के सिक्के पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
यूनानी देवता आर्तेमिस की मूर्ति, यूनानी कपड़े पहने है। ग्रीक लिपि में बड़ी पदवी—बैसिलियस बैसिलियान—के साथ राजा का नाम मोअ	नन्दि (वृषभ) की मूर्ति खरोष्ठी में राजाधिराजस महतस मोअस लिखा है।

मोअ के तमाम सिक्कों पर अग्रभाग को ओर यूनानी लिपि तथा भाषा का प्रयोग है और पृष्ठ भाग पर खरोष्ठी लिपि में राजा की उपाधि मिलती है। मोग के ताँबे

के सिक्के अधिकतर यूनानी देवी देवता के साथ तैयार किए जाते थे। विजया देवी, ज्यूपिटर अपोलो, वरुण (Poseidon), गदा लिए किसी देव की मूर्ति तथा हरक्यूलस आदि यूनानी देवता सिक्कों पर अंकित मिलते हैं। घोड़े पर चढ़े राजा की मूर्ति, वृषभ, हाथी तथा शेर ये भारतीय आकृतियाँ अग्र तथा पृष्ठ भाग में खुदी रहती हैं। इस तरह मोग के चौदह प्रकार के सिक्के देवी देवता तथा भारतीय चिह्नों को लेकर विभिन्न श्रेणी में रक्खे गए हैं। मोग के सिक्कों में तक्षशिला और पुष्करावती में प्रचलित यवन सिक्कों की नक्ल दीख पड़ती है। इससे यह सिद्ध होता है कि उसने पूर्वी और पश्चिमी गांधार में यवन राज्य का अंत कर दिया था।

मोग के पश्चात् कौन उस वंश का उत्तराधिकारी हुआ इस विषय में मतभेद है। कुछ विद्वान बतलाते हैं कि मोग शक था और उसके बाद अय तथा अयलिष नामक दो व्यक्तियों ने राज्य किया। पह्लव वंश का संस्थापक वोनान को मानते हैं। यह कन्धार का राजा था और वह प्रांत भारतवर्ष में गिना जाता था। वोनान का कोई स्वतंत्र सिक्का नहीं मिला है परन्तु उसके सहायक शासक स्पल होर तथा स्पलरिष के साथ सिक्के मिलते हैं। अग्रभाग की ओर ग्रीक अक्षर में वोनान तथा पृष्ठ की ओर प्राकृत में स्पलहोर अथवा स्पलरिष का नाम लिखा है। अय नाम का एक राजा स्पलरिष का पुत्र भी था। अतएव मोग के बाद अय तथा स्पलरिष का उत्तराधिकारी अय में विभेद माना जाता है। कुछ विद्वान दोनों को एक ही व्यक्ति मानते हैं। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार हो सकता है कि कन्धार प्रांत में शक तथा पह्लव में भेद नहीं था। दोनों एक ही जाति की शाखाएं थीं। इस प्रकार मोग को पृथक शक नहीं माना जा सकता। उस हालत में दो अय की स्थिति नहीं प्रतीत होती।

वोनान के चाँदी तथा ताँबे के सिक्के मिले हैं। चाँदी के सिक्के गोलाकार तथा ताँबे के सिक्के चौकोर हैं। चाँदी के सिक्के पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
घोड़े पर सवार ताज पहने राजा की मूर्ति, यूनानी अक्षर तथा भाषा में उपाधि—वैसिलियस वैसिलियान—सहित राजा का नाम वोनान	हाथ में वज्र लिए ज्यूपिटर की मूर्ति खरोष्ठी में—महाराज भ्रातस ध्रमिअस स्पलहोरस (महाराज के भाई धार्मिक स्पलहोर) लिखा है।

दूसरे प्रकार के चाँदी के सिक्के पर राजा तथा ग्रीक देवता की वही मूर्ति है। अग्रभाग में यूनानी उपाधि सहित राजा का नाम मिलता है परन्तु पृष्ठ भाग पर

खरोष्ठी में स्पलहोर पुत्रस ध्रमिअस स्पलगदम खुदा है। यह सिक्का स्पलहोर के सिक्के के बाद तैयार किया गया था। ताँबे के सिक्के चौकोर मिलते हैं। उनपर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
ग्रीक देवता हरक्यूलिस की मूर्ति लेख पहले की तरह मिलता है	पलास देवी की मूर्ति, लेख पहले सिक्के की तरह ।

वोनान तथा स्पलगदम के सिक्के ठीक स्पलहोर के समान हैं। केवल दूसरी ओर प्राकृत भाषा में स्पलहोर के नाम पर उसके पुत्र स्पलगदम का नाम अंकित है। ध्रमिअस (धार्मिक) पदवी से ज्ञात होता है कि ये पह्लव नरेश बौद्ध धर्म के अनुयायी हो गए थे। कुछ ताँबे के सिक्के ऐसे मिले हैं जिनके अग्रभाग में यूनानी अक्षर में पदवी सहित स्पलहोर का नाम खुदा है और पृष्ठ की ओर खरोष्ठी में स्पलहोर पुत्रस ध्रमिअस स्पलगदम लिखा है। इससे मालूम पड़ता है कि वोनान के पश्चात स्पलहोर गंधार देश का शासक हो गया और वोनान की तरह अपने पुत्र स्पलगदम की सहायता से शासन करता रहा। ऐसे सिक्के भी गोलाकार तथा चौकोर चाँदी और ताँबे के मिले हैं। सम्भवतः शोस्तान के प्रांत में वोनान का दूसरा भाई स्पलरिष ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली थी और कुछ समय तक अकेले शासन करता रहा। बाद में उसने अय नामक राजा की सहायता से राज्य किया। ये बातें उसके सिक्कों से स्पष्ट हो जाती हैं। कुछ सिक्कों पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
शूल लिए राजा की खड़ी मूर्ति तथा ग्रीक उपाधि सहित यूनानी अक्षरों में स्पलरिष का नाम मिला है।	सिंहासन पर बैठे ज्यूपिटर की मूर्ति खरोष्ठी में महर-जस महतस स्पलरिष।

इस सिक्के से यह ज्ञात होता है कि स्पलरिष समस्त पह्लव राज्य का मालिक था। कुछ समय के बाद उसने अपने उत्तराधिकारी अय का नाम भी सिक्के पर खुदवाया। ऐसे सिक्के चाँदी और ताँबे के मिले हैं। अग्रभाग में ग्रीक में स्पलरिष का नाम खुदा है तथा पृष्ठ पर खरोष्ठी में अयका नाम आता है। इनसब सिक्कों पर अग्रभाग में घोड़ेपर सवार राजा की मूर्ति है और पृष्ठ पर ज्यूपिटर की मूर्ति अय के नाम के साथ है। जब अय ने स्वतंत्र रूप से शासन प्रारम्भ किया उसने अपने ही नाम से कई प्रकार के सिक्के चलाए। उन तमाम सिक्कों पर ग्रीक देवी-देवता और राजा की मूर्ति अंकित मिलती है और यूनानी तथा खरोष्ठी दोनों लिपियों में 'महरजस रजरजस महतस अयस' लिखा मिलता है। इसके तेरह प्रकार के सिक्के मिले हैं जिससे प्रगट होता है कि वह बहुत समय तक राज्य करता रहा। इस

राजा के नाम का एक ताम्बे का सिक्का मिलता है जिसके अग्रभाग पर मोग का नाम तथा पृष्ठ पर अय का नाम खुदा है। इस अय नामक राजा का कोई लेख नहीं मिलता और न किसी साहित्यिक ग्रंथ में उल्लेख आता है। अतः मोग के साथ अय तथा स्पलरिष के बाद के अय को दो विभिन्न राजा मानते हैं। अय के तेरहों सिक्के द्रम तथा चार द्रम की तौल के बराबर हैं। चाँदी के सिक्के द्रम की तौल वाले गोलाकार हैं तथा ताम्बे के सिक्के चौकोन तथा चार द्रम के तौल से कुछ भारी ही हैं। गांधार प्रांत के सिक्कों पर यूनानी देवी देवताओं की मूर्तियाँ हैं परन्तु तक्षशिला प्रदेश वाले सिक्के भारतीय चिह्नों को लेकर तैयार किए गए हैं। उस प्रांत का प्रिय चिन्ह वृषभ (नन्दि) अय के सिक्कों पर प्रधान स्थान प्राप्त कर चुका है। सभी सिक्कों पर अग्रभाग में ग्रीक उपाधि सहित यूनानी अक्षरों में राजा का नाम तथा पृष्ठ पर खरोष्ठी में महरजस रजरजस महतस अयस, (महाराज राजराज महान् अय) लिखा मिलता है। अय का स्पलरिष से क्या सम्बन्ध था यह सिक्कों से ज्ञात नहीं होता पर उसे स्पलरिष का पुत्र मानते हैं। अय के सिक्कों की तरह अयलिष नामधारी राजा के सिक्के मिलते हैं। उस पर महरजस रजरजस महतस अयलिष लिखा है। सम्भव है कि यह पहले अय (मोग के साथ वाला) का पुत्र था। डा० कोनो आदि विद्वान अयलिष को अय का उपनाम मानते हैं। परन्तु कोई निश्चित मत स्थिर नहीं किया जा सकता।

जैसा कहा गया है कि अय के चाँदी के सिक्के तेरह प्रकार के मिले हैं परन्तु सब की बनावट एकसी है। अग्रभाग की ओर यूनानी अक्षरों में ग्रीक पदवी सहित अय का नाम खुदा है और पृष्ठ पर खरोष्ठी में महान पदवी—महरजस रजरजस महतस—के साथ राजा का नाम मिलता है। इनमें देवी देवताओं तथा राजा की विभिन्न आकृतियों से भेद पाया जाता है। पहले प्रकार के सिक्के में अग्रभाग पर घोड़े पर सवार शूल लिए राजा की मूर्ति तथा पृष्ठ पर वज्र लिए ज्यूपिटर की मूर्ति मिलती है। दूसरे सिक्कों पर वज्र चलाने के लिए तैयार ज्यूपिटर की मूर्ति या ज्यूपिटर के बदले में पलास देवी, विजया देवी, अथवा तालवृक्ष लिए किसी देवी की मूर्ति खड़ी है। किसी सिक्के पर राजा की खड़ी मूर्ति के बदले ऊपरी भाग में ज्यूपिटर की मूर्ति बनाई गयी है। इस प्रकार तेरह प्रकार के चाँदी के सिक्के पूरी तरह से ग्रीक नरेशों के चलाए सिक्कों की नक़ल पर निकाले गए। इसी राजा अय के चौबीस तरह के ताँबे के सिक्के मिलते हैं। ये सिक्के अधिकतर गोलाकार हैं और कुछ चौकोर या वर्गाकार। इन पर राजा की मूर्ति के साथ हाथी, शेर, वृषभ (नन्दि) की आकृतियाँ बनी हैं परन्तु बहुत से सिक्कों पर ग्रीक देवी

देवताओं की मूर्तियाँ बनी हैं। सब सिक्कों के अग्रभाग में यूनानी अक्षर में पदवी सहित राजा का नाम लिखा है—(वैसिलिअस वैसिलियन मीगलो अजोय) पृष्ठ पर खरोष्ठी लिपि में यह लेख—महरजस रजरजस महतस अयस (महाराज राजाधिराज महान अय का) मिलता है। उदाहरण के लिए अयस के सिक्कों पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
घूमते हुए हाथी की आकृति	नन्दि की मूर्ति
या	या
नन्दि	शेर की आकृति
अथवा	अथवा
बैठे हुए राजा की मूर्ति	यूनानी देवता
या	हरमिस या
घोड़े पर सवार राजा की मूर्ति	डिमिटर
या	या
सिंहासन पर बैठे डिमिटर की मूर्ति	हरमियस
तथा वैसिलियस वैसिलियन मीगलो अजोय लिखा (सब सिक्कों पर) मिलता है	तथा खरोष्ठी मे सब पर महरजस रजरजस महतस अयस लिखा है।

अय का एक प्रकार का सिक्का मिला है जिससे ज्ञात होता है कि वह सिक्का अयलिष के सहायक शासक हो जाने पर तैयार किया गया था। उस सिक्के पर अग्रभाग की ओर घोड़े पर सवार राजा की मूर्ति है और अय का नाम उपाधि सहित मिलता है। पृष्ठ पर खरोष्ठी अक्षरों में अयलिष का नाम लिखा है। इस प्रकार का सिक्का दुष्प्राप्य है। अय के बाद अयलिष स्वतंत्र रूप से शासन करने लगा। इस कारण उसने अपने नाम से चाँदी तथा ताँबे के सिक्के तैयार कराए। चाँदी के सिक्के दस प्रकार के हैं। ईसा पूर्व पहली सदी में ये सिक्के प्रचलित थे। प्रायः चांदी के सिक्कों पर अग्रभाग में घोड़े पर सवार राजा की मूर्ति बनी है और यूनानी भाषा तथा अक्षरों में उपाधि सहित राजा का नाम (वसिलियस वैसिलियन मीगलो अजीलिजो) खुदा है। पृष्ठ की ओर यूनानी देवी पलास, शूल लिए सैनिकों की मूर्ति, लक्ष्मी देवी, हाथ में तालवृक्ष की शाखा लिए देवी की मूर्ति अथवा नगरदेवता (?) की मूर्ति दिखलाई पड़ती है। सब सिक्कों पर महरजस रजरजस महतस अयलिषस

खरोष्ठी अक्षरों में खुदा हुआ है। अयलिष ने कई प्रकार के ताँबे के सिक्कों का प्रचार किया परन्तु सभी यूनानी सिक्कों के नकल पर तैयार किए गए थे। यूनानी देवी देवताओं की मूर्तियों को प्रधान स्थान दिया गया है। चाँदी के सिक्कों की तरह इन पर लेख खुदे मिलते हैं।

इन सिक्कों के अतिरिक्त मिश्रित धातु के चाँदी के बहुत सिक्के तक्षशिला तथा पश्चिमी पंजाब में मिले हैं। उन पर भद्दे यूनानी अक्षरों में लेख मिलते हैं। राजा का नाम अय लिखा है। लेखन शैली तथा मिश्रित धातु के कारण विद्वानों ने अनुमान किया है कि ये सिक्के मोग्र के उत्तराधिकारी अय का नहीं है परन्तु उस अय के पौत्र (अयलिष का पुत्र) अय द्वितीय के हैं। अतः इनकी तिथि ईसवी सन् की पहली सदी (आरम्भ काल) माना जाता है। इस अय द्वितीय के सिक्के अय प्रथम के सिक्कों की तरह तैयार किए गए हैं। उन चाँदी के सिक्कों पर अग्रभाग में घोड़े पर सवार राजा की मूर्ति तथा यूनानी अक्षरों में लेख—बैसिलियमे बैसिलियस मीगलो अजोय—मिलता है। पृष्ठ पर ज्यूपिटर की आकृति बनी है और खरोष्ठी में उपाधि सहित राजा का नाम—महरजस रजरजस महतस अयस—खुदा है। ताँबे के सिक्के भी प्रायः इसी प्रकार के हैं। इसके एक सिक्के पर

अग्रभाग	पृष्ठभाग
घोड़े पर सवार चाबुक लिए राजा की मूर्ति भद्दे यूनानी अक्षरों में राजा का नाम	नग देवी की मूर्ति तथा खरोष्ठी लेख महरजस महतस ध्रमिकस रजति रजस अयस लिखा है।

इन सिक्कों के अतिरिक्त अय द्वितीय ने अपने गवर्नर (प्रांत अधिपति) अस्पवर्मा के साथ सिक्के तैयार कराए। इस प्रकार के सिक्के पर

अग्रभाग	पृष्ठभाग
घोड़े पर सवार चाबुक लिए राजा की मूर्ति, अत्यन्त भद्दे यूनानी अक्षरों में उपाधि सहित राजा अय का नाम खुदा है।	यूनानी देवी पलास की मूर्ति खरोष्ठी में इन्द्रवर्म पुत्रस अस्पवर्मस स्त्रतगस जयतस लिखा है [ग्रीक भाषा में स्त्रतरस गवर्नर (क्षत्रप) के लिए आता है'। जयतस का अर्थ विजयी है] इसका अर्थ है—यह सिक्का विजयी

गवर्नर इन्द्रवर्मा के पुत्र अस्पवर्मा का है।

इस प्रकार के अनेक चाँदी के सिक्के मिले हैं। मोअ अय आदि शक राजाओं के बाद ईसा की पहली सदी में गुदफर नामक एक राजा शासन करता था। इसका राज्य सीस्तान से सिन्ध की घाटी तक विस्तृत था। गुदफर के सिक्के कई धातुओं के मेल से बने हैं। इसके सिक्कों पर जो लेख यूनानी अक्षर में मिलते हैं वे इतने अशुद्ध हैं कि उन्हें ठीक ठीक पढ़ना कठिन है। प्रसिद्ध विद्वान राखालदास बनैर्जी ने गुदफर के 'तख्ते बहाई' वाले शिलालेख के आधार पर यह निश्चित किया है कि गुदफर कनिष्क तथा हुविष्क के आस पास राज्य करता था। यह निर्णय लिपि के आधार पर किया गया है। गुदफर के चाँदी के सिक्के नहीं मिलते परन्तु ताम्बे तथा मिश्रित धातुओं के कई तरह के सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों पर अग्रभाग में घोड़े पर सवार राजा की मूर्ति है और ग्रीक लिपि में उपाधि सहित गुदफर का नाम लिखा है। पृष्ठ भाग पर खड़े हुए ज्यूपिटर की मूर्ति अथवा पलास की मूर्ति और खरोष्ठी अक्षरों में—महरज रजतिरज त्रतरस देवव्रतस गुदफरस—मिलता है। इसके बाद गुदफर के भाई तथा भतीजे ने राज्य का भार ग्रहण किया जो उनके चलाए सिक्कों से प्रगट होता है। सम्भवतः राजा के कोई पुत्र न होने से गुदफर का भ्राता अर्थाग्न के पुत्र अवदगश ने शासन किया। उसके मिश्रित धातु के सिक्कों पर

अग्रभाग	पृष्ठभाग
घोड़े पर सवार राजा की मूर्ति तथा ग्रीक अक्षरों में उपाधि सहित राजा का नाम	विजय देवी को हाथमें लिए ग्रीक देवता ज्यूपिटर की मूर्ति बनी है और खरोष्ठी में—महरजस रजतिरजस गुदफर भ्रतपुत्रस अवदगश—लिखा मिलता है।

ताँबे के सिक्के भी इसी प्रकार के हैं। गुदफर के बाद अर्थाग्न, अवदगश, सनवर तथा पकुर आदि नाम सिक्कों पर मिलते हैं। जिनसे प्रगट होता है कि ये राजा गुदफर के बाद शासन करते रहे।

पहले कहा जा चुका है कि युइशी जाति के लोगों ने चीन के समीप प्रांतों को छोड़ कर पश्चिम ओर वंक्ष (oxus) नदी के किनारे अपना घर बनाया।

कुषाण वंश

बाह्लीक पर भी उनका अधिकार हो गया था। ईसा पूर्व दूसरी सदी में हूण लोगों ने वंक्ष तथा बह्लीक पर आक्रमण किया इसलिए युइशी जाति को वहाँ से हटना पड़ा। इनकी कई शाखाएँ थीं। भारत की ओर आने वाली शाखा (कुषाण) छोटे युइशी के

नाम से पुकारी जाती है। कुजुल उनका अगुआ था जो भारत में कुशाण राज्य का संस्थापक माना जाता है। जस्टिन ने ऐसा ही लिखा है। विद्वानों की धारणा है कि काबुल से यूनानी राज्य को अंत करने वाला किउ चिउ किउ और कुशाण सिक्कों वाला कुजुल कदफिस दोनों एक ही व्यक्ति हैं। कुशाण वंश में जितने शासक हुए सब ने सिक्के चलाए। कुजुल कदफिस ने बाह्लीक से दक्षिण पश्चिम की ओर बढ़ कर काबुल पर भी अपना प्रभाव जमाया। उस प्रांत से कुछ ऐसे सिक्के मिले हैं जिन पर एक ओर यूनानी अंतिम राजा हरमेयस का नाम खुदा है और दूसरी ओर खरोष्ठी भाषा में कुजुल कफस (कडफाइसस) का नाम अंकित है। ये सिक्के ताँबे के हैं। इनके चाँदी के जो सिक्के मिले हैं उनको मिश्रित धातु से तैयार किया गया था। इस प्रकार के सिक्कों से यह मालूम पड़ता है कि काबुल प्रांत के विजय करने पर कुजुल कसस (प्रथम कुशाण नरेश) ने अंतिम यूनानी राजा के साथ मिलकर शासन किया अथवा हरमेयस के अंत हो जाने पर भी उस प्रांत में प्रचलित सिक्के के ढंग पर अपनी मुद्रानीति स्थिर की। चूँकि उस भाग में अधिकतर विदेशी (यूनानी) निवास करते थे अतएव उनको प्रसन्न करने के लिए पहले पहल कुजुल ने हरमेयस के सिक्कों की तरह (उसके नाम के साथ मुद्रा का प्रचार किया और पृष्ठ की ओर खरोष्ठी भाषा में अपना नाम अंकित कराया। इसका यह भी अर्थ निकाला जा सकता है कि उसने यूनानी सिक्कों को अपने नाम से अंकित कर चलाया और धीरे धीरे उस प्रकार के सिक्कों को हटा दिया। कुजुल कडफिस का यह कार्य राजनीतिपूर्ण था। यूनानी शासन का अंत हो जाने पर भी विदेशी प्रजा में अशांति न हो पायी। कुजुल ने पहले हरमेयस के ढंग के सिक्के तैयार किए फिर उसने अपने नाम की मुद्राएँ तैयार कराईं। कुशाण के प्रथम शासक को कडफाइसिस (कडफिस) प्रथम के नाम से भी पुकारा जाता है। क्योंकि उसी वंश के दूसरे राजा ने भी अपना नाम वही रक्खा। कडफिस पहले के सब सिक्के ताँबे के ही थे। उनकी तौल ३० ग्रेन के बराबर थी तथा बनाने की शैली भी यूनानी थी। परन्तु उसने हरमेयस तथा अपने सिक्कों पर खरोष्ठी लिपि का प्रयोग किया। कुजुल के सिक्के भारतीय प्रभाव से वंचित न रह सके। पहले तो सिक्कों पर राजा के सिर के अतिरिक्त यूनानी देवता की आकृति भी मिलती है। बाद में उस प्रांत में प्रचलित शैवधर्म का प्रभाव पड़ा। कुजुल तथा उसके उत्तराधिकारी कडफिस द्वितीय के सिक्के इस बात के ज्वलंत उदाहरण हैं। राजा के स्थान पर शिव के वाहन नन्दी की आकृति बनाई जाने लगी और पृष्ठ की ओर खरोष्ठी में राजा नाम पदवी के साथ उल्लिखित किया गया। उन पर कुषण कफसस सच धर्मठितस लिखा है। कुशाण राजा सच्चे

धर्मात्मा बतलाए गए हैं। सम्भवतः धर्मठिलस की पदवी इस प्रांत पर विजय प्राप्त करने के बाद कुषाण नरेश ने धारण की थी। कुजुल के सिक्कों के देखने से यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि काबुल के प्रांत में मुद्रा पर भारतीय प्रभाव बढ़ता जा रहा था। सिक्कों पर यूनानी अक्षर भद्दे ढङ्ग से खुदे हैं। उनमें पहले की सी कला का सर्वथा अभाव है। चाँदी के स्थान पर ताम्बे के अधिक सिक्के बनते रहे। इसका अर्थ यह निकलता है कि यूनानी मुद्रा नीति का अधः पतन हो रहा था। खरोष्ठी लिपि प्रधान स्थान ग्रहण कर रही थी। भारतीय चिन्ह धार्मिक अथवा स्थानीय सिक्कों पर स्थान पाने लगे। इस प्रकार कुषाण राज्य के आरम्भ से ही भारतीयता का समावेश तत्कालीन मुद्रा में होने लगा।

कुजुल के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी कदफिस द्वितीय गद्दी पर बैठा। भारत में सर्व प्रथम सोने के सिक्के तैयार कराने का श्रेय इसी को है। विम कदफिस ने अपने पैतृक राज्य को विस्तृत किया। काबुल प्रांत पर शासन करने के पश्चात् भारत में पंजाब तथा सिन्ध की घाटी में अपना प्रभुत्व स्थापित किया और पल्हव राजाओं को परास्त किया। यह घटना ईसवी सन् पहली सदी का है। उस समय रोम के व्यापार के कारण सोने के सिक्के भारत में बहुत संख्या में आते रहे। विमकदफिस ने उसी ढङ्ग, तौल तथा आकार के सोने की मुद्राएं तैयार करायीं। तौल में सिक्के १२४ग्रेन (रोम की तौल) के बराबर है। इससे पूर्व तथा कुषाण राज्य के बाद में शासन करने वाले जनपद तथा गण राजा अधिकतर ताम्बे के सिक्के चलाते रहे। उन्हीं सिक्कों से समाज के सब कार्य (क्रय विक्रय के) सरलता से होते रहे। सर्व साधारण जीवन के लिए सोने के सिक्कों की कोई आवश्यकता न थी जैसी आज कल अवस्था है। केवल अन्तराष्ट्रीय व्यापार की सुगमता के लिए सोने के सिक्के व्यवहार में लाए जाते थे। यही कारण है कि कुषाण नरेशों ने सोना का प्रयोग किया था और ताम्बे के सिक्के तैयार कराने की आवश्यकता न समझी। ताम्बे के सिक्के पहले से ही अधिक संख्या में सर्वत्र प्रचलित थे। कुषाण राजा ने शैव मत स्वीकार कर लिया था। (जो सिक्कों के अध्ययन से ज्ञात होता है) अतः उसने सोने के सिक्के पर त्रिशूल-धारी शिव तथा नन्दी (शिव के वाहन) की आकृतियाँ तैयार करायीं। पह्लव राजाओं के स्थान पर शासन करने के कारण कुषाण नरेश ने उनकी लम्बी पदवियों को कायम रक्खा जो सिक्कों पर खुदी मिलती हैं। इसके सिक्कों पर पदवी के साथ 'शैवमतावलम्बी होने की शब्दावली पायी जाती है। लिखा है—महरजस रजतिरजस सर्वलोग ईश्वरस्य महेश्वरस्य विमकदफिसस त्रतरस—शैव महाराजा धिराज विमकदफिस का यह सिक्का है। विम ने कोई भी चाँदी के सिक्के नहीं

तैयार कराए जो आश्चर्य की बात मालूम पड़ती है। जिस प्रांत पर दो सौ वर्षों से चाँदी के सिक्कों का प्रचार था (यूनानी तथा शक पह्लव नरेशों के सिक्के) वहाँ पर इसका अभाव आश्चर्य की बात हो जाती है। पर घटना तो ऐसी ही है। सम्भवतः विमकदफिस को सोने के सिक्कों के प्रचार के लिए अधिक सचेत रहना पड़ा, वह नये—प्रकार की मुद्रा नीति में व्यस्त था अतएव चाँदी के सिक्कों की ओर उसका ध्यान न जा सका। इसका मुख्य कारण यह था कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को सम्भालने के लिए सोने के सिक्कों की ही आवश्यकता थी ताकि क्रय विक्रय में कठिनाई न हो। इसी को ध्यान में रखकर शैली, तौल तथा आकार का भी अनुकरण किया गया था। चांदी तथा ताम्बे के सिक्के अधिक संख्या में पहले से प्रचलित थे जिनसे समाज के कामों में कठिनाइयाँ न रहीं और सब कार्य अच्छे ढंग से चलते रहे। फिर भी सोने के बाद ताँबे का प्रयोग उसने किया था। इसका एक यह भी कारण हो सकता है कि सोने चाँदी के अनुपात में अधिक अन्तर न होगा अतएव चाँदी के स्थान पर सोने को अपनाया गया। ताँबे के सिक्के भी उसने चलाया था।

विम के बाद कुषाण वंश का सब से प्रसिद्ध राजा कनिष्क ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली। इसने कुषाण राज्य को काशगर खोतान से लेकर काशी तक विस्तृत किया जो उसके सिक्कों से पता चलता है। कनिष्क ने भी सोने के सिक्के तैयार कराए जो रोम के तौल के बराबर हैं। उसके सिक्कों पर विभिन्न देवताओं की आकृतियाँ बनी मिलती हैं। राजा ने ईरानी भाषा तथा वेशभूषा को अपनाया। सिक्कों पर अग्रभाग में ईरानी वेश में राजा की मूर्ति अंकित है जो अग्निकुण्ड में हवन करते हुए दिखलाया गया है। उसी ओर ईरानी भाषा में पदवी (शाहानुशाहि) के साथ राजा का नाम लिखा है। पृष्ठ ओर, यूनानी देवता, चन्द्रमा, सूर्य, चतुर्भुजी शिव की मूर्तियाँ अलग अलग सिक्कों पर मिलती हैं यानी कनिष्क ने यूनानी हिन्दू व पारसी देवी देवताओं को सिक्कों पर स्थान दिया था। चूंकि कनिष्क बौद्ध था अतएव भगवान बुद्ध की भी मूर्ति सिक्कों पर खुदी मिलती है। इसका यह तात्पर्य है कि कनिष्क ने सभी धर्मों से सहिष्णुता का भाव रक्खा। ईरानी देवता सूर्य को भी स्थान दिया। उस प्रांत में शैव मत का प्रचार होने से शिव की आकृति खुदवायी [जैसे उसके पूर्वज विमकदफिस ने अपनाया था] और अंत में स्वयं बौद्ध होने के कारण बुद्ध को मूर्ति को सिक्कों पर तैयार कराया। इस प्रकार उसके धार्मिक भावनाओं का पता चलता है। यही राजा है जिसने शक-सम्वत् की स्थापना की और अपना नाम अमर कर गया।

उसके सिक्के काबुल से लेकर संयुक्त प्रांत के गाजीपुर जिले तक पाये जाते हैं। सोने तथा ताँबे के सिक्के ही सर्वत्र पाए गए हैं।

कनिष्क की तरह उसके उत्तराधिकारी हुविष्क के सोने तथा ताँबे के सिक्के मिलते हैं। इसके सिक्कों पर भी यूनानी, हिन्दू तथा पारसी देवी देवताओं की मूर्तियाँ मिलती हैं। सिक्कों के अग्रभाग में यूनानी अक्षर तथा प्राचीन पारसी भाषा में शाहानुशाहि हुविष्क कुषाण (राजाधिराज कुषाणवंशी हुविष्क) लिखा मिलता है। हुविष्क के बाद वासुदेव कुषाण राज्य का शासक हुआ। जिसके समय से पूर्व ही राज्य की अवनति प्रारम्भ हो गयी थी। पूर्व का मध्यदेश तथा अफगानिस्तान कुषाण लोगों के हाथ से निकल गया। जनपद तथा गण शासकों ने इसे नष्ट करने में सहायता पहुंचायी। वासुदेव ने हिन्दू देवता को अपनाया था इसलिए उसके सिक्कों पर महादेव की मूर्ति मिलती है। वासुदेव का शासन (दूसरी सदी ईसवी सन्) में समाप्त हो जाने पर कुषाण राज्य कई छोटे छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। कनिष्क तथा वासुदेव नामधारी दूसरे राजाओं ने सिक्के तैयार कराए जो द्वितीय कनिष्क तथा दूसरे वासुदेव के माने जा सकते हैं। कुषाण वंशी प्रसिद्ध राजा कनिष्क के सिक्के अच्छे ढंग के हैं तथा उनपर केवल यूनानी अक्षरों का प्रयोग किया गया है। परन्तु कनिष्क नाम वाले अन्य सिक्के बनावट में पहले सिक्कों से घटकर हैं। उनपर ब्राह्मी अक्षरों का प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार वासुदेव (प्रथम) तथा पीछे के वासुदेव नाम वाले सिक्कों की तुलना की जाय तो वही बातें ज्ञात होती हैं। ये सिक्के प्रथम वासुदेव के बाद तैयार किए गए थे जो कनिष्क द्वितीय तथा वासुदेव द्वितीय के ही हो सकते हैं। इस प्रकार वासुदेव के बाद द्वितीय वासुदेव तत्पश्चात् द्वितीय कनिष्क सिंहासन पर बैठे। अफगानिस्तान, सिस्तान तथा पंजाब में इनके सोने के सिक्के मिले हैं। इनको पीछे के कुषाण अथवा किदर कुषाण कहा जाता है। यद्यपि इनके सिक्कों की तौल १२० ग्रेन के आस पास है परन्तु भद्दे ढंग से तैयार किए गये थे। इनके सिक्कों पर यूनानी अक्षर के बदले ब्राह्मी का प्रयोग किया गया है। राजा के पैरों के बीच या दाईं वा बायीं ओर ब्राह्मी अक्षर दिखलायी पड़ते हैं। कुछ विद्वान तृतीय वासुदेव की भी स्थिति मानते हैं जिसके समय में (ईसा की तीसरी सदी) कुषाण वंश का अंत हो गया। इसके बाद अनेक प्रादेशिक राजा हुए जिन्होंने अपने नाम का सिक्का चलाया तथा सब ने पिछले कुषाणों की मुद्रा नीति को अपनाया। नाम लिखने का वही ढंग स्थिर रक्खा। अफगानिस्तान में किदर कुषाणों के सोने के सिक्के मिले हैं जो कुषाणों के ढंग के हैं परन्तु भद्दे रीति से तैयार किए गए थे। नाम लिखने का प्रकार बहुत समय तक वैसे ही

चलता रहा। यहाँ तक कि गुप्त नरेशों ने भी उसे अपनाया। उनके सोने के सिक्कों पर राजा का नाम बाएँ हाथ के नीचे लिखे जाते रहे।

सिक्के तैयार करने की रीति तथा स्थान

यह कहना कठिन है कि कुषाण साम्राज्य में किन स्थानों में टकसाल घर था। संयुक्तप्रांत के एटा जिले से सिक्के ढालने का साँचा मिला है जो पक्की मिट्टी (लालरंग) का है। उसे देखने से पता चलता है कि एक साथ मण्डल में कई सिक्के ढाले जाते होंगे। सिक्कों के वास्तविक ढलने के स्थान तक गली धातु के पहुँचने के लिए नलियाँ बनी हैं। चिन्ह से वह साँचा कुषाण कालीन मालूम पड़ता है। यानी कुषाण सिक्के मिट्टी के साचे में ढालकर बनाए जाते थे। एटा के अतिरिक्त अन्य कई स्थान-राजधानी आदि—अवश्य होंगे जहाँ ढालने का काम किया जाता होगा।

कुषाण सिक्के

जैसा प्रारम्भ में कहा जा चुका है कि भारतीय मुद्राशास्त्र में कुषाण सिक्कों को विशेष स्थान प्राप्त है। इसी वंश ने सर्व प्रथम सोने के सिक्के तैयार कराया। यह सर्व सम्मति से सिद्ध हो चुका है कि कुषाण वंश के सर्व प्रथम शासक कदफिस प्रथम था। उसी ने अंतिम यूनानी राजा के साथ ताम्बे के सिक्के चलाये। केवल इसी धातु के छः प्रकार के सिक्के कुजुल कदफिस ने तैयार कराए थे। पहले प्रकार के सिक्के पर दोनों ओर उपाधि सहित राजा का नाम मिलता है।

अग्रभाग	पृष्ठभाग
यूनानी राज हरमेयस का आधा शरीर भई यूनानी अक्षरों में कुषाणों को-जो लोक - दफि - ज़ोय (कुषाण को - जो - ले कैदफिसिस)	ग्रीक देवता हरक्यूलिस की मूर्ति, खरोष्ठी भाषा में 'कुजुल कसस कुषाण यवगस ध्रमठिदस [कुषाण के धार्मिक राजा कुजुल का सिक्का]

कदफिस प्रथम के अन्य सिक्कों पर यूनानी तथा भारतीय चिन्ह हैं। अग्रभाग में यूनानी अक्षरों में कुषाण राजा का नाम तथा पृष्ठ ओर खरोष्टी भाषा में उपाधि सहित राजा का नाम मिलता है। कुजुल को ध्रमठिदस या सच ध्रमठिदस (सच्चे धार्मिक) की पदवी से विभूषित किया गया था। अन्य सिक्कों पर

अग्रभाग	पृष्ठभाग
शिरस्त्राण पहने राजा का मस्तक	सिपाही की मूर्ति या

या
रोम के सम्राट् अगस्टस के समान चित्र
अथवा
नन्दि
आदि की मूर्तियाँ हैं तथा अशुद्ध यूनानी भाषा में राजा का नाम मिलता है।

आसन पर बैठे राजा की मूर्ति
अथवा
ऊँट की मूर्ति बनी है। खरोष्ठी अक्षरों में कदफिस के नाम से पूर्व नाना तरह की उपाधि अंकित है। किसी पर
(१) कुषाण यवुगस ध्रमठिदस
(२) महरयस रयरयस देवपुत्रस
(३) महरजस महतस कुषण नाम से पहले लिखा है अथवा दो उपाधियों को मिला दिया गया है—
महरयस रजतिरजस कुजुल कसस कुषण यवुगस ध्रमठिदस

कुजुल कदफिस के पश्चात् ईसवी सन् की पहली सदी में कदफिस द्वितीय ने उत्तरी पश्चिमी भारत तथा काबुल प्रांत में शासन किया। इसे विम कदफिस भी सिक्कों पर लिखा गया है। भारत में सोने के सिक्के चलाने का श्रेय विम कदफिस को ही है। इसके सोने के सिक्के रोमन सिक्के की तौल (१२४ ग्रेन) तथा शैली के समान हैं। इसने कई प्रकार के सिक्के तैयार कराए जो उत्तरी पश्चिमी भाग के अधिक क्षेत्र में फैले थे। सोने के सिक्कों पर शिव की मूर्ति बनी है तथा किसी पर राजा के लिए महीश्वर की पदवी खुदी मिलती है। इन प्रमाणों से विम कदफिस शैवमतावलम्बी माना जा सकता है। इन सिक्कों पर

अग्रभाग	पृष्ठभाग
राजा शिरस्त्राण और मुकुट पहने मेघ से निकलता मालूम पड़ता है। हाथों में गदा और शूल लिए है। सिर के पीछे यूनानी अक्षरों में	नन्दि के साथ शिव की मूर्ति बनी है। त्रिशूल तथा परशु हाथों में दिखलाई पड़ती है। खरोष्ठी में महान उपाधि सहित राजा का नाम

बैसिलियस विम कैदफिसस	महरजस राजाधिराजस सर्व लोग महीश्वरस्य वीम कदफिसस अतरस मिलता है। किसी में इसके बदले महरजस राजाधिराजस सर्व लोग ईश्वरस महीश्वरस वीम कदफिसस लिखा पाया जाता है।

दूसरे ताम्बे का सिक्का पहले से कुछ भिन्न है—इसके

अग्रभाग	पृष्ठभाग
राजा लम्बी टोपी तथा लम्बे कोट पहने खड़ा है। दाहिना हाथ हवन कुण्ड की ओर है। वाएं में परशु धारण किए है। यूनानी भाषा तथा अक्षरों में पुराने तरह की पदवी वैसिलियस वैसिलियन सेटर मेगाय नाम के आगे अंकित है।	नन्दि के साथ शिव की मूर्ति हाथ में शूल दिखलाई पड़ता है। खरोष्ठी भाषा में ईश्वरस महीश्वरस वीम कदफिस लिखा है।

ताम्बे के सिक्के आकार के अनुसार बड़े मझोले तथा छोटे भागों में विभक्त किए गए हैं। प्रायः सब पर एक सा लेख मिलता है।

वीम कदफिस के पश्चात् कनिष्क कुषाण वंश का शासक हुआ। यह इस वंश का सब से शक्तिशाली तथा प्रसिद्ध राजा हुआ है। यह कहा जा चुका है कि इसने कुषाण राज्य को तुर्किस्तान से लेकर काशी तक विस्तृत किया। राज्य के सुशासन के लिए गवर्नर नियुक्त किए। बौद्धों की तीसरी सभा अपनी राजधानी पेशावर में बुलायी जिससे प्रगट होता है कि कनिष्क बौद्ध मत का मानने वाला था। परन्तु उसके सिक्के राजा के सहिष्णु होने की बात बतलाते हैं। सोने के सिक्के अधिक संख्या में तैयार किए गए जिनमें

अग्रभाग	पृष्ठभाग
ईरानी ढंग का लम्बा कोट,	खड़े अग्निदेव की मूर्ति लम्बे

टोपी तथा जूता पहने राजा की मूर्ति खड़ी दिखलाई गयी है। भाला तथा अंकुश हाथों में दिखलाई पड़ता है। सामने हवन कुण्ड बना है यूनानी अक्षरों में चारों तरफ लेख खुदा है। पारसी पदवी के साथ राजा का नाम शयोनैनोशाओ कनिष्को कुशानो

कपड़े पहने है कमल नाल हाथ में, कंधे से अग्नि की ज्वाला निकल रही है। यूनानी अक्षरों में 'अतशो' लिखा है

कनिष्क के अन्य सोने के सिक्कों का अग्रभाग एक सा पाया जाता है परन्तु पृष्ठ ओर ईरानीदेवता यूनानी देवता या भारतीय देवतागण की मूर्तियाँ मिलती हैं। देवता के साथ यूनानी अक्षर में उस देवता का नाम लिखा मिलता है। यह कनिष्क के सिक्कों की विशेषता है। भारतीय लिपियों को कोई स्थान ही नहीं दिया गया। इसका कारण यह मालूम पड़ता है कि अन्तर राष्ट्रीय समाज में कनिष्क के सिक्के प्रचलित थे। उत्तर पश्चिम से योरप तक इसके सिक्कों का फैलाव अवश्य था। अतः यूनानी लिपि को रखना ही उचित समझा गया। चन्द्रमा देवता को मेओ, सूर्य को मीरो, अतशो (अग्नि) वोडो (बुद्ध) कहा गया है और सिक्कों पर यह नाम आता है। पृष्ट ओर वज्र लिए शिव की मूर्ति है और ओईशो लिखा है। अग्नि के लिए फरो का भी प्रयोग मिलता है। ताँबे के सिक्कों पर भी अग्रभाग में उपाधि सहित राजा का नाम तथा पृष्ट ओर देवता का नाम लिखा मिलता है। ग्रीक देवी की आकृति के साथ ननैआ नाम मिलता है। ताँबे के अन्य सिक्कों पर ईरानी भाषा में यूनानी अक्षरों में अग्रभाग पर 'शाओ कनिश्की' लिखा मिलता है। पृष्ठ ओर साधारण तरीके का देवताओं का नाम खुदा है।

कनिष्क के उत्तराधिकारी हुविष्क ने भी अनेक तरह के सोने का सिक्का तैयार कराया। अग्रभाग की ओर राजा के आधे शरीर का चित्र है और ईरानी पदवी (ग्रीक अक्षरों में) नाम के साथ मिलती है। सब पर शाओननो शाओ हुविष्की कुशानो (कुषाण राजाधिराज हुविष्क) लिखा है।

उन सिक्कों पर राजा का सिर बड़ा दिखलाया गया है। कानों में कुण्डल पहने हैं और शरीर में आभूषण दिखलाई पड़ते हैं। कंधों से अग्नि की ज्वाला

निकल रही है। राजा हाथों में गदा तथा न्याय दण्ड लिए है। हुविष्क का चेहरा बादल से निकलता मालूम पड़ता है। पृष्ठ ओर कनिष्क के सिक्कों की तरह विभिन्न देवताओं—यूनानी, हिन्दू, पारसी की मूर्तियाँ मिलती हैं। उन देवी देवताओं का नाम यूनानी अक्षरों में लिखा मिलता है। हुविष्क के कई प्रकार के ताँबे के सिक्के मिले हैं जो सोने से भिन्न हैं। इस पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
हाथी पर सवार हाथ में शूल तथा अंकुश लिये, सिर पर मुकुट पहने राजा की मूर्ति है	विभिन्न देवी देवताओं की मूर्ति तथा उनका नाम अंकित है।

दूसरे ढङ्ग के ताँबे के सिक्के मिले हैं जिनपर अग्रभाग में पैर नीचे आसन पर बैठे राजा की मूर्ति है। पृष्ठ ओर वही देवी तथा देवताओं की मूर्तियाँ बनी हैं। हुविष्क के सोने तथा ताँबे के सिक्कों का खूब प्रचार था।

हुविष्क के पश्चात् कुषाण वंश का शासन वासुदेव के हाथों में आया। उसके समय से इस वंश की अवनति प्रारम्भ हो गयी। अफ़गानिस्तान का प्रांत इसके हाथों से निकल गया। मथुरा के सिवाय अन्य किसी भी लेख में वासुदेव का नाम नहीं मिलता। इसका राज्य ईसवी सन् की दूसरी सदी तक उत्तरी भारत में कायम था। इसके सोने तथा ताँबे के भी सिक्के मिले हैं। सोने के सिक्कों पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
राजा अग्निवेदी के सामने खड़ा है शिरस्त्राण तथा वर्म पहने है, तलवार बायीं ओर यूनानी अक्षरों में शाओनन्नो शाओ बजोदो कुशानो (कुषाण राजाधिराज वासुदेव)	नन्दि के साथ खड़े शिव की मूर्ति, माला तथा त्रिशूल हाथोंमें ग्रीक अक्षरों में ओइशो (शिव) लिखा है। कहीं शिव के स्थान पर नाना की मूर्ति मिलती है।

राजा के ताँबे के सिक्के भी इसी तरह के हैं। सिक्कों की संख्या कम होने से यह अनुमान किया जाता है कि कुषाण वंश की अवनति हो रही थी। वासुदेव के मृत्यु के बाद कुषाण राज्य छोटे छोटे राज्य में विभक्त हो गया। उनमें गवर्नर शासन करते रहे। कनिष्क तथा वासुदेव के ढङ्ग के जो सिक्के मिले हैं उन पर कनिष्क तथा वासुदेव के नाम अंकित हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि ये सिक्के कनिष्क द्वितीय, वासुदेव द्वितीय तथा तृतीय के होंगे जिन्होंने अफ़गानिस्तान

फलक सं० ८
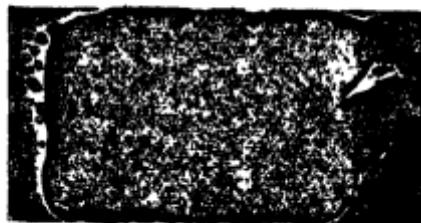
सीस्तान अथवा भारत के उत्तर पश्चिम भाग में नाम मात्र का शासन किया था। उनकी प्रमाणिकता लेखों तथा सिक्कों से सिद्ध होती है। कनिष्क के दो प्रकार के सिक्के मिलते हैं। पहला सिक्का बढ़िया बना है और उस पर केवल यूनानी भाषा का प्रयोग दिखलाई पड़ता है। कनिष्क नाम वाला दूसरे सिक्के पर यूनानी तथा ब्राह्मी भाषा में लेख मिलते हैं। यदि दोनों प्रकार के सिक्कों की तुलना की जाय तो दूसरा सिक्का कनिष्क (वीम कदफिस के उत्तराधिकारी) का नहीं हो सकता। वासुदेव के शासन के बाद ही बना होगा। इसलिए ब्राह्मी लेख वाले सिक्के कनिष्क द्वितीय के माने गए हैं। मुद्रा शास्त्रवेत्ता सिक्कों के प्रमाण पर कनिष्क द्वितीय तथा वासुदेव द्वितीय का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। लेखों के आधार पर कनिष्क द्वितीय वासुदेव के बाद ही शासन का अधिकारी हुआ। सीस्तान, पंजाब तथा अफ़ग़ानिस्तान में एक प्रकार का सिक्का मिला है जिसपर राजा के बायीं ओर ब्राह्मी अक्षरों में 'वसु' लिखा है। इसके अतिरिक्त दोनों पैरों के बीच मे कुछ ब्राह्मी अक्षर दिखलाई पड़ते हैं। ये सिक्के द्वितीय वासुदेव के माने जाते हैं जो वासुदेव प्रथम के बाद शासक हुआ। विद्वानों का अनुमान है कि द्वितीय वासुदेव ने द्वितीय कनिष्क की अधीनता स्वीकार की थी। द्वितीय कनिष्क १८० ई० के समीप गद्दी का मालिक बना। इसके अनेक सिक्के प्रचलित थे जिससे ज्ञात होता है कि कनिष्क द्वितीय का राज्य अधिक समय तक रहा। काश्मीर से सीस्तान के विस्तृत क्षेत्र में इसके सिक्के मिलते हैं। भारत वर्ष का पूर्वी भाग (मथुरा प्रांत व पूर्वी पंजाब) में यौधेय संघ के विद्रोह के कारण कुषाण राज्य से वे भाग निकल गये। द्वितीय कनिष्क राज्य का कार्य गवर्नरों की सहायता से चलाता रहा। उसके सिक्कों के ऊपरी भाग में ब्राह्मी अक्षरों में वीरु, वसु, मही शब्द मिलते हैं। ये साफ बतलाते हैं कि वासुदेव, वीरुपाल तथा महीश्वर उसके क्षत्रप थे। वासुदेव (द्वितीय) स्यात् कनिष्क द्वितीय का पुत्र था। अन्य दो उसके भाई होंगे जो गवर्नर का काम करते रहे। उसी के अन्य सिक्कों पर वि शी भृ अक्षर ब्राह्मी में राजा को दाहिनी ओर लिखे मिलते हैं। सम्भवतः वे अक्षर उन क्षत्रपों के संक्षिप्त नाम थे जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में शासन किया।

इस तरह संक्षिप्त नामों का सिक्कों पर स्थान पाना कुषाण काल के पीछे की एक महत्व पूर्ण घटना है। पहले के कुषाण नरेशों ने गवर्नरों को ऐसी स्वतंत्रता न दी थी ताकि वे अपना नाम राजकीय सिक्कों पर लिखवायें। सिक्कों के अध्ययन से यह प्रगट होता है कि कनिष्क द्वितीय के बाद पंजाब आदि प्रांतों में गवर्नरों (क्षत्रपों) ने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली थी। केन्द्रीय शासक ने नयी प्रथा

से सिक्कों पर नाम लिख कर उन्हें खुश करने की बात सोच निकाली। उसके बाद वे पूर्ण स्वतन्त्र हो गए। कनिष्क द्वितीय ने दो प्रकार के सिक्के चलाए। प्रथम तो वासुदेव के सिक्कों की तरह शिव नन्दि वाले सिक्के हैं दूसरे सिक्के पर रोम की देवि अरदोखो को स्थान मिला है। उस समय कुषाण राजाओं का भारतीय ढंग पर नाम करण आरंभ हो गया था।

ईसवी सन् २१० के बाद वासुदेव नामधारी कुषाण राजा के शासन में गंगा का द्वावा हाथ से निकल गया। राजकुमारों ने (जो गवर्नर थे) स्वतन्त्र राजा की पदवी-शाहानुशाह धारण करली। वल्ख, समरकंद से पश्चिमी पञ्जाब तथा अफगानिस्तान में कुषाण राज्य का अन्त शसैनियन जाति वालों ने कर दिया। सिक्कों से यह बातें प्रमाणित होती हैं। शसैनियन राजाओं ने अग्रभाग की ओर राजा का सिर तथा पृष्ठ ओर नन्दि और शिव वाला सिक्का तैयार कराया। सिक्कों पर उन्होंने बड़ी पदवी 'शाहानुशाह' को स्थान दिया ताकि शसैनियन लोगों का महत्व सब पर विदित हो जाय। शसैनियन सिक्कों पर ब्राह्मी के स्थान पर पह्लवी भाषा का प्रयोग होने लगा। अग्रभाग में राजा का सिर सामने देखते हुए चित्रित है और पृष्ठ ओर हवन कुण्ड से ज्वाला निकल रही है। दो परिचायक दोनों तरफ खड़े हैं। पांचवी सदी में हूण लोगों ने इनके सिक्कों के अनुकरण पर अपनी मुद्रा तैयार करायी। उस समय से कई प्रकार के मिश्रित धातुओं का विचित्र ढंग के सिक्के राजपूताना प्रांत में दसवी सदी तक प्रचलित रहे जिसे 'गधिया' सिक्के कहते हैं। अगले अध्याय में इनका विस्तार पूर्वक वर्णन किया जायगा। पूर्वी पंजाब में कुषाणो के उत्तराधिकारी के बारे में कोई निश्चित बात मालूम नहीं है। वासुदेव के ढंग वाले भद्दे सिक्के उस प्रांत में मिले हैं जिन पर शीलदस आदि का नाम मिलता है। सम्भवतः यही छोटे राजा पंजाब मे गुप्त सम्राट समुद्र के दिग्विजय तक शासन करते रहें।

ईसा की चौथी सदी में पेशावर के पास एक जाति ने विद्रोह खड़ा किया जिसे छोटे कुषाण या किदार कुषाण के नाम से पुकारते थे। पहला किदार शासक शसैनियन के अधीन होकर पेशावर पर राज्य करता था। किदार ने काश्मीर तथा मध्य पंजाब को जीत लिया। इस कारण से शसैनियन तथा किदार में युद्ध होता रहा। अन्त में विजयी हुए। स्वतंत्र रूप से किदार ने सिक्के चलाए जो शसैनियन ढङ्ग का है। उसमें राजा का आधा शरीर बना है और वह सामने देख रहा है। ब्राह्मी अक्षरों में राजा का नाम खुदा है। इससे यह प्रगट होता है कि शक लोगों का भारतीय करण हो रहा था। नाम के अतिरिक्त शक लोगों

किदार कुषाण

ने भारतीय संस्कृति को भी अपना लिया । ये सिक्के चांदी तथा जस्ता धातु के बनते रहे । इन सिक्कों पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
राजा का आधा शरीर बना है, पगड़ी (ताज के ढङ्ग) की गांठ बंधी है चांद की मूर्ति, बाल सिर पर झाड़ी की तरह बिखरे हैं, दाढ़ी नहीं दिखलायी पड़ती, राजा कुण्डल तथा हार पहने हुए है; ब्राह्मी अक्षरों में किदार कुषाण लिखा है ।	तीन कोने वाला अग्निकुण्ड, लपट निकल रही है, दोनों तरफ दो नौकर खड़े ज्वाला को देख रहे हैं।

किदार के पुत्र पिरो ने तत्कालीन गुप्त नरेश से युद्ध ठान लिया । अन्त में चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इसको हराया था। पूर्वी भाग में परास्त होने पर पिरो को पश्चिमी भाग में भी शसैनियन राजा शापुर तृतीय ने पुनः हराया । पिरो ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली । उस समय से (पांचवी सदी) किदार कुषाण के सिक्के बन्द हो गए परन्तु छोटे राजा उनका अनुकरण कर सिक्के तैयार करते रहे । गुप्त शासन काल में मुद्रा नीति केन्द्री भूत हो गई । गुप्त नरेशों के अतिरिक्त सिक्का तैयार करने का अधिकार किसी को न था अतएव उन्होंने गुप्त आज्ञा को शिरोधार्य किया और सिक्कों का बनाना बन्द कर दिया ।

सातवां अध्याय

गुप्त कालीन सिक्के

ईसवी सन् की तीसरी सदी में उत्तरी भारत में एक नवीन साम्राज्य का उदय हुआ जो इतिहास में अपने वैभव के कारण 'स्वर्ण-युग' के नाम से विख्यात है। इस काल के सभी कार्यों में नवीनता तथा भारतीयता दिखलाई पड़ती है। गुप्त सम्राटों ने तीन सौ वर्षों तक आदर्श रूप से पाटलिपुत्र में शासन किया और प्रत्येक दिशा में देश उन्नति की ओर अग्रसर होता गया। विक्रमादित्य के शासन काल में भारतीय संस्कृति चरम सीमा को पहुँच गयी थी। साहित्य तथा ललित कला के पूर्ण विकास के अतिरिक्त देश धनधान्य से भी पूर्ण था। इनसब की झाँकी सिक्कों के अध्ययन से पायी जाती है। शनैः शनैः सभी बातें भारतीय शैली में ढाली गयी। सिक्कों के सूक्ष्म विवेचन से उस उच्च सभ्यता का ज्ञान हो जाता है। इस चर्चा के आरम्भ से पूर्व गुप्तकालीन राजनैतिक तथा आर्थिक अवस्था की जानकारी अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि सिक्के का इतिहास उन बातों से गहरा सम्बन्ध रखता है। अतएव पूर्व पीठिका को जान लेना युक्ति संगत है।

तीसरी सदी में भारत में शुंगों के बाद फिर ब्राह्मण धर्म का उत्थान आरम्भ हो गया। कुषाण राजाओं को पंजाब प्रांत में गण राजाओं ने ध्वंस कर डाला। इस प्रकार पिछले कुषाणों के स्थान पर गण शासक तथा छोटे छोटे राजाओं ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। पाटलिपुत्र में 'श्रीगुप्त' नामक व्यक्ति ने एक राज्य स्थापित किया जो आगे चलकर विशाल साम्राज्य का रूप धारण कर लिया तथा उसी संस्थापक के नाम पर यह वंश गुप्तवंश के नाम से विख्यात हुआ। इसके पौत्र चन्द्रगुप्त प्रथम ने पाटलिपुत्र के समीपवर्ती लिच्छवी प्रजातंत्र शासक की राजकुमारी से विवाह कर अपने प्रभाव तथा राज्य को विस्तृत किया जिसका वर्णन विष्णु पुराण में मिलता है। गुप्त रानी-कुमार देवी से उत्पन्न समुद्रगुप्त ने सारे भारतवर्ष में दिग्विजय कर सभी राजाओं को परास्त किया। जिसके शक्ति का वर्णन प्रयाग की स्तम्भ प्रशस्ती में पाया जाता है। इससे पता चलता है कि समुद्र ने धर्म विजयी की नीति को अपनाया था। राज्य तथा गण तंत्र को समाप्त कर उनको अपने राज्य में सम्मिलित न किया वरन् उसी वंश के शासक को विजित प्रदेश लौटा दिया था। भारत के समीप द्वीप के शासकों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस विजय यात्रा के अंत में

समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किया जिसकी प्रमाणिकता सिक्कों से सिद्ध की जाती है। समुद्र केवल योद्धा ही न था परन्तु स्वयं कवि तथा गुणग्राही था। प्रयाग की प्रशस्ति में इसे कविराज की पदवी से विभूषित किया गया है तथा संगीत में नारद को भी लज्जित करने वाला बतलाया गया है। लेख के आधार पर यह कथन अत्युक्तिमय समझा जाता परन्तु समुद्र गुप्त के वीणा वाले सिक्के से यह पुष्ट किया जाता है कि गुप्त सम्राट संगीत का अच्छा जानकार था। ऐसे पिता के उत्तराधिकारी होने का गर्व चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य को था। साहित्य तथा सिक्कों की सहायता से उस महान सम्राट समुद्र गुप्त के बाद राज्य का भार ढोने वाला काच गुप्त नामक शक्तिहीन शासक माना जाता है। अस्तु। थोड़े समय के बाद ही विक्रमादित्य ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली। इसके समय में साम्राज्य की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई। पश्चिमी भारत में विदेशी शक राजाओं को परास्त कर राज्य की वृद्धि की तथा इन्हो ने गुप्त कालीन मुद्रा में सर्वप्रथम चांदी के सिक्के तैयार कराये थे। साम्राज्य की समृद्धि दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही गयी जिसका वर्णन चीनी यात्री फाहियान ने किया है। विक्रमादित्य के पुत्र कुमारगुप्त का शासन उसी आदर्श मार्ग पर चलता रहा। इस गुप्त सम्राट ने अनेक प्रकार के सोने के सिक्के तैयार कराया था जो देश के समृद्धि तथा वैभव के द्योतक हैं। अश्वमेध यज्ञ कर कुमार गुप्त ने अपनी कीर्ति को खूब बढ़ाया। धार्मिक जगत में इसने पूर्व पुरुषों की परिपाटी को निबाहा। ऐसे ही मार्ग का अनुगामी उसका पुत्र स्कन्द गुप्त भी था। सभी गुप्त सम्राटों का यश उनके लेखों के वर्णन से ज्ञात हो जाता है तथा शासक के जीवन का इतिहास उनकी प्रशस्तियों में मिलता है। स्कन्दगुप्त इस वंश का अंतिम सम्राट था जिसने अपनी शक्ति बल से विदेशियों को साम्राज्य में घुसने न दिया। भितरी के लेख से पता चलता है कि तभी लाइन क्षितिप चरण पीठे स्थापि तो वामपादः।

स्कन्द ने अपने भुजबल से पुष्यमित्र तथा हूणों को परास्त किया था। इसी के बाद गुप्तवंश के उत्कर्षकाल का अंत समझना चाहिये। स्कन्दगुप्त के मरते ही सौराष्ट्र गुप्त साम्राज्य से पृथक हो गया। पिछले गुप्त नरेशों ने किसी प्रकार अपनी स्थित बनाए रक्खी परन्तु वह विस्तृत साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। पिछले कई शताब्दियों में प्रसिद्ध पाटलिपुत्र की प्रधानता जाती रही। इतना होने पर भी गुप्त राजा अपने वंश की उच्च प्रतिष्ठा का ध्यान कर सम्राट की महान पदवी- परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर को धारण करते रहे जो इसके लिए योग्य न थे। सिक्कों के अध्ययन से भी यह बातें पुष्ट की जाती हैं। यह तो मानना ही पड़ेगा कि स्कन्द गुप्त गुप्त उत्कर्षकाल का अंतिम सम्राट

था। इसने सुवर्ण तौल को सिक्कों के लिए प्रयोग किया। यद्यपि उसके उत्तराधिकारी पुर गुप्त के वंशज थे परन्तु वे गुप्त सम्राटों की शक्ति को कायम न रख सके। हूणों तथा अन्य प्रांतों के शासकों का विद्रोह खड़ा हो गया था। अतएव शांतिमय वातावरण न होने के कारण तथा राज्य की अवनति होने से वैसे सुन्दर सिक्के तैयार न कर सके। भद्दे सिक्के ही पुरगुप्त के वंश की अवनति को बतलाते हैं। बुधगुप्त के बाद चाँदी के सिक्के बंद हो गये जिससे पता लगता है कि गुप्त साम्राज्य से मध्यप्रांत तथा सौराष्ट्र के भाग भी पृथक हो गये थे। इस अवनति काल में शासन करने वाले पुर बुध तथा वैन्यगुप्त आदि के मिश्रित सोने के सिक्के मिलते भी हैं परन्तु मुख्य वंश के बाद मागध गुप्तनरेश नाममात्र के शासक थे [विशेष जानकारी के लिए देखिए लेखक का गुप्त साम्राज्य का इतिहास]

गुप्त वंश के इस क्रमिश उत्थान तथा पतन का इतिहास सिक्के भी बतलाते हैं। देश की आर्थिक स्थिति पर ही मुद्रा नीति स्थिर की जाती है अतएव सिक्कों के वर्णन से पूर्व गुप्तकालीन आर्थिक दशा का परिज्ञान प्रस्तुत विषय की जानकारी में सहायक होगा। गुप्त काल में आध्यात्मिक उन्नति के साथ धन धान्य की प्रचुर वृद्धि हुई। कृषि के अतिरिक्त जनता का प्रधान व्यवसाय व्यापार था। गुप्त काल में व्यापार स्थल तथा जल दोनों मार्गों से होता था। तत्कालीन व्यापार विश्वव्यापी हो गया था। पूर्व तथा पश्चिम के समस्त देशों में भारतीय वस्तुओं का व्यवहार होता था। उन देशों के निवासी आवश्यकीय वस्तुओं के लिए भारत का मुँह देखते थे। अरब, ईरान मिश्र तथा रोम से भारत का व्यापार अधिक बढ़ा हुआ था। व्यापार के लिए बड़े बड़े जहाज बनाए गये थे जो पूर्व में चीन तक तथा पश्चिम में योरप तथा आफ्रीका तक सामान ले जाते थे। रोम से सोने के सिक्के इतनी अधिक मात्रा में आने लगे कि वहाँ का निवासी प्लीनि ने अपने देश वासियों द्वारा सुख तथा वैभव की सामग्री के लिए करोड़ों रुपयों के अपव्यय की निन्दा की थी। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सुविधा के लिए गुप्त सम्राटों ने अपने सिक्के को रोमन तौल के बराबर तैयार कराया था तथा रोमन सिक्के दिनेरियस के समान गुप्त सिक्को को दीनार नाम से प्रसिद्ध किया। पश्चिमी देशों के अतिरिक्त पूर्वी द्वीपों से भारतीय व्यापार कम महत्वपूर्ण न था। जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया में व्यापार के सिलसिले में भारतीय उपनिवेश बनाए गये थे। इस ओर एक नियमित जलमार्ग स्थापित हो गया था। कालिदास के ग्रन्थों से इस बात की पुष्टि की जाती है। भारत में स्थलमार्ग से व्यापार की सुविधा के लिए बड़ी लम्बी सड़कें बनाई गयी थीं। गुप्तकाल में भरौच बंदरगाह से पाटलिपुत्र

तक बहुत बड़ा व्यापार चलता रहा। पाटलिपुत्र से प्रयाग होते स्थलमार्ग भरौंच तक गया था जिसके बीच में उज्जयिनी का केन्द्र था। स्वदेश के अतिरिक्त विदेश तक स्थलमार्ग से व्यापार होता रहा। इसी तरह बैबिलोनिया, अरब, ईरान आदि से भारत का सम्बन्ध था। गुप्तकाल में चाँदी से अधिक सोने तथा ताँबे का व्यवहार किया जाता था। सोने तथा मणि के आभूषण तथा ताँबे की मूर्तियाँ और बरतन भी बनाए जाते थे। इसका प्रमाण गुप्तकालीन सिक्कों से पाया जाता है। सोना तथा चाँदी के मूल्य में १ : ८ का अनुपात था। गुप्त-कालीन व्यापार की उन्नति का एक विशेष कारण था कि उस समय व्यापार पूँजीपतियों के हाथ में न था। छोटे छोटे प्रजातंत्र ढंग की श्रेणियाँ (संघ) के हाथ में सारा व्यापार सीमित था। विभिन्न प्रकार की व्यापारिक समितियाँ अपने ध्येय की पूर्ति में लगी रहीं। उनके नियम ऐसे थे जिनका पालन शासक को भी करना पड़ता था। ऐसी श्रेणियों की मुहरें भी वैसाली में मिली हैं। इन समस्त विवरणों से पता चलता है कि गुप्तकालीन व्यापार बहुत ऊँचे श्रेणी तक पहुँच गया था। इसी कार्य को सम्पन्न करने के लिए सब राजाओं ने सिक्के तैयार कराये। चूँकि पिछले कुशाणों के स्थान पर गुप्त वंश ने अपना राज्य स्थापित किया था अतः उनके प्रचलित सिक्कों के ढंग पर गुप्त नरेशों ने सिक्के तैयार कराए। गुप्त नरेशों के सर्व प्रथम सिक्कों में कुशाण शैली का सर्वथा अनुकरण पाया जाता है। यदि समुद्र गुप्त के सिक्कों को देखा जाय तो निम्न लिखित बातों का पता चलता है।

(१) ईरान तथा शक देशों में विभिन्न रीति से अग्नि की पूजा होती थी। वहाँ के मनुष्य वस्त्र धारण कर खड़े होकर अग्नि में धूप डाला करते थे। ये बातें कुशाण लोगों के सिक्कों में पायी जाती हैं। उनके अनुकरण की हुई बातों को गुप्तों ने भी अपनाया जो समुद्र गुप्त के गरुडध्वजांकित (Standard type) सिक्कों के अवलोकन से स्पष्ट प्रगट होता है। गुप्त नरेश आदर्श हिन्दू राजा होते हुए भी कुशाण वेश में सिक्कों पर चित्रित हैं। हिन्दूधर्म में स्नान कर, नंगे बदन, तथा आसन पर बैठ कर यज्ञ करने का विधान है परन्तु गुप्त नरेशों ने ईरानी (पारसी) लम्बे कोट व पायजामा पहने अग्नि में धूप डालते दिखलाए गए हैं। इस वेष के कारण गुप्त सिक्के कुशाण सिक्कों के अनुकरण ही माने जा सकते हैं।

(२) पीछे के कुशाण राजाओं ने मध्य एशिया की रीति के अनुसार बाँह के नीचे नाम अंकित करना प्रचलित किया था। गुप्त सिक्कों पर भी

स च कु वही परिपाटी चलायी गयी और बाएं बांह के
मु न्द्र मा नीचे नाम लिखे मिलते हैं।
द्र र

(३) सिक्कों की पृष्ठ ओर गुप्त मुद्राकारों ने सिंहासन पर बैठी अरदोक्षो (यूनान की देवी) नामक देवी का चित्र अंकित किया था। यह देवी पश्चिमोत्तर प्रांत में प्रधान स्थान पा चुकी थीं और पीछे पूर्वी पंजाब के कुषाण नरेशों के सिक्कों पर सदा मिलती हैं।

(४) गुप्त सिक्कों पर कुछ अर्धचन्द्र का चित्र मिलता है इसे मुद्राशास्त्रवेत्ता भ्रष्ट यूनानी अक्षर का अवशिष्ट समझते हैं। कुषाण सिक्कों पर यूनानी अक्षर का प्रयोग होता था परन्तु गुप्त नरेशों ने अक्षर को नहीं लिया। उनके मुद्राकारों ने अबुद्धि पूर्वक अनुकरण कर लिया जिस कारण अक्षर यत्र तत्र दिखलाई पड़ते हैं।

(५) गुप्त नरेशों के सोने के सिक्के रोम की तौल १२४ ग्रेन के बराबर तैयार किए जाने लगे जो कुषाणों के समय से चला आ रहा था। इन सब बातों —पहनावा, नाम लिखने की रीति, देवी की मूर्ति तथा तौल १२४ ग्रेन के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त सिक्के पिछले कुषाण सिक्कों के अनुकरण पर तैयार किए जाने लगे।

यह तो विदित हो गया कि गुप्त सिक्कों का आरम्भ पिछले कुषाण राजाओं के प्रचलित मुद्राओं के अनुकरण पर किया गया था परन्तु यह स्थिति बहुत समय तक स्थिर न रह सकी। समुद्रगुप्त ने भी केवल एक ही सिक्का कुषाण शैली पर तैयार कराया था। शेष सिक्कों में भारतीयता की छाप वर्तमान है। गरुड़ध्वजांकित के अतिरिक्त अन्य सिक्कों में राजा भारतीय वेश में बैठा है अथवा किसी कार्य में लगा है। समुद्र के बाद किसी ने इस ढंग वाले सिक्के तैयार नहीं कराए। काच (राम गुप्त) सिक्का भी कुछ इससे मिलता जुलता है। जहाँ तक भारतीय वेश का प्रश्न है वह तो आरम्भ से ही (समुद्र के समय से) गुप्त सिक्कों पर मिलता है। गुप्त सम्राटों ने अरदोक्षो (देवी) के स्थान पर लक्ष्मी का समावेश किया। कमल को उचित स्थान पर रक्खा जो भारत का सब से प्राचीन चिह्न माना जाता है। नाम लिखने की प्रथा में आगे चलकर अधिक परिवर्तन हुआ। कुछ समय तक तो सुविधा के कारण बाँह के नीचे नाम लिखा जाता रहा परन्तु दायरे में छंदोबद्ध पंक्ति लिखने की परिपाटी आरम्भ से ही चली आ रही थी। संसार के इतिहास में गुप्त राजा ही ऐसे शासक थे जिन्होंने अपनी भाषा संस्कृत तथा लिपि (ब्राह्मी गुप्त) में सिक्कों पर छंद लिखवाए। यह गुप्तों की एक महान् विशेषता है। कुषाणों की लिखने की रीति को सर्वथा छोड़ दिया। जहाँ कि कई बातों का अनुकरण गुप्त सिक्कों में पाया जाता है वहाँ सब से बड़ी नवीनता (भारतीयपन) यह है कि आरम्भ से ही समुद्र गुप्त ने संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी

गुप्त सिक्कों का भारतीयकरण

लिपि (जिसको उस समय गुप्त लिपि कहते थे) को अपनाया। कुषाण तौल (रोम की तौल १२४ ग्रेन) पर बहुत समय तक गुप्त सम्राट् सिक्के तैयार करते रहे परन्तु स्कन्दगुप्त ने इससे पृथक सुवर्ण तौल १४६ ग्रेन या ८० रत्ती के बराबर सोने के सिक्के प्रचलित किया। यही प्राचीन भारतीय (सुवर्ण) तौल माना जाता है। सब से बड़ी बात यह है कि कुषाण सिक्के सदा मिश्रित धातु के बनते थे परन्तु गुप्त नरेशों ने विशुद्ध सोने के सिक्के तैयार कराए। स्कन्द गुप्त के समय में हूणों की चढ़ाई के कारण देश को आपत्ति से बचाने के लिए तथा राजकोष की स्थिरता के निमित्त कुछ मिश्रित धातु के सिक्के तैयार किए गए थे। यानी गुप्त मुद्रानीति की अवनति स्कन्द गुप्त के अन्त से प्रारम्भ हो गयी थी। लाचार हो कर उन्होंने तौल बढ़ाकर धातु के विशुद्धता को नष्ट कर दिया। इस विवेचन के पश्चात् संक्षेप में यह कहा जाता है कि जो मुद्रानीति कुषाण सिक्कों के अनुकरण पर चलायी गयी उस में गुप्त नरेशों ने विदेशीयन हटा कर विशुद्ध भारतीयता को लाने का प्रयत्न किया और इसमें सफल भी रहे।

यदि गुप्त कालीन सिक्कों का अध्ययन किया जाय तो प्रगट होता है कि गुप्तों के सभी सिक्के विशेष धेय तथा विचार को लेकर तैयार किए गए थे। यों तो

गुप्त सिक्कों की विशेषताएँ

उन पर स्थान तथा काल का प्रभाव बहुत दिखलाई पड़ता है लेकिन यहाँ उनके सामयिक और विशिष्ट अवसर पर तैयार किए जाने की बात कही जायगी। सब से पूर्व समुद्र ने अपने सिक्कों पर 'गरुड़ध्वज' को स्थान दिया जो गुप्त राज्य चिन्ह समझा जाता है। दूसरे सिक्कों पर युद्ध करने की मुद्रा (अवस्था) में दिखलाया गया है। धनुष बाण तथा परशु लिए राजा की मूर्ति अंकित है और साथ साथ यह भी लिखा है कि वह पृथ्वी को जीतने वाला है। उसके युद्ध यात्रा को कोई रोक नहीं सकता। एक सिक्के पर व्याघ्र को मारते हुए धनुष बाण के साथ दिखलाया गया है। साम्राज्य विजय कर उसने अश्वमेध यज्ञ किया जो अश्मेध सिक्के से प्रगट होता है। राजा की मूर्ति वीणा बजाते हुए सिक्के पर अंकित है जिससे देश में शांति तथा सुख का आभास मिलता है। इस प्रकार सिक्के युद्ध, यज्ञ तथा शांति व सुख की अथवा युद्ध, विजय और शांति पूर्ण अवस्था के द्योतक समझे जाते हैं। गुप्त काल में प्रायः सभी सम्राटों के सिक्के विशेष अवसर पर तैयार किए गए थे। चन्द्रगुप्त प्रथम तथा कुमार देवी वाला सिक्का राजनीति पूर्ण रहस्य अथवा विवाह के संस्मरण वाला समझा जाता है। कुमार गुप्त का कार्तिकेय वाला सिक्का धार्मिक भावना से सम्बन्धित है। सोने के सिक्कों के अतिरिक्त चाँदी के सिक्कों की भी यही दशा है।

उनको चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने क्षत्रप राजाओं को परास्त कर चलाया था। यद्यपि क्षत्रप सिक्कों का प्रभाव उन पर दिखलाई पड़ता है परन्तु उन पर लम्बी उपाधियों वाले लेख गुप्त शासक को परम वैष्णव होने की घोषणा करते हैं। अतएव यह कहा गया है कि गुप्त कालीन प्रायः सभी सिक्के विशेष अवसर, अवस्था (परिस्थिति) और स्मारक रूप में तैयार किये जाते रहे ।

गुप्त सिक्कों पर कला का प्रभाव

गुप्त नरेशों ने केवल मुद्रा के प्रारम्भ में कुषाण सिक्कों का अनुकरण अवश्य किया था परन्तु वह इतना थोड़ा है कि गुप्त सिक्के अधिकतर नवीनता के साथ दिखलाई पड़ते हैं। ध्वजांकित सिक्कों के अतिरिक्त गुप्त शासकों के सभी सिक्के नए शैली के हैं जिसका ज्ञान अगले पृष्ठों में कराया जायगा। यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि गुप्तों के नए प्रकार के सिक्के (धनुर्धारी, व्याघ्र, अश्वारोही अश्वमेध, वीणा तथा कार्तिकेय वाले) विशेष कला को लेकर तैयार किए गए थे। पिछले कुषाण से सिक्कों पर कला की अनुपस्थिति सर्वत्र दिखलायी पड़ती है। इस प्रकार के सिक्कों का अनुकरण करते हुए भी गुप्त मुद्राकारों ने सुन्दर ढंग से कलापूर्ण सिक्के तैयार किए, जिन्हें देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि पिछले कुषाण सिक्कों का अनुकरण हो सकता है। उनकी बनावट अत्यंत सुन्दर है। हिन्दू मुद्रा शास्त्र में गुप्तों के सिक्के कला की दृष्टि से ऊँचे श्रेणी के समझे जाते हैं। अश्वमेध सिक्के तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिंह युद्ध वाला सिक्का प्राचीन मुद्राओं में सबसे उत्तम व सुन्दर समझा जाता है। इसमें भाव का प्रदर्शन कलात्मक दृष्टि से ऊँचे स्तर का है। गुप्त कालीन स्वर्ण युग में प्रस्तर कला की उन्नति के साथ सिक्कों में भी कला का सूक्ष्म प्रदर्शन किया गया था। राज लक्ष्मी शेर घोड़े तथा कमल आदि को उनके प्राकृतिक रूप में दिखलाया गया है। समुद्र गुप्त स्वाभाविक ढंग से वीणा बजाते अंकित किया गया है। गुप्त सिक्कों में कला की अवनति कुमार गुप्त के बाद होने लगी। यद्यपि उसने कई नए ढंग के सिक्के अपने शासन काल में तैयार कराया पर कुछ कला की दृष्टि से घटकर हैं। स्कन्द गुप्त के समय में विदेशी हूणों के आक्रमण के कारण साम्राज्य अवनति की ओर अग्रसर होने लगा जिसे सिक्के भी बतलाते हैं। उसके सिक्के भद्दे हैं। कला की भावना क्षीण होती चली जाती है। जिस भावना के साथ गुप्त काल में सुन्दर प्रस्तर मूर्तियाँ तैयार की जाती रही वही ढंग, शैली तथा प्रदर्शन सिक्कों पर भी पाया जाता है। चाहे वह मनुष्य की मूर्ति, या जानवर की आकृति है कमल अथवा अक्षरों की खुदाई है सबमें कलाकारों ने हाथ की सफाई दिखलाई है। सभी अपने स्वाभाविक रूप में दर्शाए गए हैं। इस प्रकार कला का प्रदर्शन किसी

दूसरे राजवंश के सिक्कों पर नहीं मिलता। वे सिक्के गुप्त कालीन ललित कला की जानकारी में सहायक सिद्ध हुए हैं।

गुप्त कालीन सोने के सिक्कों के अध्ययन से यह साफ तौर से मालूम हो जाता है कि इन पर स्थान तथा काल (समय-परिस्थिति) का अधिक प्रभाव पड़ा जिससे तौल तथा धातु में भिन्नता पायी जाती है। सर्वप्रथम गुप्त लोगों ने सोने के सिक्के रोम की तौल के बराबर तैयार किये, क्योंकि वही तौल कुषाण सिक्कों में भी पायी जाती थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में इसे १२४ ग्रेन तक बढ़ा दिया गया। कुमार गुप्त के सिक्के १३२ ग्रेन के पाए जाते हैं। स्कन्दगुप्त ने इस तौल को छोड़ कर रोम की तौल के स्थान पर भारतीय तौल (सुवर्ण तौल १४४ ग्रेन या ८० रत्ती) को अपनाया। उसीके पश्चात् सुवर्ण तौल के गुप्त सिक्के बनाए जाते रहे। रोमन तौल (१२४ ग्रेन) के गुप्त सिक्के उत्तर-पश्चिम में या मध्य भाग में तथा भारतीय सुवर्ण तौल (८० रत्ती १४४ ग्रेन) के सिक्के पूर्वीय प्रदेश (विशेषतः कालीघाट के खज़ाना) में मिलते हैं। इसका यह अर्थ निकलता है कि कुषाण राज्य के समीपवर्ती गुप्त प्रदेश में अल्प तौल के सिक्के बनते थे तथा सुदूर प्रांत में तैयार होने वाले सिक्के सुवर्ण तौल के बराबर थे। इस प्रकार स्थान के प्रभाव से तौल में भेद पाया जाता है। वे गुप्त सिक्के विभिन्न तौल के पाए जाते हैं।

तौल और धातु (समय तथा स्थान का प्रभाव)

	तौल
चन्द्रगुप्त प्रथम	११६ ग्रेन
समुद्रगुप्त	११८ ग्रेन
चन्द्रगुप्त द्वितीय	१२६ या १३२ ग्रेन
कुमार	१२४-१२६ ग्रेन
स्कन्द	१३० तथा १४४ ग्रेन
प्रकाशादित्य	१४५ ग्रेन
नरसिंह	१४६ ग्रेन

गुप्त नरेशों ने विशेष अवसर पर विशिष्ट प्रकार के सिक्के तैयार कराए जिनका वर्णन किया जा चुका है। पहले सोने के सिक्के शुद्ध धातु के बनते थे। परन्तु स्कन्द के समय से उसमें मिश्रण आरम्भ हुआ। हूणों की लड़ाई से सिक्कों की संख्या में वृद्धि की गयी। उसके उत्तराधिकारियों के समय में अधिक अवनति अवस्था के कारण विशुद्ध धातु के सिक्के न बन सके। चाँदी के सिक्कों की भी यही हालत थी। ताँबे के सिक्कों पर चाँदी का पानी रख कर चाँदी के सिक्के घोषित किए गए थे।

यह अवस्था बुरी परिस्थिति का द्योतक था। रोमन तौल को अपनाने का कारण यह था कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सौराष्ट्र तथा मालवा से क्षत्रप (शक) राज्य का अंत कर दिया जिससे गुप्त राज्य पश्चिमी बन्दरगाह भड़ौच द्वारा रोम से सीधे सम्बन्ध में आ गया था। रोम से व्यापार बढ़ता गया। रोम के सिक्कों की अधिकता के कारण तौल के (१२४ ग्रेन) अतिरिक्त उन सिक्कों के नाम (डेनेरियस) को भी दीनार का रूप दे दिया गया। यही कारण है कि गुप्त सिक्के दीनार के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध हुए। ये नाम (दीनार) गुप्त कालीन शिला लेखों में पाया जाता है। दीनार (१२४ ग्रेन) और सुवर्ण (१४४ ग्रेन) से पृथक पृथक सोने के सिक्कों का बोध होता था। कुछ लेखों में इनके पारस्परिक विभेद के न जानने से दीनार तथा सुवर्ण को पर्याय वाची शब्द समझ कर प्रयोग किया गया है।

गुप्त कालीन साहित्य विकास के बारे में यहाँ कुछ कहना अप्रासंगिक होगा परन्तु इतना तो कहना आवश्यक है कि साहित्य की उन्नति पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी। संस्कृत राष्ट्र भाषा का स्थान ग्रहण कर चुकी थी।
सिक्कों पर साहित्य इस विशाल उन्नत साहित्य का प्रभाव सिक्कों पर भी पड़ा।
तथा धर्म का प्रभाव सिक्कों पर गुप्त नरेशों ने न केवल संस्कृत में लेख खुदवाए परन्तु इस भाषा में छंद बद्ध पंक्तियाँ भी खुदवायी। उन लेखों में छंद के सिवाय काव्य के गुण भरे पड़े हैं। उपगीति छंद में 'विजता वनिर वनिपतिः कुमार गुप्तो दिवम् जयति' सर्व प्रथम कुमार गुप्त के सिक्कों पर अंकित किया गया। इस तरह

(१) समर सत वितत विजयो जितरिपु रजितो दिवं जयति।
(२) अप्रति रथो विजित्य क्षितिं सुचरितैः दिवं जयति।
(३) नरेन्द्र चन्द्रः प्रथितदिवं जयत्य जेयो भुवि सिंहविक्रमः।
(४) क्षितिपति रजित महेन्द्रः कुमारगुप्तो दिवं जयति।

आदि संस्कृत की पंक्तियाँ मिलती हैं। सोने के सिक्कों को छोड़ कर चाँदी वाले सिक्के पर साधारण पंक्तियाँ संस्कृत भाषा में खुदी हैं। पश्चिमी भारत सौराष्ट्र के सिक्कों पर परम भागवत महाराजाधिराज के साथ शासक का नाम मिलता है।

'परम भागवत महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तस्य

अथवा

श्री गुप्त कुलस्य महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तस्य विक्रमांकस्य

लिखा मिलता है। मध्यदेशीय चाँदी के सिक्कों पर वही छंदोबद्ध पंक्ति

'विजितावनिरवनिपतिः' मिलती है। यह पंक्ति इतनी आकर्षक सिद्ध हुई कि कुमार गुप्त के उत्तराधिकारियों ने इसे प्रधान स्थान दिया। केवल नाम के परिवर्तन के साथ पिछले गुप्त नरेशों ने भी इसे अपनाया। इसका अनुकरण हूण तथा मौखरि सिक्कों पर पाया जाता है। ईशान वर्मा के सिक्कों से हर्ष वर्धन ने इसे अपने सिक्कों पर खुदवाया। इस तरह की छंदबद्ध पंक्ति अन्यत्र नहीं पायी जाती। गुप्त कालीन सिक्के की यह एक प्रधान विशेषता है जिसका शानी दूसरा नहीं है। गुप्त कालीन प्रशस्तियाँ तथा मूर्तियाँ यह बतलाती हैं कि गुप्त सम्राट वैष्णवधर्मा नुयायी थे। यहाँ पर सिक्कों के आधार पर यह विशिष्ट रूप से प्रमाणित हो जाता है कि गुप्त नरेश विष्णु के उपासक थे। भरतपुर राज्य में प्राप्त बयाना के ढेर में एक सोने का सिक्का मिला है जिसमें गदा युक्त भगवान विष्णु चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को त्रैलोक्य भेंट कर रहे हैं। पृष्ठ की ओर शंख की आकृति वर्तमान है। अतः गदा तथा शंख ने विष्णु भगवान तथा राजा को विष्णु उपासक घोषित करने में आसानी हो जाती है। इससे पूर्व शासक काचगुप्त के सिक्के पर भी चक्र की आकृति बनी है। सोने के अतिरिक्त चाँदी के सिक्कों में भी गुप्त सम्राट परमभागवत कहे गये हैं। इससे यह पुष्ट हो जाता है कि गुप्त नरेश परम वैष्णव थे। इस कारण से सिक्कों द्वारा गुप्त कालीन धार्मिक अवस्था पर प्रकाश पड़ता है।

गुप्त-मुद्रा का आरम्भ

आधुनिक काल में इस विषय में बड़ा मतभेद है कि गुप्त मुद्रा को किस नरेश ने जन्म दिया। पश्चिमी विद्वानों का मत है कि समुद्र गुप्त ने सब से पहले सिक्के तैयार कराए यानी वही गुप्त मुद्रा-कला का जन्मदाता था। उसके पिता चन्द्रगुप्त प्रथम का एक सिक्का मिला है जिस पर अग्रभाग की ओर राजा की मूर्ति और उसकी स्त्री कुमारदेवी का चित्र अंकित है। उसी ओर राजा का नाम चन्द्रगुप्तः और श्रीकुमारदेवी लिखा है। पृष्ठ ओर लिच्छवयः खुदा है और सिंह वाहिनी लक्ष्मी की मूर्ति है। इसके आधार पर एक मत स्थिर किया जाता है कि चन्द्र प्रथम ने गुप्त मुद्रा को प्रारम्भ किया। पश्चिमी विद्वान जान एलन का कहना है कि इस सिक्के को भी समुद्रगुप्त ने पिता के विवाह के उपलक्ष में (यादगार के लिए) चलाया था। यह तो सभी मानते हैं कि गुप्त सिक्के पिछले कुषाणों के अनुकरण पर तैयार किए गए। इसे मानने पर समुद्र गुप्त का गरुडध्वज-अंकित सिक्का सर्व प्रथम मानना चाहिए। चन्द्र प्रथम के सिक्के में कुछ नवीनता है। अनुकरण के बाद ही नवीनता आती है। अतः कुमारदेवी वाला सिक्का स्टैन्डर्ड सिक्के के बाद में तैयार किया गया होगा। इस परिस्थिति में समुद्रगुप्त

गुप्त मुद्रा का जन्मदाता माना जा सकता है। यदि चन्द्रगुप्त प्रथम जन्मदाता होता तो कुमारदेवी वाला (नवीनता लिए) सिक्का तैयार करना सम्भव न था। परन्तु एलन का यह तर्क सारगर्भित नहीं है। बहुधा यह देखा जाता है कि किसी स्मारक में कर्ता का नाम होता है। यदि कुमार देवी वाले सिक्के को समुद्र ने चलाया (चन्द्र प्रथम ने नहीं) तो उसमें अपना नाम क्यों नहीं दिया जिसकी आवश्यकता थी। यदि इसने अश्वमेध स्मारक सिक्के पर अपना नाम खुदवाया था तो उससे पूर्व के सिक्के पर समुद्र का नाम क्यों नहीं अंकित किया गया? एलन के मत के विरोध में यह कहना पड़ता है कि चन्द्र गुप्त प्रथम का विवाह लिच्छवी कुमारी से इस शर्त पर हुआ था कि वह राज्य प्रबंध में सम्मिलित रहेगी। इसी से विवाह होते चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने सिक्के पर कुमारदेवी की मूर्ति अंकित करायी। लिच्छवयः शब्द का प्रयोग किया। सम्भवतः सिंह वाहिनी लक्ष्मी लिच्छवी वंश की राज्य चिह्न थी जिस को दूसरी ओर सिक्के पर स्थान दिया गया। उस राजनैतिक बन्धन के कारण चन्द्रगुप्त प्रथम दूसरे प्रकार का सिक्का तैयार न कर सका। यद्यपि चन्द्रगुप्त का राज्य पंजाब तक विस्तृत न था और वह कुषाणों के सम्पर्क में भी न आसका फिर यह है कि सम्भव फिर तीर्थ स्थानों में कुषाण सिक्के प्रचलित होंगे और उसी को देख कर मुद्राकारों ने कुछ नवीनता लिए कुमारदेवी वाला सिक्का तैयार किया। नाना देवी की मूर्ति कुषाण सिक्कों पर मिलती है। उसी के भाव को लेकर (सिंहासन के स्थान पर) सिंह वाहनी लक्ष्मी का रूप दे दिया और उसे भारतीयता के साँचे में ढाल दिया। इन सब बातों पर विचार करने के बाद चन्द्रगुप्त प्रथम ही गुप्तमुद्रा का जन्मदाता माना जा सकता है समुद्र गुप्त नहीं।

यह तो निश्चित सिद्धान्त है कि गुप्त कालीन मुद्राकला का स्वतंत्ररूप से जन्म नहीं हुआ। अतएव गुप्तमुद्रा का आरम्भ अवश्य ही विदेशियों के अनुकरण पर किया गया। पिछले कुषाण सिक्कों के अनुकरण पर यह प्रारम्भ हुआ। कुछ पश्चिमी विद्वान कतिपय गुप्त सिक्कों के बनावट से यह मत प्रगट करते हैं कि रोम तथा यूनानी सिक्कों ने गुप्त मुद्रा कला को प्रभावित किया था परन्तु उनका सीधा प्रभाव के मानने के लिए हम तैयार नहीं हैं। इतना तो सभी मानते हैं कि कुषाण सिक्के रोम के अनुकरण पर निकले अतः सोने के गुप्त सिक्कों पर उसका गौण रूप से प्रभाव सिद्ध होता है। इसी तरह चाँदी के सिक्के क्षत्रपों के नकल पर तैयार किये गए जो यूनानी हेमी ड्राम (द्रम) के अनुकरण पर बने थे। इस प्रकार गुप्त सिक्कों पर गौण रूप से विदेशी प्रभाव दिखलाई पड़ता है। गुप्त सम्राटों ने क्रमशः नवीनता, विशुद्ध धातु का और भारतीय तौल का समावेश किया।

गुप्त सिक्कों की संख्या तथा विभिन्न शैली को देखकर यह अनुमान किया जाता है कि सिक्के तैयार करने के लिए निश्चित स्थान अवश्य थे जहाँ पर उनके निर्माण के लिए विशिष्ट प्रकार से कार्य किया जाता था। भारत

सिक्के तैयार करने के स्थान तथा ढंग

में सब से प्राचीन आहत सिक्के पत्तर पर निशान लगाकर तैयार किए जाते थे परन्तु ईसा पूर्व पहली सदी से साँचे में ढालने का प्रकार आरम्भ हो गया था। गुप्तकाल में भी साँचे में ढालकर सिक्के तैयार करने का ढंग प्रचलित था। सिन्धु-गंगा की घाटी में अधिकतर टकसाल के स्थान मिले हैं अभी तक गुप्त कालीन दो स्थानों काशी तथा नालन्दा का पता लगता है। थोड़े दिन हुए राजघाट (काशी) खुदाई में एक मिट्टी का साँचा मिला है। इससे पता चलता है कि धातु गलाकर मिट्टी के साँचे में ढालकर चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में सोने की मुद्रा तैयार की जाती रही। देखने से पता चलता है कि यह एक सिक्का ढालने का मण्डल है परन्तु उसके विशिष्ट कार्य शैली के विषय में अधिक कुछ कहा नहीं जा सकता। इसी प्रकार का गुप्तकालीन तीन साँचे नालंदा से मिलते हैं जो गहरे भूरी मिट्टी के बने हैं। इसमें गली हुई धातु के अन्दर जाने के लिए नली दिखलाई पड़ती है। उनके लेख के पढ़ने से पता चलता है कि पिछले गुप्त नरेशों (जयगुप्त तथा नरसिंह गुप्त) के सिक्के नालंदा में ढाले जाते रहे। अभी तक साँचे में ढालने के अतिरिक्त अन्य शैली (ठप्पा आदि) के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है।

गुप्त मुद्रा नीति में परिस्थित तथा स्थान के अनुसार परिवर्तन होता रहा। यह बात चाँदी के सिक्कों के लिये भी अक्षरशः घटती है। गुप्त काल में चाँदी के

चाँदी के सिक्कों की विशेषताएँ

सिक्के उस समय से शुरू किये गये जब ईसवी सन् की चौथी सदी में चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने पश्चिमी भारत (मालवा तथा सौराष्ट्र) पर विजय प्राप्त की। जहाँ पर क्षत्रप लोगों का शासन पहले से था। चूंकी वे शक थे अतएव विजेता गुप्त नरेश शकारि के पदवी से विभूषित किया गया। विजित देशों में शकों (क्षत्रप) के चाँदी के सिक्के प्रचलित थे उन्हीं के नकल पर गुप्त चाँदी के सिक्के निर्माण किए गए। पश्चिमी भारत में ईसा पूर्व पहली शताब्दी से क्षत्रपों का शासन था और ग्रीक अर्द्ध द्रम (३३ ग्रेन) की तरह इन्होंने अपना सिक्का चलाया था। उन पर यूनानी अक्षर भी वर्तमान थे। सिक्के गोलाकार पतले चाँदी के टुकड़े से बनते थे जिनके अग्रभाग की ओर राजा का आधा शरीर का चित्र खुदा रहता और शक-सम्वत् में तिथि लिखी जाती थी। चारों

ओर यूनानी अक्षरों में पिता के नाम के साथ शासक का नाम खुदे रहते थे। गुप्त शासकों ने क्षत्रपों के अनुकरण पर चाँदी के सिक्के तैयार किये परन्तु कुछ नवीनता के साथ मुद्रा नीति निर्धारित की गयी। अग्रभाग की ओर राजा के चित्र के साथ ब्राह्मी अक्षरों में लेख तथा गुप्त सम्वत् का प्रयोग किया गया तथा पृष्ठ ओर चैत्य के स्थान पर गरुड़ की आकृति खोदी गई। परन्तु तौल में अर्द्ध द्रम के बराबर गुप्त नरेशों ने चाँदी के सिक्के तैयार कराया था। गुप्त कालीन चाँदी के सिक्के दो प्रकार के मिलते हैं। सौराष्ट्र के सिक्कों पर गरुड़ का चित्र तथा परम भागवतो महाराजधिराज की उपाधि मिलती है। मध्यदेश के सिक्के दूसरे श्रेणी में गिने जाते हैं। उन पर गरुड़ के बदले मोर पक्षी का चित्र और सोने के सिक्कों वाला लेख 'विजितावनिवनिपतिः' पाए जाते है। कुछ ताम्बे के सिक्कों पर चाँदी का पानी डालकर झूठे चाँदी के सिक्के तैयार किए गए जो सम्भवतः युद्ध काल मे थोड़े समय तक प्रचलित रहे। चांदी के सिक्कों को देखने से प्रकट होता है कि मध्यप्रदेश में प्रचलित सिक्कों में अधिक नवीनता है। इस में राजा के मुख के सामने तिथि खुदी है और निरर्थक विंदु तथा यूनानी अक्षरों का सर्वथा लोप हो गया है (जो सौराष्ट्र के सिक्कों पर भ्रष्ट रूप में पाया जाता है) गुप्त कालीन चांदी के सिक्कों की नवीनता के कारण अनुकरण गौण सा हो जाता है।

गुप्त सिक्कों के वर्णन आरम्भ करने से पूर्व यह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता ह कि गुप्त सिक्कों के प्राप्ति स्थान का दिग्दर्शन कराया जाय। भारत वासियों के लिये यह दुर्भाग्य का विषय रहा है कि भारतीय संस्कृति सूचक अनेक वस्तुएं विदेशों में भेज दी जाती रहीं। भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग (गुप्त काल) के सिक्के भी विभिन्न स्थानों में पाये जाते हैं। सब से प्रथम गुप्त राजाओं के सोने के सिक्कों का ढेर (दो सौ) १८७३ ई० में कलकत्ते से दस मील दूर काली घाट से मिला था जिसे तत्कालीन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंगस ने इंगलैन्ड में विभिन्न व्यक्तियों को बाँट दिया। दूसरा ढेर बनारस के समीप भरसार से मिला था, इसमें समुद्र गुप्त से लेकर पुरगुप्त तक के सिक्के (दीनार) वर्तमान थे। इस तरह १६वीं सदी के अंतिम चौथाई में बंगाल, बिहार तथा संयुक्त प्रांत के विभिन्न नगरों से गुप्त सम्राटों के सोने के सिक्के मिलते रहे।

सिक्कों का प्राप्ति स्थान

हाल ही में (गत वर्ष) भरतपुर रियासत के बयाना जिले में स्थित नगला छैला नामक ग्राम से गुप्त सोने के सिक्कों का एक विचित्र ढेर मिला है

जिसने संसार को आश्चर्य में डाल दिया है। अभी तक जितने ढेर मिले हैं उनमें ढाई सौ से अधिक सिक्के नहीं मिल सके हैं परन्तु भरतपुर (बयाना) ढेर में दो हजार से अधिक सिक्के एक स्थान ही पर मिले हैं। उनकी संख्या बाइस सौ बतलायी जाती है जिसमें प्राय १८०० सिक्के उपलब्ध हो सके हैं। शेष गला दिये गये अथवा छिपा दिये गये। संसार के संग्रहालयों में इतनी संख्या में तथा इतने विभिन्न प्रकार के सिक्के नहीं पाए जाते। इस ढेर में सब से अधिक सिक्के चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समय के हैं। उसके बाद कुमार गुप्त प्रथम के सिक्कों की संख्या है। तत्पश्चात् समुद्रगुप्त के सिक्के भी दो सौ के लगभग हैं। सब से विचित्रता तो यह कि कई नये प्रकार के सिक्के प्राप्त हुए हैं जिनका नाम भी किसी को ज्ञात न था। इस ढेर में समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी गुप्त राजा काचगुप्त के इतिहास पर विशेष रूप से प्रकाश पड़ता है। विद्वानों का मत है कि सन् ४४० ई० के बाद हूण आक्रमण के कारण इस खजाने को जमीन में गाड़ दिया गया था। प्रायः इस ढेर से बारह नए प्रकार के सिक्कों का पता लगा है जिनके बारेमें कुछ ज्ञात न था। उनमें अधिकतर कुमारगुप्त प्रथम के समय में तैयार किया गया था। इन सिक्कों से कुमारगुप्त प्रथम के इतिहास पर अधिक प्रकाश पड़ता है। इस ढेर की परीक्षा करने का श्रेय डा० अलतेकर को है जिनके कथनानुसार निम्नलिखित सिक्कों की संख्या पायी जाती है। बयाना ढेर मे

चन्द्रगुप्त प्रथम के	१० सिक्के
समुद्रगुप्त प्रथम के	१७३ सिक्के
काचगुप्त प्रथम के	१५ सिक्के
चन्द्रगुप्त द्वितीय के	९६१ सिक्के
कुमारगुप्त प्रथम के	६२३ सिक्के
क्रमादित्य (स्कन्दगुप्त)	१ सिक्के
खंडित	५ सिक्के

कुल जोड़—१७८८

सिक्कों की संख्या से प्रकट होता है कि स्कन्दगुप्त के शासन के आरम्भ में ही इस खजाने को जमीन में रख दिया गया था।

सोने के सिक्कों की तरह गुप्त कालीन चाँदी के सिक्कों का ढेर भी बम्बई प्रांत के सतारा में मिला है जिसमें चौदह सौ सिक्के पाये गये हैं। इसमें कुमार गुप्त प्रथम के सिक्के हज़ार से भी अधिक हैं। इसी तरह पश्चिमी भारत के अन्य स्थानों से भी गुप्त सम्राटों के चाँदी के सिक्के मिले हैं। कहने का तात्पर्य यह है

चाँदी के लिये सतारा तथा सोने के लिये भरतपुर की बयाना ढेर ही सब से प्रसिद्ध प्राप्ति स्थान माने जा सकते हैं।

गुप्त नरेशों ने कई प्रकार के सिक्के प्रचलित किये जिनका पृथक पृथक वर्णन आवश्यक प्रतीत होता है। चन्द्र गुप्त प्रथम का एक ही प्रकार का सिक्का मिला है। यह सिक्का चन्द्र के लिच्छवी राज पुत्री कुमार देवी के साथ विवाह के स्मारक में तैयार किया गया था। अग्रभाग पर चन्द्र गुप्त प्रथम टोपी कोट, पायजामा तथा आभूषण पहने खड़ा है। उसी के समीप वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कुमारदेवी का चित्र है। राजा रानी को अंगूठी भेंट कर रहा है। बाईं ओर चन्द्र गुप्त और दाहिनी ओर 'श्री कुमार देवी' लिखा है। पृष्ठ तरफ—सिंह वाहिनी लक्ष्मी का चित्र है। हाथ में नाल युक्त कमल लिये बैठी हैं। पैर के नीचे कमल है ओर लिच्छवयः लिखा है।

शासकों के सिक्के

समुद्र गुप्त के कई प्रकार के सोने के सिक्के मिले हैं। उन पर विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ तथा संस्कृति के सुन्दर छंदबद्ध (पद्यात्मक) लेख उत्कीर्ण हैं। समुद्र के पहले प्रकार के सिक्के में पिछले कुषाण सिक्कों का अनुकरण दिखलाई पड़ता है। परन्तु बाद के सिक्कों में भारतीयता का अधिक छाप है। पहले प्रकार के सिक्के पर गरुड़ ध्वज है। यही कुषाण रीति पर तथा तौल के बराबर तैयार किया गया था। अग्रभाग की ओर—कोट (लम्बे ढंग वाला) टोपी, पायजामा तथा घुटने तक लम्बा जूता पहने समुद्र गुप्त खड़ा है। शरीर पर अनेक आभूषण दिखलाई पड़ते हैं। बाएं हाथ मे गरुड़ध्वज लिए है। दाहिने हाथ से अग्नि में आहुति डाल रहा है [खड़ा होकर पूजा करने का ढंग विदेशी-ईरानी है)। राजा के बाएं हाथ के नीचे नाम लिखा है। राजमूर्ति के चारों ओर उपगीति छंद में 'समरशत वितत विजयो जित रिपुरजितो दिवं जयति' लिखा है। पृष्ठ ओर-सिंहासन पर बैठी लक्ष्मी की मूर्ति है। देवी का शरीर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित है। बाए हाथ में कार्नकोपिया तथा दाहिने में नाल दिखलाई पड़ता है। इस राजा की पदवी 'पराक्रम' खुदा है और कुछ व्यर्थ चिन्ह अथवा कुषाण सिक्कों के यूनानी अक्षर देख पड़ते हैं। ये ६४ सिक्के १२४ ग्रेन के हैं। समुद्रगुप्त ने यूनानी अक्षर के स्थान पर ब्राह्मी अक्षरों (गुप्त लिपि) का प्रयोग किया और लेख खुदवाए।

स स / मु या मु गु / द्र द्र प्त

(२) दूसरे प्रकार के सिक्के में भी

अग्रभाग	पृष्ठभाग
धनुषवाण धारण किए राजा की	सिंहासन पर बैठी

मूर्ति और गरुड़ध्वज दिखलाया गया है। बाएं हाथ के नीचे स राजा का नाम मु और मूर्ति द्र के चारो ओर गुप्तलिपि में 'अप्रतिरथो विजित्य क्षिति सुचरितैः दिवं जयति' लिखा है।	लक्ष्मी की मूर्ति तथा अप्रतिरथः मिलता है।

(३) तीसरे प्रकार के सिक्के में अग्रभाग की ओर ध्वजा के बदले में परशु लिए राजा की मूर्ति और दाहिनी ओर एक बालक की मूर्ति दिखाई पड़ती है। पहले सिक्कों की तरह अक्षर के नीचे अक्षर लिखकर राजा का नाम खुदा है। मूर्ति के चारों ओर पृथ्वी छंद में कृतांन परशुर्जयत्यजित राज जेता जितः लिखा है। पृष्ठ ओर नालयुक्त कमल लिए सिंहासन पर बैठी लक्ष्मी (देवी) की मूर्ति है। उसकी दाहिनी ओर कृतान्त परशुः, लिखा है। भरतपुर के बयाना ढेर में इस प्रकार के कई सिक्के मिले हैं जिसमें समुद्र अथवा पदवी का केवल प्रथम अक्षर कृ लिखा मिलता है।

(४) चौथे प्रकार का सिक्का बड़ा विलक्षण है। इसमें राजा धनुष बाण लिए व्याघ्र को मारते हुए चित्रित किया गया है। राजा भारतीय वेष में है। बाएं हाथ के नीचे व्याघ्र पराक्रम लिखा है। पृष्ठ ओर मगर की पीठ पर खड़ी हाथ में कमल लिए गंगादेवी चित्रित हैं। राजा का नाम राजा समुद्र गुप्तः लिखा है। परन्तु बयाना ढेर से व्याघ्र मारते हुए कई अनमोल सिक्के मिले हैं। किसी सिक्के मे राजा समुद्र गुप्तः लिखा है तो दूसरे में अग्र तथा पृष्ठ दोनों भागों पर व्याघ्र पराक्रमः ही अंकित है। इसमें कुशाण सिक्कों का अनुकरण नहीं मालूम पड़ता। सभी बातें भारतीय हैं। तौल ११८ ग्रेन।

(५) पाँचवा सिक्का राजा के संगीत से प्रेम की घोषणा करता है। राजा अग्रभाग की ओर खाट पर बैठा है। हाथ में वीणा लिए हुए राजा की मूर्ति उसके चारों ओर महाराजाधिराज श्री समुद्र गुप्तः लिखा है। पृष्ठ ओर आसन बैठी देवी की मूर्ति है और पीछे 'समुद्र गुप्तः लिखा है। यह वीणा वाला सिक्का कहा जाता है। इसमें किसी प्रकार का अनुकरण नहीं है। यह सर्वथा भारतीय ढंग का सिक्का है केवल इसकी तौल ११५ ग्रेन है जो रोम की तौल के करीब बराबर है। भरतपुर ढेर में इस प्रकार के छोटे तथा बड़े कई सिक्के मिले हैं जो संगीत प्रेम की व्यापकता को सिद्ध करता है।

(६) छठे प्रकार का अश्वमेध वाला सिक्का है जो अश्वमेध यज्ञ के स्मारक

में तैयार किया गया था। समुद्र ने अन्य प्रांतों पर दिग्विजय कर इसे तैयार कराया। प्रयाग की प्रशस्ति में इस दिग्विजय का विस्तृत विवरण पाया जाता है। उसमें अनेक गोशत सहस्त्रप्रदायिनः लिख कर अश्वमेध के अवसर उसके दानका वर्णन हरिषेण ने किया है। अग्रभाग में पताका के साथ यज्ञ यूप में बन्धे अश्वमेध घोड़े की मूर्ति है। वहां गोल दायरे में उपगीति छंद में 'राजाधिराज पृथिवि बिजित्वा दिवं जयत्या हृत वाजिमेध, लिखा है। पृष्ठ ओर हाथ में चँवर लिए प्रधान महिषी की मूर्ति है। महिषी के पीछे 'अश्वमेध पराक्रमः' लिखा मिलता है। बयाना ढेर से प्रायः बीस अश्वमेध सिक्के मिले हैं। उनमें लेख के आरम्भ स्थान में विभेद पाया जाता है यही कारण है कि वे सिक्के नए ढङ्ग के माने जाते हैं। मूल में सभी अश्वमेध सिक्के एकसे हैं।

इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध विद्वान राखाल दास बनैर्जी को वर्द्वान (बंगाल) से समुद्र के दो ताँबे के सिक्के मिले थे। यह तो सभी जानते हैं कि राज्य के सभी टकसालों में सिक्के तैयार किए जाते हैं। समुद्र गुप्त के सिक्कों की परीक्षा करने से उनके निर्माण काल और स्थान का पता लगता है। सिक्कों की बनावट तथा ढङ्ग से यह ज्ञात होता है कि वे सिक्के विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित किए गये थे। राज्य के उत्तर पश्चिमी भाग में (पूर्वी पञ्जाब में) तैयार सिक्कों में पिछले कुषाण सिक्कों का अधिक अनुकरण दिखलाई पड़ता है। गुप्त साम्राज्य के पूर्वी टकसालघरों के सिक्कों में कुछ नवीनता आ जाती है। परन्तु तथा व्याघ्र वाले सिक्के पूर्वी भाग में तैयार किए गए थे। सम्भवतः बंगाल में व्याघ्र का आखेट अधिक प्रिय माना जाता है। अश्वमेध से पूर्ण विजय का तथा वीणा वाले सिक्कों से पूर्णशांति व सुख का आभास मिलता है। ये सिक्के राजधानी में ही तैयार किए गए होंगे।

इन्हीं सिक्कों से उनका काल निर्णय हो सकता है। इसमें संदेह नहीं है कि सर्व प्रथम गरुड़ध्वजांकित वाला सिक्का तैयार किया गया होगा। परशु तथा धनुष बाण वाले सिक्कों से युद्ध की बात प्रगट होती है। इनका निर्माण राज्य विस्तार के समय माना जा सकता है। अश्वमेध वाले सिक्के से पूर्ण विजय तथा व्याघ्र वाले से राजा के आमोद का परिज्ञान किया जाता है। वीणा वाला सिक्का अंतिम समय में तैयार किया गया होगा। पीछे के सिक्कों में क्रमशः भारतीय ढंग व वेष दिखलाई पड़ता है। अश्वमेध वाला सिक्का सर्वथा नवीन ढंग का है।

गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के पश्चात् इस विशाल गुप्त साम्राज्य का कौन उत्तराधिकारी हुआ, इस विषय में विद्वानों में मतभेद रहा है। गुप्त लेख यह

बतलाते हैं कि समुद्र के बाद उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय सिंहासन पर बैठा। ... अब एक नए काचगुप्त नामक राजा की स्थिति ज्ञात हुई है जो दोनों के बीच मे थोड़े समय तक शासन करता रहा। साहित्यिक प्रमाणों से उसकी ऐतिहासिकता सिद्ध की गयी है ये देवी चन्द्रगुप्तम् नाटक, हर्षचरित, काव्यमीमांसा शृंगार प्रकाश तथा संजन ताम्रपत्र के आधार पर रामगुप्त (वास्तविक नाम काचगुप्त) का राज्य काल निर्णय किया गया है। यह निसंदेह सिद्ध हो गया है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से पूर्व थोड़े समय तक काचगुप्त का शासन रहा। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शकों को परास्त कर इसकी स्त्री से विवाह कर लिया था। समुद्रगुप्त के सिक्के की तरह एक सोने का सिक्का मिला है जिस पर काच लिखा है। उसे ही काच गुप्त वाला सिक्का माना जाता है।

उसके अल्प काल का एक ही प्रकार का सिक्का मिलता है। अग्रभाग की ओर राजा की खड़ी मूर्ति (समुद्र की तरह वस्त्र पहने) चक्रयुक्त ध्वजा लिए और अग्नि में दाहिने हाथ से आहुति देते दिखलायी गयी है। राजा के बाएं हाथ के नीचे गुप्त लिपि में काच और चारों ओर उपगीति छंद में काचो गाम विजित्य दिवं कर्मभिरुत्तमैर्जयति' लिखा है।

पृष्ठ ओर पुष्प लिए खड़ी देवी की मूर्ति है तथा उसके पीछे 'सर्व राजोच्छेता' लिखा है।

सिक्के की बनावट, नाम लिखने का ढंग तथा ध्वजा से पता चलता है कि काच वाला सिक्का अवश्य ही किसी गुप्त नरेश का है। उसका तौल ११८ ग्रेन है जो समुद्र गुप्त के स्टैनर्ड टाइप वाले सिक्के के समान है। बयाना ढेर में काचगुप्त के अनेक सिक्के मिले हैं जिसके कारण उसके सम्बन्ध में संदेह का तनिक भी स्थान नहीं है।

काच गुप्त के अल्पकालीन शासन के पश्चात् चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य ने सिंहासन को सुशोभित किया। इसने कई प्रकार के सोने के सिक्के निर्माण कराए। उसमें तीन तौल के—(अ) १२१ ग्रेन (ब) १२५ ग्रेन (स) १३२ ग्रेन—सिक्के मिलते हैं। पीछे चलकर भारतीय सुवर्ण तौल (१४४ ग्रेन) के भी सिक्के बनाए गए। इस राजा के सिक्के शिल्प कला युक्त हैं। इसमें मौलिकता अधिक है। कुषाणों का अनुकरण कम है और भारतीय पन अधिक दिखलाई पड़ता है। राजा की सुन्दर मूर्ति सजधज देखने योग्य है। हिन्दू रीति के अनुसार लक्ष्मी सिंहासन के बदले कमलासन पर बैठी है।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने छः प्रकार के सोने के सिक्के निर्माण कराए।

(१) धनुर्धरांकित—इस सिक्के को सम्राट ने अधिक प्रचार किया।

अग्रभाग	पृष्ठभाग
धनुषबाण लिए खड़ी राजा की मूर्ति, गरुड़ध्वज, बाएं हाथ के नीचे च और चारों ओर गुप्त लिपि में देव श्री महाराजा धिराज श्री चन्द्र गुप्तः लिखा है।	पद्मासन पर बैठी लक्ष्मी की मूर्ति, राजा की उपाधि श्री विक्रमः' लिखा है।

(नोट) इस तरह के सिक्के में धनुष का स्थान बाण धारण करने का ढंग तथा राजा के नाम अंकित करने की रीति के अनुसार अनेक भेद किए जाते हैं। भरतपुर ढेर में इस विचार से अनेक भेद पाया जाता है। सब से नया ढंग का सिक्का वह है जिसमें राजा का नाम धनुष तथा प्रत्यंचा के मध्य में खुदा है। धनुष पकड़ने की विधि के कारण भी अनेक विभेद किए जाते हैं परन्तु मूलतः सभी एक ढंग के ही हैं। करीब चालीस सिक्के ऐसे भी मिले हैं जिन के पृष्ठभाग में सिंहासन दिखलाई पड़ता है परन्तु अन्य सैकड़ो सिक्कों में लक्ष्मी कमलासन पर ही बैठी है। एक सुवर्ण तौल (१४० ग्रेन) का भी सिक्का तैयार किया गया था।

(२) छत्र वाले सिक्के—

अग्रभाग	पृष्ठभाग
आहुति देते खड़ी राजा की मूर्ति, बाएं हाथ में तलवार, उसके पीछे बौना नौकर छत्र लिए तथा चारो ओर दो प्रकार के लेख खुदे मिलते हैं महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तः अथवा क्षितिमव जित्य सुचरितैः दिवं 'जयति विक्रमादित्यः है।	कमल पर लक्ष्मी की 'खड़ी मूर्ति' बनायी गयी है।

(३) पर्यङ्क वाला सिक्का—

अग्रभाग	पृष्ठभाग
भारतीय वेष में राजा पर्यङ्क पर बैठा है, दाहिने हाथ में कमल है ऐसे सिक्कों पर तीन प्रकार के लेख मिलते हैं।	सिंहासन पर बैठी लक्ष्मी की मूर्ति' और श्रीविक्रमः

(अ) देव श्री महाराजाधिराज श्री.चन्द्र-गुप्तस्य (ब) वही परन्तु पर्यङ्क के नीचे रूपाकृति लिखा है (स) परम भागवत महाराजाधिराज श्रीचन्द्र गुप्तः	या विक्रमादित्य-स्य लिखा है।

(४) सिंह युद्ध वाला—

इसमें राजा की अवस्था सिंह की दशा तथा लेख के कारण भेद पाए जाते हैं। चित्र से राजा के शरीर का गठन तथा बलिष्ट भुजाएं दिखलाई पड़ती हैं। इसके देखने से राजा के आखेट का व्यसन, विद्या तथा कला से प्रेम की सूचना मिलती है। बयाना के सिक्कों में राजा सिंह को कुचलते हुए अथवा युद्ध करते हुए दिखलाया गया है।

अग्रभाग	पृष्ठभाग
उष्णीस तथा अन्य वस्त्राभूषण से सुसज्जित राजा की खड़ी मूर्ति, धनुषबाण से सिंह को मार रहा है। कभी तलवार का चित्र मिलता है। चार प्रकार के लेख	लक्ष्मी सिंह पर बैठी हैं सिंह चन्द्रः या श्रीसिंह विक्रमः या सिंह विक्रमः लिखा है।

(१) नरेन्द्र चन्द्रः प्रथितदिवं जयत्य जेयो भुवि सिंह विक्रमः
(२) नरेन्द्रसिंह चन्द्र गुप्तः पृथिवीं जित्वा दिवं जयति
(३) महाराजाधिराज श्री चन्द्र गुप्तः
(४) देव श्री महाराजाधिराज श्री चन्द्र गुप्तः
खुदे मिलते हैं।

(५) पांचवे प्रकार-अश्वारूढ़ राजा वाला सिक्का को चन्द्र गुप्त द्वितीय ने ही तैयार कराया। इस प्रकार के सिक्के का प्रचार उसके पुत्र कुमार ने अधिक किया।

अग्रभाग	पृष्ठभाग
अश्वारूढ़ राजा की मूर्ति गुप्त लिपि में परमभागवत महाराजाधिराज श्री चन्द्र गुप्तः लिखा है।	आसन पर बैठी कमल लिए देवी की मूर्ति अजित विक्रमः लिखा है

(६) चक्र विक्रम वाला सिक्का

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का छठें प्रकार का एक सिक्का, बयाना ढ़ेर से मिला

है जो सब से विचित्र ढंग का है। इसके देखने से प्रगट होता है कि सम्भवतः भगवान विष्णु विक्रमादित्य को त्रैलोक्य का राज्य भेंट कर रहे हैं। इसमें

अग्रभाग	पृष्ठभाग
गदा युक्त भगवान विष्णु (तीन प्रभामण्डल से युक्त) की आकृति, उसके बायीं ओर (एक प्रभामण्डल युक्त) राजा खड़ा है। विष्णु तीन गोलाकार वस्तु राजा को भेंट कर रहे हैं। कोई लेख नहीं मिलता।	बाएं हाथ में सनाल कमल लिए लक्ष्मी खड़ी हैं। उनके दाएं हाथ के नीचे शंख है। लेख चक्र-विक्रमः पाया जाता है।

इस सिक्के से ज्ञात हो जाता है कि (शंख गदा पद्म आदि युक्त) भगवान विष्णु की उपासना चन्द्रगुप्त द्वितीय करता था।

ऊपर चाँदी के सिक्कों का वर्णन किया जा चुका है। चन्द्रगुप्त

चाँदी के सिक्के द्वितीय ने गुप्त मुद्रा में चाँदी का सब से पहले समावेश किया। क्षत्रपों के अनुकरण के कारण उन पर

अग्रभाग	पृष्ठभाग
राजा के अर्ध शरीर की मूर्ति ब्राह्मी अंक मे तिथि खुदी मिलती है [गुप्त सम्वत् से उस तिथि का सम्बन्ध है]	मध्य में मेरुपर्वत के स्थान पर गरुड़ की आकृति, दो प्रकार के लेख गुप्तलिपि में (१) परम भागवत महा राजाधिराज श्री चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य (२) श्री गुप्त कुलस्य महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त विक्रमांकस्य मिलते हैं।

चन्द्रगुप्त ने ताँबे के सुन्दर सिक्के चलाए थे जिसमें लेख के अनुसार भेद पाए जाते हैं। अग्रभाग की ओर श्री विक्रमः या श्री चन्द्रः या केवल चन्द्र मिलता है। पृष्ठ ओर-गरुड़ का चित्र महाराजा चन्द्रगुप्तः या श्री चन्द्रगुप्तः या चन्द्रगुप्त या केवल गुप्त लिखा मिलता है।

फलक सं० १०

गुप्त सम्राटों में कुमार गुप्त प्रथम का शासन काल सब से समृद्धि शाली मालूम पड़ता है। इसके समय में अनेक प्रकार के सोने के सिक्के सुन्दर रीति से तैयार किये गये जो सब प्रकार से उत्तम समझे जाते हैं।

कुमार गुप्त प्रथम

कला की दृष्टि से भी सिक्कों द्वारा सुन्दर प्रदर्शन किया गया है। ये सिक्के कला की चरम उन्नति को बतलाते हैं। कुमार गुप्त के सिक्कों में अश्वारूढ़ वाला सिक्का अधिक प्रचलित रहा। यह सब सिक्कों से अधिक संख्या में पाया जाता है। बयाना की ढेर से इस तरह के तीन सौ से भी अधिक सिक्के मिले हैं। उस ढेर में कुमारगुप्त प्रथम का अश्वारूढ़ सिक्का ही सब से अधिक संख्या में पाया जाता है। इन सिक्कों के अध्ययन से प्रकट होता है कि कुमार गुप्त को आखेट का बहुत बड़ा शौक था। घोड़े तथा हाथी पर सवार होकर व्याघ्र तथा गैंडा को मारते हुए दिखलाया गया है। कुमार गुप्त प्रथम ने समुद्र की तरह कई सिक्के निकाले जिससे उसके शासन के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। कुमार गुप्त आखेट प्रेमी था, संगीत में अभिरुचि रखता था। अपने शासन काल में उसने अश्वमेध यज्ञ भी किया था।

कुमार गुप्त प्रथम ने एक सुन्दर मोर वाला सिक्का चलाया था जिसके समान कीर्ति वाला कोई दूसरा गुप्त सिक्का नहीं मिला है। अभी तक कुमार द्वारा प्रचलित नव प्रकार के सोने के सिक्कों का पता था परन्तु गत वर्ष बयाना की ढेर से पांच ढंग के नए सिक्के मिले है। यों तो मूल में सब की शैली एक सी है परन्तु कुमार गुप्त के शासन कालीन इतने नए ढंग के सिक्के निकले हैं कि उनके देखने से आश्चर्य होता है। यद्यपि नये सिक्के कम संख्या में मिले हैं तौ भी गुप्त कालीन मुद्रानीति के गौरव को बतलाते हैं। नए सिक्कों में हाथी पर सवार होकर व्याघ्र मारते हुए, गैंडा को मारते हुए तथा वीणा बजाते हुए गुप्त सम्राट की मूर्ति खुदी मिलती है। चन्द्र गुप्त प्रथम की तरह राजा रानी वाला एक नये ढंग का सिक्का कुमार गुप्त प्रथम का मिला है। कुमार गुप्त के सिक्के तौल में १२४-१२६ ग्रेन तक के पाये गये हैं। भरतपुर के ढेर में छः सौ से अधिक सिक्के मिले हैं जो इस राजा के समय में तैयार किये गए थे।

(१) धनुर्धारीकित वाला सिक्का—

विभिन्न तरह से राजा का नाम लिखने अथवा नाम के अभाव के कारण कुमार गुप्त प्रथम के सिक्कों में कई भेद पाया जाता है। नाम लिखने का ढंग एक सा नहीं है। एक स्थान पर 'कुमार' राजा के हाथ के नीचे लिखा मिलता है। दूसरे सिक्कों पर केवल 'कु' लिखा पाया जाता है। तीसरे ढंग में राजा का नाम-

कुमार अथवा कु कुछ भी नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त सिक्कों के अग्रभाग पर पाँच तरह के विभिन्न लेख पाये जाते हैं।

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
धनुर बाण धारण किए हुए राजा की मूर्ति मिलती है तथा निम्न प्रकार के लेख पाये जाते हैं— (१) विजिता वनिर वनि पतिः कुमार गुप्तो दिवं जयति (२) जयति महित लां— (३) परम महाराजाधिराज श्री कुमार गुप्तः (४) महाराजाधिराज श्री कुमार गुप्तः (५) गुणेशो महीतलां जयति कुमार गुप्तः	पद्मासन पर बैठी हाथ में कमल लिए लक्ष्मी की मूर्ति तथा गुप्त लिपि में लेख 'श्री महेन्द्रः' मिलता है।

(२) कृपाण वाला सिक्का

अग्रभाग	पृष्ठभाग
भारतीय वस्त्राभूषण पहने राजा खड़ा आहुति दे रहा है। एक हाथ में तलवार तथा दूसरे में 'गरुड़ध्वज'; लेख-गामवजित्य सुचरितैः कुमार गुप्तलो दिवं जयति राजा के हाथ के नीचे नाम नहीं मिलता जैसा पिछले कृपाण सिक्कों की नकल पर समुद्र गुप्त ने चलाया था ।	पद्मासन पर बैठी लक्ष्मी की मूर्ति, लेख श्रीकुमार गुप्तः

(३) अश्वमेध सिक्का—इसे कुमार ने अश्वमेध यज्ञ के स्मारक में तैयार कराया। समुद्रगुप्त के अश्वमेध सिक्के से इसमें भिन्नता दीख पड़ती है। कुमार के अश्वमेध

सिक्के पर घोड़े का चित्र कई तरह से विभूषित है। इसकी बनावट श्रेष्ठ है। यह सिक्का १२४ ग्रेन तौल में है।

अग्रभाग	पृष्ठभाग
यूप के समीप दाहिनी ओर सुसज्जित घोड़ा (लेख साफ नहीं)	वस्त्राभूषणों से सजी चंवर लिए महिषी की मूर्ति लेख श्री अश्वमेध महेन्द्रः

यद्यपि कुमार गुप्त प्रथम का अश्वमेध सिक्का विरले पाया जाता है परन्तु बयाना की ढेर में इस ढंग के चार सिक्के मिले हैं। उसके देखने से पता लगता है कि कुमार गुप्त ने दो बार अश्वमेध यज्ञ किया था। एक ढङ्ग के सिक्के पर अलंकार से विभूषित घोड़ा यूप के दाहिने खड़ा है पर दूसरे में अग्रभाग की ओर नंगा घोड़ा यूप के बांए खड़ा है। वृत में लेख खुदा है परन्तु केवल कुमार पढ़ा जाता है। अतएव इन दो प्रकार के घोड़े की आकृतियों से अनुमान किया जाता है कि विभिन्न अश्वमेध यज्ञों मे दो प्रकार की मूर्ति खोदी गयी थी।

(४) अश्वारूढ़ वाला सिक्का—लेखों के कारण भेद

अग्रभाग	पृष्ठभाग
घोड़े पर सवार राजा की मूर्ति, धनुष बाण लेख विभिन्न प्रकार के हैं। (१) पृथिवी तलां—दिवं जयत्य जितः (२) क्षिति पति रजितो विजयी महेन्द्र सिंहो दिवं जयति (३) क्षितिपति—कुमार गुप्तो दिवं जयति (४) गुप्त कुल-व्योम शशि जयत्य जेयो जित म३ेन्द्रः (५) गुप्त कुलामल चन्द्रो महेन्द्र क्रमाजितो जयति	कमल हाथ में लिए देवी की मूर्ति बैठी खुदी है।

बयाना ढेर में इसढङ्ग के सिक्के ढाई सौ के लगभग पाए जाते हैं। उनमें गुप्तकुल व्योम शशि का लेख अधिक पाया जाता है। यह बहुत प्रसिद्ध लेख मालूम पड़ता

है। उसके बाद क्षितिपति रजितो का व्यवहार किया गया है। तीसरे गुप्तकुलामल चन्द्रः तथा अंत में पृथ्वीतलाम् का प्रयोग मिलता है। बयाना के सिक्कों में विशेषता यह है कि पृष्ठभाग पर लक्ष्मी मोर को खिलाती हुई दिखलायी गयी है। प्रायः पचास सिक्के ऐसे भी मिले हैं जिनके पृष्ठभाग पर लक्ष्मी सींक की बनी हुई तिपाई (मचिया) पर बैठी है। अग्रभाग में समानता है।

(५) सिंह मारने वाला—लेख के कारण अनेक भेद पाया जाता है।

अग्रभाग	पृष्ठभाग
भारतीय वेप में खर्वी राजा की मूर्ति, सिंह को धनुष बाण से मार रहा है। अनेक प्रकार के लेख (अ) सात्ताद्वि नर्रसिंहों सिंह महेन्द्रो जयन्य निशाम् (ब) क्षितिपति रजित महेन्द्रः कुमार गुप्तो दिवं जयति (स) कुमार गुप्तो विजयी सिंह महेन्द्रो दिवं जयति (द) कुमार गुप्तो युधि सिंह विक्रमः (य) बयाना के ढेर में कुछ ऐसे सिक्के मिले हैं जिन पर कुमार गुप्त भुवि सिंह विक्रमः खुदा है। अन्य सिक्कों पर उपरियुक्त लेख पाए जाते हैं।	सिंह पर बैठी अम्बिका देवी की मूर्ति लेख श्री महेन्द्रसिंह या सिंह महेन्द्रः

(६) व्याघ्र मारने वाला सिक्का—

अग्रभाग	पृष्ठभाग
भारतीय वेप में धनुष बाण द्वारा व्याघ्र को मारते राजा की मूर्ति लेख श्रीमान् व्याघ्र बल पराक्रमः	खड़ी देवी की मूर्ति बाएं हाथ में कमल दाहिने से मोर को फल खिला रही है लेख कुमार कुमारोधिराजा

कुमार गुप्त प्रथम का यह सिक्का अभी तक अलभ्य समझा जाता था। परन्तु वर्तमान बयाना की ढेर से ऐसे व्याघ्र मारने वाले अनेक सिक्के मिले हैं जिन पर राजा के नाम का प्रथम अक्षर कु. लिखा मिलता है।

(७) सातवें प्रकार का मोर वाला सिक्का-

यह सिक्का अत्यंत सुन्दर है। राजा तथा कार्तिकेय का नाम कुमार होने के कारण दोनों ओर राजमूर्ति अंकित है।

अग्रभाग	पृष्ठभाग
वस्त्राभूषण के साथ राजा खड़े होकर मोर को फल खिला रहा है लेख जयति स्वभूमौ गुणराशि महेन्द्र कुमारः।	मोर पर बैठे कार्तिकेय की मूर्ति लेख-महेन्द्र कुमारः

(८) प्रताप नाम वाला सिक्का

अग्रभाग	पृष्ठभाग
बीच में एक पुरुष की मूर्ति दोनों ओर दो स्त्रियां खड़ी हैं श्री पुरुष के बीच (दोनों तरफ मिलाकर) कुमार गुप्त	बैठी देवी की मूर्ति लेख श्री प्रताप

ब्रिटिश म्यूजियम के सिक्के पर इस प्रकार की मूर्तियाँ तथा लेख पाये जाते हैं। मुद्राशास्त्रवेत्ताओं के लिए यह एक समस्या थी। परन्तु बयाना के ढेर से इसी ढङ्ग के सात सिक्के मिले हैं जिनके अध्ययन से कुमार गुप्त के जीवन पर प्रकाश पड़ता है। इस सिक्के के अग्रभाग में दो व्यक्तियों के बीच हाथ जोड़े राजा की मूर्ति है। उनसे वादाविवाद करता हुआ मालूम पड़ता है। इन सिक्कों के पृष्ठ-भाग का लेख स्पष्ट है। उसे अप्रतीघः पढ़ा जाता है। सम्भवतः यह उस परिस्थिति को बतलाता है जब राजा बुद्धधर्म की ओर झुक गया था।

इन सिक्कों के अतिरिक्त भरतपुर के बयाना वाले ढेर से कुमार गुप्त प्रथम के कई नए प्रकार के सिक्के मिले हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार है।

(क) गजारोही सिक्का यह सिक्का अलभ्य समझा जाता है

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
अलंकार से विभूषित हाथी पर	हाथ में कमल लिए खड़ी

सवार राजा की मूर्ति तथा पीछे छत्र लिए नौकर की मूर्ति बनी है गोलाई में कुमार गुप्तः लिखा है।	लक्ष्मी की मूर्ति है।

(ख) गजारोही सिंह मारने वाला

इस सिक्के की बनावट, कला तथा दृश्य में गजारोही सिक्के से समता पायी जाती है परन्तु अन्तर यह है कि अग्रभाग में हाथी पैर तले सिंह पड़ा हुआ है। शेर बातें वैसी ही है।

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
राजा हाथी पर बैठा है। उसके पीछे छत्र ताने महावत है। नीचे सिंह की आकृति है जिसको हाथी पैर से दबा रहा है और वह सिर घुमा कर हाथी के पैर काटने के लिए तत्पर है।	कमलपर लक्ष्मी खड़ी है। उसके दांए ओर पद्म तथा बायीं ओर शंख रक्खा है।

(ग) गैंडा वाला सिक्का-

इस ढंग का कुमारगुप्त का सिक्का सब से प्रथम बयाना की ढ़ेर से प्राप्त हुआ है। यद्यपि इसकी संख्या अधिक नहीं है तथापि कला की दृष्टि से यह अत्यंत सुन्दर है। इसके

अग्रभाग	पृष्ठभाग
घोड़े पर सवार राजा बरछे से गैंडा को मार रहा है। जो घोड़े के पैरों के तले पड़ा है। गैंडा की मूर्ति सिर मोड़ कर मुँह खोले खड़ी है। गैंडा के सींग कान, आँख अत्यंत सजीव दिखलाई पड़ते हैं। लेख-कुमार गुप्तः मिलता है	मकर पर गङ्गा खड़ी हैं और उनके पीछे छत्र लिए एक बालक खड़ा है। लेख पूर्ण नहीं पढ़ा जा सका है

(घ) छत्र वाला सिक्का—

सर्व प्रथम चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने छत्र वाला सिक्का तैयार कराया था। परन्तु कुमार गुप्त प्रथम का कोई भी ऐसा सिक्का भरतपुर के बयाना ढ़ेर से पहले न मिला था। इस ढेर में इस ढंग के सिक्के की संख्या अधिक नहीं है तौभी नया होने के कारण महत्वपूर्ण है। यह सिक्का चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिक्के से मिलता जुलता है। इसके

४
५
६
७
१
२
३
८
९

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
तलवार पर हाथ रक्खे राजा खड़ा है। दाहिने हाथ से अग्नि में आहुति छोड़ रहा है। पीछे बौना छत्र लिए खड़ा है।	दाए हाथ में नाल लिए खड़ी देवी की आकृति पायी जाती है।

(च) वीणांकित सिक्का-

गुप्त कालीन सिक्कों में गत वर्ष से पूर्व वीणांकित सिक्का केवल समुद्र गुप्त के समय का मिलता है। परन्तु नए ढंग में कुमार गुप्त प्रथम का भी वीणा वाला सिक्का मिला है जो राजा के संगीत प्रेम की घोषणा करता है। इसकी बनावट समुद्र गुप्त के सिक्के से मिलती जुलती है।

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
राजा सिंहासन (पर्यंक) पर बैठा है और दाहिने हाथ से वीणा बजा रहा है। बैठने का ढंग तथा वेष भूषा समुद्र गुप्त वाले सिक्के से मिलती जुलती हैं।	सनाल कमल लिए पर्यंक पर बैठी लक्ष्मी की मूर्ति है। लेख श्री कुमार गुप्तः मिलता है। यह आकृति समुद्र गुप्त वाले सिक्के से भिन्न है

(छ) राजा रानी वाला सिक्का

इस ढंग का सिक्का सर्व प्रथम चन्द्रगुप्त प्रथम ने चलाया था। उसे कुमार देवी वाला सिक्का कहते हैं। बयाना की ढेर में कुमार गुप्त का एक ही सिक्का मिला है जिस पर राजा रानी साथ अंकित हैं। अन्तर यह है कि इस सिक्के के अग्रभाग में राजा रानी का नाम नहीं मिलता। रानी राजा को कुछ भेंट करती हुई दिखलाई गयी है। पृष्ठभाग में लक्ष्मी की मूर्ति है। उस ओर लेख श्री कुमार गुप्तः पढ़ा जा सका है पर वह स्पष्ट नहीं है।

(ज) कुमादित्य वाला सिक्का

इस प्रकार का सिक्का अद्वितीय माना जाता है। इस पर किसी राजा का व्यक्तिगत नाम नहीं मिलता है अतएव यह कहना कठिन है कि इसे कुमारगुप्त प्रथम ने चलाया था। स्कन्दगुप्त के सिक्कों पर क्रमादित्य की पदवी मिलती है। अतः यह सम्भव हो सकता है कि बयाना ढेर का यह सिक्का स्कन्द गुप्त ने चलाया हो। इसका एक ही सिक्का मिला है। अग्रभाग में छत्र धारी सेवक (बौना)

के साथ राजा की आकृति मिलती है तथा पृष्ठभाग में खड़ी सनाल कमल लिए लक्ष्मी की मूर्ति तथा लेख क्रमादित्यः पाया जाता है।

यद्यपि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने चाँदी के सिक्के चलाए परन्तु कुमार ने विभिन्न ढङ्ग के अगणित संख्या में सिक्के तैयार कराया था। गुजरात और काठियावाड़ में पिता की तरह परन्तु मध्य प्रदेश में नए ढङ्ग के चाँदी चाँदी के सिक्के के सिक्के प्रचलित किया। ये दोनों पश्चिमी तथा मध्य देशीय के नाम से पुकारे जाते है। कुछ सिक्के विशुद्ध चाँदी के नहीं हैं। ताम्बे पर चाँदी का पानी डाला गया है। राजकोष में चाँदी के कमी के कारण ऐसा सिक्का तैयार किया गया था।

(क) पश्चिमी ढङ्ग का सिक्का

अग्रभाग	पृष्ठभाग
राजा का अर्ध शरीर ब्राह्मी अंक में तिथि	गरुड़ की मूर्ति लेख गुप्त लिपि में "परम भागवत महाराजाधिराज श्री कुमार गुप्तः महेन्द्रा दित्यः" लिखा है।

(ख) मध्यदेशीय सिक्के पर

अग्रभाग	पृष्ठभाग
राजा का अर्ध शरीर ब्राह्मी अंक में तिथि	गरुड़ के बदले पंख फैलाए मोर चारों तरफ विजिता वनिर वनिपतिः कुमार गुप्तो दिव जयति

महाराजाधिराज कुमार गुप्त के बाद उसका पुत्र स्कन्दगुप्त सिंहासन पर बैठा। इस के शासन काल में विदेशी हूणों के आक्रमण से कुछ अशांति हो गयी थी परन्तु स्कन्द ने अपने पितृकुल की राजलक्ष्मी को बचालिया। भितरी के स्तम्भ लेख मे उल्लेख मिलता है कि

पितरि दिवमुपेते विप्लुतां वंश लक्ष्मी
भुजबल विजितारिर्यः प्रतिष्ठाप्य भूमः।

स्कन्द ने राज्य को प्रतिष्ठापित किया। हूण परास्त होकर चुप नहीं बैठे परन्तु कपिशा तथा गान्धार प्रदेश पर अपना राज्य स्थापित कर लिया। बाहरी शत्रुओं के आक्रमण से गुप्त वंश की शक्ति स्कन्द गुप्त के समय में ही क्षीण होने लगी। प्रादेशिक सामंतों ने गुप्त साम्राज्य से

आक्रमण हटने का प्रयत्न शुरू कर दिया जो मध्य भारत के सामान्य राजाओं के ताम्रपत्र से प्रगट होता है। स्कन्दगुप्त के शासन में ही हूणों ने फिर से आक्रमण किया। गुप्त नरेश उसी युद्ध में मारा गया। इसके मरते ही गुजरात तथा सौराष्ट्र गुप्त साम्राज्य से निकल गया। इस ऐतिहासिक विवरण से यह पता लग जाता है कि स्कन्दगुप्त सदा युद्ध की तैयारी में फँसा रहा। अतएव केवल दो प्रकार के सिक्के तैयार करा सका। उसके बाद पश्चिमी प्रदेश में चाँदी के सिक्के भी बंद हो गए। स्कन्दगुप्त कालीन राजनैतिक परिस्थिति का प्रभाव मुद्रा नीति पर भी दिखलाई पड़ता है। इस अंतिम गुप्त सम्राट् ने दो तौल के सिक्के तैयार कराए। पहले का तौल १३२ ग्रेन तथा दूसरे का भारतीय सुवर्ण तौल १४४ ग्रेन था। इससे पूर्व सुवर्ण तौल को किसी ने उपयोग नहीं किया था। इसके सिक्कों में मिश्रण (खराब सोना) पाया जाता है।

(१) धनुर्धरांकित वाला सिक्का-तौल १३२ ग्रेन

अग्रभाग	पृष्ठभाग
धनुष वाण लिए खड़ी राजा की मूर्ति, बाएं हाथ के नीचे तथा स्क- लेख जयति न्द महितलां सुधन्वी तथा गरुडध्वज मिलता है।	पद्मासन पर बैठी तथा कमल लिए लक्ष्मी की मूर्ति लेख 'श्री स्कन्दगुप्तः'

इसी प्रकार का सुवर्ण तौल १४६ ग्रेन

अग्रभाग में लेख	पृष्ठभाग
जयति दिवं श्री क्रमादित्यः	राजा की उपाधि क्रमादित्यः लिखा है।

(२) राज-लक्ष्मी वाला सिक्का

अग्रभाग	पृष्ठभाग
बाईं तरफ वस्त्राभूषण से सुसज्जित धनुर बाण धारी राजा की मूर्ति, दाहिनी ओर कोई देवी हाथ में वस्तु	कमल लिए बैठी देवी की मूर्ति, लेख श्री स्कन्दगुप्तः

लिए खड़ी है। दोनों के
बीच में गरुड़ध्वज है ।

जैसा कहा गया है स्कन्द ने पश्चिमी प्रांतों पर अपना अधिकार जमाए रहा। अपने पूर्व पुरुषों की भाँति पश्चिमी सिक्कों के ढङ्ग पर स्कन्द ने चाँदी के सिक्के तैयार कराए। इन पर अग्रभाग में राजा के आधे शरीर

चाँदी का सिक्का का चित्र पृष्ठ ओर गरुड़ या नन्दि या वेदि की आकृति। लेख-परम भागवत महाराजाधिराज श्री स्कन्दगुप्त क्रमादित्यः खुदा है। मध्यदेशीय सिक्के भी ठीक पहले की तरह हैं।

अग्रभाग	पृष्ठभाग
राजा का चित्र, ब्राह्मी अक्षर में तिथि	पंख फैलाए मोर की आकृति, गुप्तलिपि में लेख वनितावनिवनिपति जयति दिवं स्कन्द गुप्तो याम।

स्कन्दगुप्त के बाद गुप्त साम्राज्य की अवनति शुरू हो गयी। ऐतिहासिक तथ्य सिक्कों के अध्ययन से भी ज्ञात होता है। स्कन्द के सौतेले भाई पुरगुप्त ने

पुरगुप्त थोड़े समय तक राज्य किया। इसके समय से मुद्राकला की अवस्था खराब होने लगी और धीरे धीरे बिगड़ती गई। पुरगुप्त तथा इसके वंशजों ने भारी तौल (सुवर्ण) के सिक्के तैयार कराए। धुरर्धरांकित वाला सिक्का लोक प्रिय था। इन लोगों ने भी ऐसा ही सिक्का प्रचलित किया। अग्रभाग में पुर तथा पृष्ठ ओर श्री विक्रमः लिखा है। चूंकि ये सिक्के १४५ के हैं अतः विक्रमः (समान पदवी) के कारण ये सिक्के द्वितीय चन्द्रगुप्त के नहीं माने जा सकते। ब्रिटिश संग्रहालय में प्रकाशादित्य नाम के सिक्के मौजूद हैं। ये भी सिक्के पुरगुप्त के माने जाते हैं। तौल १४६ ग्रेन है। इस पर

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
अश्वारूढ़ राजा की मूर्ति, तलवार से सिंह को मार रही है। गरुड़ध्वज बना है	बैठी देवी की मूर्ति लेख प्रकाशादित्य,

पुरगुप्त के पुत्र नरसिंह गुप्त ने केवल सोने के सिक्के तैयार किए जो कला की दृष्टि से भद्दे हैं और तौल १४६-१४८ ग्रेन है। इस सिक्के में मिश्रण होने से शुद्ध सोने का अभाव है।

अग्रभाग	पृष्ठभाग
धनुषधारी राजा की मूर्ति हाथ के नीचे न मिलता है	बैठी देवी की मूर्ति, लेख बालादित्य

र

लेख जयति नरसिंह गुप्तः

नरसिंह के बाद इसका पुत्र द्वितीय कुमार गुप्त राज्य का स्वामी हुआ। इसने एक ही प्रकार (धनुर्धरांकित) का सिक्का चलाया। अग्रभाग की ओर राजा की मूर्ति पृष्ठ ओर पद्मासन पर बैठो लक्ष्मी की मूर्ति है। दो प्रकार के लेख मिलते हैं। उसके एक विभाग में वाए हाथ के नीचे कु तथा लेख महाराजाधिराज श्रीकुमार गुप्त क्रमादित्यः और दूसरे विभाग में लक्ष्मी की मूर्ति के साथ 'श्री क्रमादित्यः' लिखा है।

द्वितीय कुमार गुप्त के बाद बुधगुप्त सिंहासन पर बैठा। उसका राज्य उत्तरी बंगाल, मालवा तथा एरण तक विस्तृत था। पश्चिमी भारत गुप्त राज्य से हट गया था। इस कारण सोने के अतिरिक्त वह केवल मध्य देशीय ढंग का चाँदी का सिक्का निकाल सका था। पिछले गुप्त नरेशों के नाम से सिक्के मिलते हैं जिनका समीकरण अभी तक नहीं हो सका है। उनके लेख भी नहीं मिले हैं जिससे कोई ऐतिहासिक तथ्य का पता लगता। परन्तु सिक्कों पर वैन्य गुप्त विष्णु गुप्त जयगुप्त, वीरसेन तथा हरिगुप्त के नाम मिलते हैं। सिक्कों के ढंग से ये गुप्त वंशी मालूम पड़ते हैं। अग्रभाग में बायें हाथों के नीचे नाम तथा पृष्ठ ओर पद्मासन पर बैठी लक्ष्मी की मूर्ति मिलती है। उसी ओर द्वादशादित्यः (तृतीय चन्द्र गुप्त) चन्द्रादित्य. (विष्णु गुप्त की उपाधि) तथा श्रीप्रकाण्डयशः (जयगुप्त की उपाधि) लिखा पाया गया है। यद्यपि ये सिक्के सोने के हैं परन्तु विशुद्ध धातु के नहीं हैं।

गुप्त साम्राज्य के नष्ट होने पर बंगाल में गुप्त सिक्कों के ढंग पर सोने के सिक्के बनते रहे। उनका लेख ठीक तरह पढ़ा नहीं जा सका है। अतएव उन राजाओं के बारे में कुछ निश्चित रूप से कहना कठिन है।

गुप्त सिक्कों का अनुकरण

सम्भवतः वे बङ्गाल के भिन्न भिन्न प्रदेश में शासन करते थे। समाचारदेव तथा छठी सदी के शासक शशांक का भी सोने का सिक्का गुप्तों के सदृश ही है। मध्यदेश में भी चाँदी के सिक्के के ढंग पर विभिन्न राजाओं ने अपने सिक्के बनवाए। मौखरि तथा वर्धन राजाओं ने गुप्त सिक्कों का अनुकरण किया।

गुप्त सिक्कों का वर्णन समाप्त करते हुए यह कहना आवश्यक ज्ञात होता कि गुप्त शासकों ने अधिकतर सोने को ही अपनाया और उसी धातु के सिक्के अधिक संख्या में मिलते हैं। प्रत्येक राजा ने एक नया ढंग निकाला यहाँ तक कि कुमार गुप्त प्रथम के शासन काल में बारह प्रकार के सोनेके सिक्के तैयार किये गए। कुषाण काल से ही इस धातु का (सोना) अधिक व्यवहार होने लगा था। यहाँ तक कि गुप्त काल में चांदी के केवल दो प्रकार (पश्चिमी और मध्यदेशीय) के सिक्के ही तैयार किये जा सके। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि गुप्त कालीन मुद्रानीति तत्कालीन सुदृढ़ आर्थिक अवस्था तथा उन्नत व्यापार की घोषणा करती है। सर्वसाधारण में अधिक सोने के सिक्कों का प्रचार गुप्तकाल की विशेषता को बतलाता है और 'स्वर्णयुग' के नाम को चरितार्थ करता है।

आठवां अध्याय

मध्य कालीन भारतीय सिक्के

(६८८-१२००)

भारतीय इतिहास का मध्यकाल ई० सं० ६०० के बाद आरम्भ होता है। उस समय भारत में अनेक छोटे राज्य स्थापित हो गये थे। कोई भारतीय शासक इतना प्रभावशाली न हो सका जो सब को जीत कर एक छत्रराज्य कायम करने में सफलता प्राप्त कर लेता। आपस में राज्य सीमा के लिए झगड़े सदा होते रहे अतएव मध्यकाल का युग हिन्दू नरेशों के लिए अवनति का समय था। हर्षवर्धन ने एक छत्र राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया था परन्तु उत्तरी भारत की सीमा के बाहर न जा सका। इसके बाद गुर्जर प्रतिहार नरेशों का भी प्रताप सूर्य चमका जिनके प्रभुत्व से मुसलमान आक्रमणकारी भी डरते रहे परन्तु उनका राज्य सारे उत्तरी भारत पर भी विस्तृत न था। विद्रोह तथा अशांति के कारण ही विदेशी आक्रमण होने लगे। सन् ४८० ई० के बाद ही इस अवनति का आभास मिलता है। गुप्तसम्राट् स्कन्द गुप्त के मरने के पश्चात् गुप्त शासक शक्ति हीन हो गये। अपने पैतृक राज्य को सुरक्षित रखने में भी असमर्थ थे। यह स्थिति पिछले गुप्त नरेशों के सिक्कों से भी ज्ञात हो जाती है। स्कन्द गुप्त के बाद भी गुप्त राजाओं ने सुवर्ण ढङ्ग के सोने के सिक्के तैयार कराए थे परंतु वे सभी भद्दे आकार तथा मिश्रितधातु के बनते रहे। चन्द्रगुप्त तृतीय, विष्णु गुप्त वैन्यगुप्त तथा जयगुप्त आदि गुप्त शासकों के सिक्के मिले हैं जिनकी शैली अत्यन्त भद्दी है। उनकी संख्या बहुत कम है तथा प्रचलन भी सीमित ही रहा। ये सभी बातें ऊपर कही बातों की पुष्टि करती हैं और गुप्त शासन की अवनति के द्योतक हैं। किसी प्रकार प्राचीन प्रणाली को पिछले गुप्त नरेशों ने निबाहा और राजा होने के प्रमाद में सिक्के तैयार कराए। उनके चाँदी के सिक्कों का प्रचलन बन्द हो गया यही कारण है कि बुधगुप्त के पश्चात् एक भी चाँदी का सिक्का नहीं मिलता। इस घटना से अनुमान किया जाता है कि पश्चिमी भारत मालवा तथा मध्यप्रांत गुप्त राज्य से पृथक हो गए अथवा उनका प्रभाव जाता रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि पिछले गुप्त नरेशों के समय में ही गुप्तों के विभिन्न प्रांतों में स्थानीय अधिकारी स्वतंत्र हो गए या उन प्रांतों पर किसी अन्य शासक का अधिकार हो

गया। जहाँ तक मुद्रा का सम्बन्ध है बंगाल में उन स्वतंत्र शासकों ने भद्दे ढंग के सिक्के (गुप्तों के अनुकरण) .तैयार कराए । यह कहना आवश्यक है कि गुप्त सम्राटों के सिक्के विभिन्न प्रकार के थे तथा देदीप्यमान होने के कारण आकर्षक थे। उनकी संख्या अलगिनत थी। उन्हें उच्च श्रेणी के कलाकारों ने तैयार किया था। उनके सामने पिछले गुप्त नरेशों तथा बंगाल के सिक्के भद्दे तथा कला विहीन दिखलाई पड़ते हैं। वे सिक्के केवल स्वतंत्रता को दिखलाने के लिए तैयार किए गए थे। ऐसे ही भद्दे, मिश्रितधातु के भारी सिक्के पश्चिमी तथा दक्षिणी पूर्वी बंगाल में स्थानीय शासकों के मिले हैं। बंगाल के बहुत से शासकों ने सिक्के तैयार करने की आवश्यकता न समझी और गुप्तों के अगणित प्रचलित सिक्कों से ही काम चलाया।

गुप्त सीमा के दक्षिणी पश्चिमी भाग में हूणों का राज्य था। जिसके कारण गुप्त शासक अधिक निर्बल सिद्ध हुए। इनकी बढ़ती शक्ति को कोई रोक न सका। मध्य भारत में हूण सरदार तोरमाण ने अपना राज्य स्थापित कर लिया था। ई० स० ५१० में ही भानुगुप्त के परास्त होने पर मालवा मे हूण अधिकार हो गया। गुप्तों के चाँदी के सिक्के तो बन्द हो गए थे परन्तु हूण शासक तोरमाण तथा मिहिरकुल ने गुप्त सिक्कों (चाँदी और ताम्बा) के अनुकरण पर अपनी मुद्रा तैयार करायी थी।

गुप्तों के केन्द्र मगध में पिछले गुप्त नरेशों के बाद मौखरियों का अधिकार हो गया। मौखरि तथा गुप्तों में पारस्परिक झगड़े चलते रहे। परन्तु हर्षवर्धन का उत्तरी भारत पर अधिकार हो जाने के कारण दोनों का प्रभाव मिट गया। जहाँ तक सिक्कों का सम्बन्ध है, अशांतिमय वातावरण के कारण मूल्यवान धातु सोने के सिक्के तैयार करने की क्षमता किसी शासक में न रही। सम्भवतः राजकीय कोष में इतना धन न था या बाहरी व्यापार की अवनति से सोने के सिक्कों की आवश्यकता न समझी गयी। छोटे छोटे राज्य होने के कारण सिक्कों का सीमित प्रचार था जनता की आर्थिक स्थिति ऐसी न रही कि प्रतिदिन के जीवन में सोने से सिक्कों का प्रयोग हो सके। यही कारण है कि मगध से पश्चिमी भाग में चाँदी के सिक्के मिले हैं। कन्नौज के राजा मौखरि, थानेश्वर का शासक वर्धन, वलभी के मैत्रक नरेश तथा मध्य भारत के हूण सरदारों ने गुप्त चाँदी के सिक्कों के ढंग पर मुद्राएँ तैयार करायी। वे सिक्के मध्य भारत के मोर शैली के नक़ल पर बने थे और उनपर तिथियाँ भी मिलती हैं। मिहिर कुल ने सभी ताम्बे के सिक्के चलाए जो सासैनियन शैली के हैं। हूणों की कोई निजी शैली न थी परन्तु उनके सिक्के विभिन्न स्थान में प्रचलित सिक्कों के नकल पर बनते रहे। मिहिर ने उत्तर पश्चिमी

ढंग को ही अपनाया। गुप्तों की अवनति के बाद हूणों की इतनी प्रधानता बनी रही कि वर्धन सम्राट हर्ष भी मुद्रा नीति में प्राचीन शैली तथा सुन्दरता लाने में असमर्थ रहा। सातवीं, आठवीं तथा नवीं शताब्दियों में ससैनियन ढंग के ही सिक्के चलते रहे। उसका ढंग इतना भद्दा था कि उसका ठीक प्रकार तथा वास्तविक रूप भी लोगों के समझ के बाहर हो गया। नवी शताब्दी के बाद चेदि राजा गांगेयदेव की शैली को सभी प्रधान राजाओं—चंदेल, राठौर, तोमर तथा हैहय—ने अनुकरण किया। जिसके अग्रभाग में शासक की आकृति के बदले राजा का नाम तथा पदवी तीन पंक्तियों में लिखा जाने लगा और पृष्ठभाग पर गुप्त सिक्कों की लक्ष्मी को स्थान दिया गया। यह इतना प्रधान ढंग हो गया कि बारहवीं सदी तक मुहम्मद बिन सामने इसी का अनुकरण किया था।

आठवी सदी से पश्चिमी भाग में काबुल के हिन्दू राजा साहीवंश ने गांधार के नन्दि को लेकर एक नयी शैली का समावेश किया जो 'नन्दि तथा घुड़सवार' ढंग से प्रसिद्ध हुआ। इस पर अग्रभाग में घुड़सवार तथा पृष्ठ की ओर नन्दि की आकृतियाँ पायी जाती हैं। वही शैली गन्धार, पंजाब तथा राजपूताना में बारहवीं सदी तक प्रचलित रही। कांगड़ा में १७ वीं सदी तक तथा राजपूताने के राजपूत शासकों ने उसी शैलीको ग्रहण किया। चौहानवंश ने इस शैली को खूब अपनाया। उनके स्थान पर शासन करने वाले मुसलमान सुल्तान भी उसकी उपेक्षा न कर सके। १२ वीं सदी के बाद बलबन ने भी उसी ढंग के सिक्के तैयार कराया था। इस प्रकार मध्य युग में गांगेयदेव चेदि तथा 'नन्दि और घुड़सवार' वाली दो शैलियों का प्रचार था। हिन्दू साही वंश के चलाए सिक्कों का अनुकरण दिल्ली और अजमेर तक होता रहा। मुसलमान विजेता के हाथ में शासन की बागडोर आ जाने पर भी वही शैली सभी को मान्य रही और बलबन तक सुल्तानों ने इसी तरह सिक्के तैयार कराए। पूर्वी भाग में भद्दे गुप्त सिक्कों का ही नकल होता रहा। मध्यभारत से लेकर बंगाल तक मिश्रित सोने के सिक्के चलाए गये। सम्भवतः इस शैली पर मुसलमानों का प्रभाव पड़ गया और गांगेयदेव ने अग्रभाग से शासक की मूर्ति को हटाकर तीन पंक्तियों मे पदवी सहित राजा का नाम लिखवाना आरम्भ कर दिया पर लक्ष्मी की आकृति को न छेड़ा।

हूण एक विदेशी जाति थी जिसने स्कन्द गुप्त के समय में गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण किया था। यह जाति मध्य एशिया से अफगानिस्तान तथा पंजाब को जीतकर गुप्त सीमापर चढ़ आयी। सन् ४८० ई० के बाद

हूण वंश के सिक्के (स्कन्दगुप्त की मृत्यु पश्चात्) इनका राज्य मध्य भारत, मालवा तथा पंजाब में विस्तृत हो गया। स्वतंत्र शासक

होने के नाते हूण सरदारों-तोरमाण तथा मिहिरकुल ने सिक्के तैयार कराए। हूण शासकों ने भारतीय मुद्रा शैली में कोई अपना नया ढंग नहीं आरम्भ किया परन्तु विभिन्न देशों में प्रचलित सिक्कों के ढंग पर अपनी मुद्रा नीति निर्धारित की। जिस देश को जीता वहाँ के प्रचलित सिक्कों का भद्दा अनुकरण ही हूणों ने किया। अतएव उनके नाम से अनेक प्रकार के सिक्के पाँचवी तथा छठीं सदी में प्रचलित पाए जाते हैं। बहुत से सिक्कों पर नाम तक भी नहीं मिलते परन्तु उनके विशेष प्रकार के चिन्ह (जिन्हें एफथलाइट कहते हैं) से सिक्के हूणों के माने जाते हैं।

जब हूण लोगों ने अफगानिस्तान को जीता, उस समय वहाँ शसैनियनवंश का राज्य था और उनके सिक्के प्रचलित थे। शसैनियन ढंग के सिक्कों का वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है। हूण सरदार ने काबुल प्रांत को जीतकर शसैनियन शैली को अपनाया। उनपर

अग्रभाग	पृष्ठभाग
शसैनियन ढंग के भद्दे अर्द्ध शरीर तथा ब्राह्मी के कुछ अक्षर	सिक्के के मध्यमें एक लकीर ब्राह्मी लिपिमें तोर लिखा मिलता है।

तोरमाण के कुछ ऐसे भी सिक्के मिले हैं जिन पर 'शाही जुवुल' लिखा है। ये सिक्के एफथलाइट चिन्ह के कारण ही हूण सिक्के कहे जाते हैं। परन्तु भारतमें आने के कारण उन्होंने पहलवी भाषा के बदले में ब्राह्मी लिपि तथा संस्कृत भाषा का प्रयोग किया। मध्य भारत में उन्होंने चाँदी तथा ताम्बे के सिक्के गुप्त शैली का अनुकरण कर तैयार कराया था। तोरमाण के चाँदी के इस ढंग के सिक्के मिलते हैं। जिनपर

अग्रभाग	पृष्ठभाग
राजा का सिर, तिथि और गुप्त लिपि में 'वजिता वनिरवनिपतिः श्री तोरमाण' लिखा है।	पंखयुक्त मोर की आकृति है।

यह सिक्का मध्य भारत शैली के गुप्त सिक्कों का अक्षरशः अनुकरण है। इसी सिक्के पर हूण सरदार तोरमाण का नाम मिलता है।

तोरमाण के पुत्र मिहिर ने भी इन्हीं शैली के सिक्के प्रचलित किए परन्तु उसके सिक्के सब तांबे के हैं। शसैनियन ढङ्ग के सिक्के सब से छोटे हैं और इन

पर अग्रभाग की ओर वैसी ही पगड़ी तथा सिर है। पृष्ठ ओर अग्नि कुण्ड (यज्ञ देवी) तथा रक्षक दिखलाई पड़ते हैं। इसके दूसरे सिक्के भी मिले हैं जो शसैनियन ढङ्ग के बने हैं परन्तु अग्रभाग में 'श्री मिहिर' का लेख मिलता है और पृष्ठ ओर अग्नि कुण्ड के बदले नन्दि की मूर्ति है। उसके ऊपरी भाग में वृषभ तथा नीचे ' जयतु वृष' लिखा पाया जाता है। सम्भवतः गान्धार में शासन करने के कारण हूण सरदार ने नन्दि को अपनाया। पेशावर के प्रांत में मिहिर के जो सिक्के मिले हैं वह सब कुशाणों के अनुकरण पर तैयार किए गए थे।

अग्रभाग	पृष्ठभाग
राजा की खड़ी मूर्ति तथा 'शाही मिहिर कुल' लिखा है।	सिंहासन पर लक्ष्मी की मूर्ति है।

मिहिर के तीसरे प्रकार के सिक्के सब से बड़े आकार के हैं। ये भी उत्तरी पश्चिमी प्रांत में मिलते हैं।

अग्रभाग	पृष्ठभाग
उनपर आगे की ओर घोड़े पर सवार राजाकी मूर्ति और पिछले भाग में मिहिर कुल अंकित है।	लक्ष्मी की मूर्ति है।

यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि पाँचवी तथा छठी सदियों में मध्य भारत में ये सिक्के (चाँदी तथा ताम्बे के) प्रचलित थे। गुजरात तथा राजपुताना में एक हजार शताब्दी तक एक विचित्र प्रकार के भद्दे ताम्बे के सिक्कों का प्रचार था जिन्हें गधिया पैसा या गधैया कहा जाता था। इन सिक्कों पर भद्दे ढङ्ग की राजा की आकृति मिलती है तथा लेख का अभाव है। पृष्ठ ओर भी अशिष्ट तरीके पर यज्ञदेवी तथा रक्षक के धुंधले चित्र अंकित हैं। ये सिक्के शसैनियन राजा फिरोज के नकल बतलाए जाते हैं। उस ढङ्ग को हूण लोगों ने भारत में प्रचलित किया।

गुप्त साम्राज्य के नष्ट होने पर बंगाल में स्थानीय शासकों ने स्वतंत्रता के सूचक अपने सिक्के तैयार कराये थे। ये सिक्के भद्दे ढंग से तैयार किये गए थे। शुद्ध सोने के स्थान पर मिश्रित धातु के बने हैं और सुवर्ण तौल बंगाल के सिक्के के बराबर हैं। पिछले गुप्त नरेशों के सिक्के बंगाल में प्रचलित थे उन्हीं के अनुकरण पर स्थानीय शासकों ने अपने नाम के सिक्के चलाये। छठी सदी के आरम्भ में ही पश्चिमी बंगाल के कुछ

अधिकारियों ने महाराजाधिरा की पदवी से अपने को विभूषित किया। उनमें समाचारदेव का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसके पिछले गुप्तों के सिक्कों के सदृश सिक्के मिले हैं जिनपर लक्ष्मी की आकृति और नरेन्द्रादित्य लिखा है। दूसरे राजा गोपाल चन्द्र ने भी बर्द्धवान से कोमिल्ला तक शासन किया। इन राजाओं का नाम प्रशस्तियों में भी मिला है। अतएव यह अनुमान किया जाता है कि ये राजा दक्षिणी पूर्वी तथा पश्चिमी बंगाल में छठी सदी के अंत तक शासन करते रहे।

उत्तरी बंगाल गौड़ में उस समय शशांक नामक राजा शासन करता था। मालवा के एक गुप्त सरदार के कहने पर इसने मौखरि राज्य पर आक्रमण कर राज्यवर्धन को मार डाला। शशांक एक प्रतापी राजा था जिसके सिक्के गौड़ से मिले हैं जिनपर उसने अपने धार्मिक चिन्ह को प्रधान स्थान दिया है। वह शैवमत को मानने वाला था और बौद्धों का घोर शत्रु था। उसने गुप्तों के सुवर्ण सिक्कों के ढंग पर सोने का सिक्का चलाया था।

अग्रभाग	पृष्ठभाग
शिव की बैठी मूर्ति, नन्दि के शरीर पर झुका हुआ दाहिना हाथ उठाये अंकित है। चन्द्रमा की आकृति। गुप्त लिपि में दाहिनी ओर श्री श नीचे जय लिखा है।	गज लक्ष्मी कमलासन पर बैठी हैं, हाथ में कमल दोनो तरफ से हाथी पानी फेंक रहे हैं।

सातवीं सदी के मध्य भाग तक गौड़ में शशांक का राज्य था। उसके पश्चात् बहुत समय तक वहाँ अन्धकार सा था। कोई शक्तिशाली शासक न था। हर्ष बर्धन ने गौड़ पर आक्रमण कर बहुत सा भाग अपने अधिकार में कर लिया जिसके बाद कर्ण सुवर्ण (गौड़ की राजधानी) आसाम के राजा के हाथ में चली गयी। आठवीं सदी में कन्नौज के राजा यशोवर्मन तथा काश्मीर नरेश ललितादित्य ने बंगाल पर चढ़ाई की थी। इस प्रकार बंगाल में अराजकता थी। ऐसी परिस्थिति में (किसी स्वतंत्र राजा के अभाव में) सिक्कों के निर्माण का प्रश्न असम्भव था। अंत में पाल वंशी राजाओं ने उस वातावरण में राज्य स्थापित किया। पाल वंश के शासकों ने कन्नौज तक धावा कर उत्तरी भारत का सम्राट बनने का प्रयत्न किया था परन्तु राष्ट्र कूट राजा ने गंगा यमुना के द्वाब से पाल प्रभुत्व को मिटा दिया। नवीं सदी के मध्य में प्रतिहार नाग भट्ट द्वितीय ने हर्ष

की राजधानी (कन्नौज) पर अपना राज्य स्थापित किया जिस कारण पाल नरेशों का शासन उत्तरी बंगाल में ही सीमित रहा। उन पाल राजाओं के सिक्कों का पता अभीतक नहीं लगा है। कुछ विद्वान मध्यकाल में प्राप्त 'श्रीविग्रह' लेख वाले सिक्के को पाल वंशी राजा विग्रह पाल की मुद्रा मानने लगे हैं।

इस अध्याय के आरम्भ में कहा जा चुका है कि गुप्त वंश के अंत होने पर अनेक राज्य स्वतंत्ररूप से शासन करने लगे। गुप्त साम्राटों की राजधानी पाटलिपुत्र की प्रधानता नष्ट हो गयी। उनके बाद हर्ष ही सबसे शक्तिशाली शासक हुआ। उससे पूर्व पिछले गुप्त नरेशों के समकालीन मौखरि वंश ने कन्नौज में ही अपने राज्य की स्थापना की थी। ग्रहवर्मा के मरने पर मौखरि तथा वर्धन राज्यों को मिला दिया गया और थानेश्वर के बदले हर्ष ने कन्नौज को राजधानी बनाया। जिस प्रकार मौर्य काल से गुप्तों तक भारतवर्ष की राजधानी पाटलिपुत्र समझी जाती रही वैसे ही मध्य युग से यानी ६०० ई० से लेकर कई शताब्दियों तक कन्नौज का स्थान था। कन्नौज का शासक ही सबसे प्रधान सम्राट समझा जाता था। यहाँ पर मध्ययुग में मौखरि, वर्धन गुर्जर प्रतिहार तथा गहड़वाल वंश शासन करते रहे। इन वंशों के शासकों ने सिक्के निर्माण कराए। सम्भवतः राजनैतिक अवस्था तथा समाज की आर्थिक परिस्थिति को देख कर इन नरेशों ने अधिकतर चाँदी के सिक्के तैयार कराया था। केवल गहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्र के सोने के सिक्के मिले हैं जिसकी संख्या अधिक नहीं है। प्रायः सिक्कों से पता चलता है कि कन्नौज के राजवंशों का ध्यान इस ओर भी था। उनका वर्णन पृथक पृथक किया जायगा।

कन्नौज के राज वंश

यह कहा गया है कि मध्य भारत में क्षत्रपों की शैली का अनुकरण गुप्तों के सिक्कों पर पाया जाता है। उन पर गुप्त नरेश ने पंख युक्त मोर की आकृति का समावेश किया था। इसी चिह्न को हूण सरदार तोरमाण ने अपनाया था। मौखरि वंश के चांदी के सिक्कों पर भी यही चिह्न मिलता है। उन पर जो तिथियाँ मिलती हैं वे किस सम्वत् से सम्बन्धित हैं यह कहना कठिन है। सभी विद्वान एक मत नहीं हैं। चाँदी के सिक्कों पर तिथियों को पृथक पृथक ढंग से पढ़ा गया है। उदाहरण के लिए मौखरि सिक्कों पर राजाओं की तिथियाँ। ५४, ५५, ५८, ५६, ७१ आदि अंक उल्लिखित हैं। इन अंकों से मौखरि नरेशों का शासनकाल स्थिर नहीं किया जा सकता। कोई इन्हे शक सम्वत् मौखरि सम्वत् तथा कोई गुप्त-

मौखरि-सिक्के

सम्वत्से सम्बन्ध बतलाते हैं। उसी सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि सिक्कों पर सैकड़े के स्थान पर अंक छूट गये हैं। इस विवाद की गहराई में जाना उचित नहीं मालूम पड़ता केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि मौखरि-तिथियाँ मौखरि और हूण सम्वत् दोनों से सम्बन्धित मालूम पड़ती हैं [हूण सम्वत् सन् ४९६ ई० में चलाया गया था जब तोरमाण ने शसैनियन राजा को परास्त किया था] इस मार्ग से राजाओं का शासन काल किसी अंश में सही ज्ञात हो जाता है। मौखरि प्रशस्तियों की सहयता से वह समय ठीक नहीं उतरता है। सारांश यह है कि वर्तमान उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर एक मत नहीं हो सकता और न उनकी तिथियों से अंतिम निर्णय किया जा सकता है। जहाँ तक मौखरि मुद्राओं का कार्य था ईशानवर्मन, सर्ववर्मन तथा अवन्तिवर्मन ने गुप्त शैली पर चाँदी के सिक्के तैयार कराए थे। इस मुद्रा नीति का प्रारम्भ उस समय किया गया जब कि ईशानवर्मन ने आंध्र तथा गौड़ शासकों को परास्त कर मौखरि वंश की प्रतिष्ठा स्थापित की। उस समय उत्तरी भारत (कन्नौज) के प्रधान शासक होने के नाते सिक्कों का निर्माण करना आवश्यक था। उसके बाद सर्ववर्मन ने भी पिता के कार्य को आगे बढ़ाया और हूणों तथा पिछले गुप्त राजा दामोदर गुप्त को हराया। इस तरह मौखरियों की शक्ति बहुत बढ़ गयी और शासकों ने प्रचलित गुप्त सिक्कों की नकल पर अपना सिक्का तैयार कराया था।

गुप्त सम्राटों के पश्चात् हर्ष वर्द्धन की गणना उस श्रेणी में की जाती है जिस राजा ने भारत में एक छत्र साम्राज्य कायम करने का प्रयत्न किया था।

हर्ष वर्द्धन के सिक्के

ईशान मौखरि के समान वर्धन वंश के राजा प्रभाकर के भी सिक्के प्रतापशील के नाम से मिलते हैं। हर्ष वर्धन के सिक्कों पर उसके सम्वत् (हर्ष-सम्वत्) में तिथि का उल्लेख पाया जाता है। हर्ष चरित के वर्णन से पता चलता है कि उसके सिक्कों पर नन्दि का चिह्न अंकित था-वृषाङ्कामभिनव घटितां हाठकमयीं मुद्रा समुपविन्ये। संयुक्त प्रांत के फैजाबाद जिलेमें भिटौरा से सिक्कों का एक ढेर मिला है जिसमें कई राजाओं के सिक्के हैं। मौखरि राजाओं (ईशान वर्मा सर्व वर्मन तथा अवन्ति वर्मन) के अतिरिक्त शिलादित्य राजा के कई सौ सिक्के मिले हैं। इस संख्या से प्रगट होता है कि उस शासक का लम्बा राज्यकाल अवश्य था। चाँदी के सिक्के गुप्त शैली पर तैयार किये गये थे। मौखरि राजाओं के साथ ढेर में शिलादित्य के सिक्के मिले हैं अतएव यह निश्चित है कि ये सिक्के हर्ष वर्द्धन के ही हैं जो शिलादित्य के नाम से तैयार किये गये थे। उन पर खुदी तिथियाँ

हर्षसम्वत् से ही सम्बन्धित हैं। हर्ष के चाँदी के सिक्कों के विषय में इससे अधिक कुछ कहा नहीं जा सकता।

कन्नौज में गुर्जर प्रतिहार ही ऐसे शासक थे जिन्हों ने अपनी शक्ति उस युद्ध के वातावरण में बनाये रक्खी। विद्वानों का मत है कि हूण लोगों के बाद गुर्जर मध्य एशिया से आये। भारत में पश्चिमी द्वार से प्रवेश कर मारवाड़ (जोधपुर) को अपना केन्द्र बनाया। इस वंश में वत्सराज नामक व्यक्ति बहुत प्रतापी शासक हुआ जिसने मध्य राजपूताना के राजा तथा बंगाल के शासक धर्मपाल को जीत लिया था। इसके पश्चात् नागभट्ट ने दूसरी बार पाल नरेश को परास्त कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया। प्रतिहार वंश का सब से प्रभाव शाली तथा शक्ति शाली नरेश मिहिर भोज था जिसने नवीं सदी के मध्य भाग में शासन किया। भारत के मध्यदेश का वही एक शासक था जो हिमालय से नर्वदा तथा उज्जैन से बंगाल तक अपना राज्य विस्तृत कर सका। मिहिर ने अपनी प्रभुता सूचक सिक्के तैयार कराये थे जो अधिक संख्या में मिलते हैं। मारवाड़ मे सिक्कों का एक ढेर मिला है जिसमें ईरान के राजा फिरोज (शासन काल ४५९-४८६ ई०) के सिक्कों की तरह सब सिक्के पाये गये हैं। इनके देखने से ज्ञात होता है कि ये सिक्के पाँचवी सदी के नहीं हो सकते। उन पर किसी प्रकार का लेख नहीं पढ़ा जा सका है। इन सिक्कों के विषय में अनेक मत हैं। कुछ लोगों का कहना है कि हूण सरदारों ने फिरोज के नक़ल पर पश्चिमी राजपूताना में सिक्के प्रचलित किए थे। उन सिक्कों को सूक्ष्म रीति से देखने पर शसैनियन सिक्कों के चिह्न (यज्ञ वेदि तथा दोरक्षक) स्पष्ट मालूम पड़ते हैं। सम्भव है कि मारवाड़ में रह कर गुर्जर नरेशों ने भी शसैनियन शैली को अपनाया हो। मारवाड़ से प्राप्त सिक्के तौल, आकार तथा शैली में शसैनियन सिक्कों से मिलते हैं। मिहिरभोज का भी सिक्का इसी तरह का है। ये सभी सिक्के चाँदी के हैं।

गुर्जर प्रतिहारों के सिक्के

अग्रभाग	पृष्ठभाग
दो पंक्तियों में लेख (१) श्री मदा (२) दि बराह (अक्षर नागरी से मिलते जुलते हैं) लेख के नीचे ऐसा चिह्न है जो शसैनियन यज्ञ कुण्ड के सदृश है।	विष्णु के अवतार बाराह की मूर्ति खड़ी है। सामने सूर्यचक्र दिखलाई पड़ता है।

ये सिक्के 'आदि बराह' शैली के कहे जाते हैं। इसी ढंग के सिक्के दसवीं सदी में

भी प्रचलित थे। उसी भाग (मारवाड़) में चपटे ताँबे के असंख्य सिक्के प्रचलित थे जिनपर न तो राजा के अर्द्ध शरीर का चित्र है और न पीठ की ओर यज्ञकुण्ड ही स्पष्टरूप से बना है। ये गधिया पैसा या सिक्के कहे जाते हैं। दसवी सदी के एक लेख में १३५० बराह द्रम (सिक्के) के दान का वर्णन मिलता है। अतएव यह निर्विवाद है कि 'आदि बराह' शैली के सिक्कों को गुर्जर प्रतिहार वंशी मिहिर भोज ने चलाया था। इस प्रकार के भद्दे ढंग के सिक्के मध्यभारत में ११ वी तथा १२ वीं सदी तक प्रचलित थे। इसके पश्चात् महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल के सोने के सिक्के मिले हैं जो चेदि राजा गांगेयदेव के शैली के समान हैं। कुछ विद्वान इसे तोमर वंशी राजा महीपाल का सिक्का मानते हैं परन्तु राखालदास बनर्जी ने लिपि के आधार पर इसे गुर्जर वंशी सिक्का माना है। चाँदी के सिक्के तोमर वंशी हैं।

उत्तरी भारत में नवी सदी तक गुर्जर प्रतिहार, राष्ट्रकूट तथा पाल वंशी नरेशों में पारस्परिक युद्ध होता रहा। दसवी सदी के आरम्भ में परिस्थिति बदल जाने तथा प्रतिहार शक्ति का ह्रास होने पर बुंदेलखण्ड तथा मध्यप्रांत में नए राज्य उत्पन्न हो गए। जबलपुर के समीप प्रदेश पर कोकल नामक व्यक्ति ने चेदिवंश की स्थापना की। उनकी राजधानी त्रिपुरी थी। इस का सब से प्रतापी राजा गांगेयदेव था जिसने प्रतिहार राज्य के अंत में कांगड़ा से लेकर काशी तक के प्रांत को जीत लिया। उसने विक्रमादित्य की पदवी धारण की थी। गांगेयदेव चेदि ने अपने प्रभाव तथा स्वतंत्रता के सूचक सिक्कों का निर्माणकराया। आर्थिक स्थिति कुछ अच्छी होने के कारण उसने गुप्त राजाओं के सोने के सिक्कों की नक़ल की और हलके द्रम (६२ ग्रेन) के तौल बराबर सिक्कों को तैयार कराया। उनकी बनावट बिल्कुल भद्दी तथा कला रहित है।

मध्य भारत के राज वंश

अग्रभाग	पृष्ठभाग
तीन पंक्तियों में राजा का नाम (१) श्रीमद्गा (२) ग्गेय द (३) व	बैठी लक्ष्मी की मूर्ति। पैर एक के ऊपर दूसरा रक्खा है। इसमें देवी के चारहाथ दिखलाई पड़ते हैं जो गुप्त शैली से भिन्न है।

इसमें केवल लक्ष्मी के चिह्न को गुप्त सिक्के से लिया गया। वरन् न तो शैली, आकार तथा तौल ही गुप्तों के समान हैं। यह 'लक्ष्मी शैली' अथवा गांगेयदेव शैली के नाम से पुकारा जाता है। इसके बाद चंदेल, गहड़वार तथा तोमर

फलक सं० १२

१

६

२

७

३

८

४

५

९

राजाओं ने जो सिक्के चलाये उसमें सभी ने गांगेयदेव का अनुकरण किया था। इसने चाँदी तथा ताँबे के सिक्के भी तैयार कराया था। उसमें कई छोटे तौल के भी सिक्के हैं। अर्द्ध द्रम, पाद (चौथाई द्रम) तथा अर्द्धपाद के सिक्के (७ ग्रेन) मिले हैं। (द्रम वाले सिक्के ५०-६० ग्रेन तौल के होते थे) चाँदी के सिक्के 'नन्दि तथा घुड़सवार' शैली के हैं जिसका जन्म उत्तर पश्चिम में हुआ था। उसके उत्तराधिकारियों ने भी इसी ढंग के सिक्के तैयार किये पर उनके ताँबे के सिक्कों पर घुड़सवार के बदले हनुमान की आकृति अंकित की गयी थी। सभी पर नागरी अक्षरों में राजा का नाम लिखा मिलता है।

नवी सदी में गुर्जर प्रतिहार के सामंत के रूप में चन्देल सरदार बुन्देलखण्ड में शासन करते रहे। परन्तु यशोधर्मन ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। प्रतिहारों का प्रसिद्ध स्थान कालिंजर को इसने जीत लिया। दसवी सदी में चन्देल राजा गण्ड के समय में महमूद ने चन्देलों पर आक्रमण कर ग्वालियर तथा कालिंजर को जीत लिया था। इसी उथल पथल में चेदि वंश का प्रभाव बुन्देलखण्ड तक विस्तृत हो गया परन्तु कीर्तिवर्मदेव चन्देल ने पुनः खोई हुई प्रतिष्ठा को जीवित किया और गांगेयदेव चेदि के प्रभाव को मिटा कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इस विजय के उपलक्ष में सन् १०६० ई० में कीर्तिवर्म देव ने चन्देलों में सबसे प्रथम सिक्का तैयार कराया। इसके सिक्के गांगेयदेव शैली के सदृश हैं। आकार तथा तौल भी एक सा है। मिश्रित सोने के ये सिक्के बने है। चेदि सिक्के की तरह तीन पंक्तियों में लेख अग्रभाग की ओर खुदे हैं और पृष्ठ ओर बैठी लक्ष्मी की मूर्ति है। इसी ढङ्ग के सिक्के उसके उत्तराधिकारियों - मदन - वर्मदेव परमर्दि त्रैलोक्य वर्मदेव तथा वीरवर्मदेव आदि के मिलते हैं कीर्तिवर्मन के पुत्र सलक्षण वर्मन ने भी पिता के सदृश सोने का द्रम तैयार कराया जिस पर उसका नाम हलक्षणवर्मन लिखा मिलता है। इसने ताम्बे का द्रम चन्देलों में सर्वप्रथम निकाला परन्तु उसमें लक्ष्मी के स्थान हनुमान की आकृति पायी जाती है। इस राजा के शासन काल का कोई लेख नहीं पाया गया है अतः विशेष रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

चन्देलों के सिक्के

कीर्तिवर्मन तथा उसके उत्तराधिकारियों ने केवल सोने के सिक्के तैयार कराये थे। पृथ्वी वर्म तथा जयवर्म के केवल ताम्बे के सिक्के (द्रम) मिलते हैं। मदन वर्मन ने गुर्जर तथा चेदि नरेशों को परास्तकर मालवा तथा काशी तक प्रभाव फैलाया। इसके फलस्वरूप उसने सोने चांदी तथा ताम्बे के सिक्के तैयार कराये। सुवर्ण चाँदी तथा ताम्बे के त   के (द्रम, अर्द्ध तथा पाद) के

बराबर सिक्के मिलते हैं। परमर्दि के केवल सोने तथा त्रैलोक्य वर्म के सोने ताम्बे दोनों धातुओं के सिक्के प्राप्त हुए हैं। ये सिक्के बारहवीं सदी तक प्रचलित थे। राठौर वंशी राजपूत राजा गोविन्द चन्द्र ने गांगेयदेव शैली के नकल पर अपने सिक्के तैयार कराया था अन्यथा दूसरे गहरवाल (राठौर) राजाओं ने चांदी के सिक्के तैयार कराए थे।

मध्य युग में उत्तर पश्चिम भारत (पंजाब तथा काश्मीर) में पृथक पृथक राजवंश का शासन था। कुषाण वंश के अंत हो जाने पर अफगानिस्तान (काबुल प्रांत) तथा पंजाब पर शाही उपाधिधारी राजा कई शताब्दियों तक शासन करते रहे। नवी सदी के मध्य में काबुल के शाही विदेशी शासक को हटाकर कल्लर नामक एक ब्राह्मण मंत्री ने अपना अधिकार स्थापित किया। इसे इतिहास में हिन्दू शाही वंश के नाम से पुकारते हैं। इस वंश का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। स्वतंत्र शासक होने के नाते इस वंश के राजाओं ने सिक्के तैयार कराए जो भिन्न भिन्न ढङ्ग के हैं। सिक्कों में 'नन्दि तथा घुड़सवार' 'हाथी और शेर' तथा 'शेर और मोर' की तीन शैलियाँ मिलती हैं। इन सिक्कों के आधार पर शासकों का वर्गीकरण अत्यन्त कठिन है। अलबेरूनी ने सामंतदेव, कमल (कमर) भीमदेव, जयपाल, आनन्दपाल तथा त्रिलोचनपाल के नाम उल्लिखित किया है। राजतरंगिणी में भी हिन्दू शाही शासकों के नाम मिलते हैं। इस वंश के सिक्कों से अलबेरूनी वर्णित राजाओं में समता दिखलाई पड़ती है। हिन्दू शाही राजा ने काबुल से उदभाण्डपुर में अपनी राजधानी परिवर्तित करली फिर भी अफगानिस्तान तथा पंजाब में स्पलपतिदेव तथा सामंतदेव के सिक्के अधिक संख्या मे मिलते हैं जो दसवी सदी के आरम्भ में तैयार किए गए थे। इनके सिक्कों को देख कर यह अनुमान किया जाता है कि हिन्दूशाही ने 'नन्दि तथा घुड़सवार' शैली को सर्वप्रथम आरम्भ किया था। उन पर

पंजाब तथा काश्मीर के सिक्के

अग्रभाग	पृष्ठ ओर
बैठे नन्दि की मूर्ति त्रिशूल का चिन्ह नन्दि के ऊपर लेख श्री स्पलपतिदेव या श्री सामंतदेव	घुड़सवार हाथ में भाला लिए है इस मूर्ति को कवचधारी राजा की मूर्ति मानते हैं।

विद्वानों का मत है कि हिन्दूशाही के प्रतिष्ठापक कल्लर के समय से सिक्कों का आरम्भ हुआ। सम्भवतः स्पलपति या सामंतदेव (समरपति) उसकी उपाधियाँ

थी। जो कुछ भी हो इस स्थान पर केवल सिक्कों से सम्बन्धित बातों की चर्चा आवश्यक है। यह तो निश्चय है कि हिन्दू या ब्राह्मण शाही वंश के शासकों ने चाँदी के सिक्के तैयार कराए जिसमें 'नन्दि तथा घुड़सवार' शैली लोक प्रिय हुई। इसका अनुकरण सभी राजपूत राजाओं ने किया था। इस शैली की उत्पत्ति के विषय में कुछ कहना कठिन है। स्यात् अयस (पह्लव) राजा के सिक्कों से भाव ग्रहण किया गया था अथवा गान्धार से नन्दि चिह्न को लिया गया। स्वयं राजा योद्धा रूप में सिक्कों पर चित्रित किया गया है। इसी विचार से कल्लर ने अपना नाम न देकर सामंतदेव की उपाधि सिक्कों पर खुदवायी थी। चाँदी के सिवाय ताम्बे के सिक्के 'हाथी और शेर' ढङ्ग वाला सामंतदेव के मिलते हैं।

काश्मीर के सिक्के

कारमीर में प्रचलित सिक्कों का ज्ञान वहाँ के इतिहास जानने पर सरल हो जाता है। कारमीर का इतिहास का आधार राजतरंगिनी है। कारमीर के पिछले राज्य वंशों ने ६वी सदी से ताम्बे का सिक्का तैयार कराया था जिनकी तौल ८५-६५ ग्रेन तक मिलती है। परन्तु इससे पूर्व छठी सदी में कुछ शासकों ने सिक्के तैयार कराये थे जो मिश्रित सोने और चाँदी के हैं। तोरमाण नामक राजा ने चाँदी के सिक्के तैयार कराया जो कुषाण शैली के हैं। अग्र भाग में खड़े राजा की मूर्ति तथा ब्राह्मी लिपि में लेख मिलता है और पृष्ठ ओर गुप्त ढङ्ग की लक्ष्मी की मूर्ति पायी जाती है। अभी तक यह निश्चय न हो सका है कि यह तोरमाण कौन था। इसे हूण सरदार मानने में अनेक आपत्तियाँ है। सातवीं सदी में प्रतापादित्य नामक राजा के कुषाण ढंग के मिश्रत धातु (सोने) के सिक्के मिलते हैं। उनकी तौल भी कुषाण सिक्कों (१२० ग्रेन) के लगभग मिलती है। इसी प्रकार के अन्य सिक्के मिले हैं जिनपर यशोवर्मन का नाम पाया जाता है। दोनों राजाओं का एकीकरण विवाद ग्रस्त विषय है। इसी तौल तथा कुषाण शैली के ताम्बे के भी सिक्के मिले हैं जिन पर विनयादित्य का लेख अंकित है। विद्वानों का मत है कि आठवीं सदी के कारमीर राजा जयापीड़ ने इन सिक्कों का निर्माण कर अपनी पदवी (विनयादित्य) का उनपर उल्लेख कराया था।

नवी सदी से कारमीर में उत्पल वंश का शासन आरम्भ हुआ। इस वंश के राजाओं ने ताम्बे के अनगिनत सिक्के तैयार कराए उन्होंने कुषाण शैली को त्याग दिया था परन्तु उन्हीं चिन्हों के साथ सिक्के चलाए। लेख दोनों ओर विभक्त मिलते हैं।

मिले हैं जिसमें गांगेयदेव की शैली का अनुकरण किया गया है। इन सब की एक विशेषता है कि राजपूत सिक्कों की तौल 'नन्दि तथा घुड़सवार' वाले सिक्कों से घटकर है। सम्भवतः उन राजाओं ने प्राचीन आहत (पंचमार्क) सिक्कों की तौल को ध्यान में रखकर ३२ रत्ती या ५८ ग्रेन के तौल के बराबर सभी धातुओं के सिक्के तैयार किये। ये द्रम के नाम से प्रसिद्ध थे। अजमेर दिल्ली के तोमर राजा —सल्लक्षणपाल, कुमार पालदेव, अनङ्गपाल तथा महीपाल ने इसी तौल के बराबर अपना सिक्का तैयार कराया था। कुमारपाल के सोने के सिक्के गांगेयदेव चेदि की शैली के सदृश मिले हैं। अग्रभाग में तीन पंक्तियों में लेख तथा पृष्ठ ओर बैठी लक्ष्मी की मूर्ति है। तोमर राजा अनङ्गपाल ने 'नन्दि और घुड़सवार' ढङ्ग को अपनाया और बहुत से ताम्बे के द्रम निकलवाए। एग्यारहवीं सदी तक तोमर के सिक्के उत्तरी भारत में चलते रहे और मुसलमान लेखकों ने इन्हीं मिश्रित धातु के सिक्के को दिल्लीवाल कहा है। इसी 'नन्दि तथा घुड़सवार' शैली को मुसलमान राजाओं ने अपनाया।

कन्नौज में प्रतिहार के बाद राठौर वंश का शासन आरम्भ हुआ। बारहवीं सदी में उस वंश का सब से प्रतापी राजा गोविन्द चन्द्रदेव हो गया है। इसके सोने के द्रम उत्तरी भारत में सैकड़ों की संख्या में पाए जाते हैं। इससे पूर्व राठौर राजा मदनपाल के चाँदी तथा ताम्बे के सिक्के भी मिले हैं जिनपर 'नन्दि तथा घुड़सवार' का चिन्ह वर्तमान है। शाही वंश के इस शैली को सभी ने अपनाया परन्तु केवल गोविन्द चन्द्रदेव ने सोने का द्रम तैयार कराया था। ये सिक्के गांगेय-देव शैली के हैं। सम्भवतः गोविन्द चन्द्रदेव उसकाल में एक मात्र शासक था जिसके प्रभाव सूचक सुवर्ण मुद्रा तैयार की गयी थी। इस सिक्के में गुप्त शैली का अनुकरण तो था परन्तु उसमें चतुर्भुजी देवी की आकृति होने से थोड़ी सी भिन्नता आ गयी है। इन्हीं के समकालीन दिल्ली तथा साँभर के चौहान शासकों ने भी ताम्बे के द्रम चलाए। साँभर से जाकर विग्रहराज ने दिल्ली को जीत लिया था। चौहान वंश का सबसे प्रतापी राजा राय पिथौरा था जिसे मुसलमान लेखक पृथ्वीराज (तीसरे) के नाम से पुकारते हैं। सोमेश्वर देव तथा पृथ्वीराज (पिता और पुत्र) दोनों चौहान नरेशों ने 'नन्दि तथा घुड़सवार' शैली के अनुकरण पर सिक्के तैयार किये। सोमेश्वर देव ने ताम्बा तथा पृथ्वी राज ने चाँदी के द्रम तैयार कराये। सिक्कों के दोनों तरफ राजाओं के नाम मिलते हैं। इनके अतिरिक्त राजपूताने तथा दिल्ली के समीप शाही ढङ्ग तथा किदार कुशाण ढङ्ग के भद्दे व अशिष्ट सिक्के बहुत समय तक प्रचलित रहे।

१

६

२

७

३

४

८

५

९
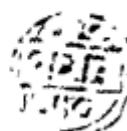
नवाँ अध्याय

दक्षिण भारत के सिक्के

भारतवर्ष का वह भूभाग जो नर्बदा नदी के दक्षिण में स्थित है उसे दक्षिणा-पथ अथवा दक्षिण भारत के नाम से पुकारा जाता है। भौगोलिक दृष्टि से विंध्या के दक्षिण भारतीय प्रायद्वीप को दक्षिणी भारत कहा गया है। बहुत समय तक इस भाग का इतिहास अंधकारमय रहा परन्तु ब्राह्मण युग के बाद ऋषियों ने दक्षिण भारत में आर्य सभ्यता का प्रचार किया और उसी समय से उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में आवागमन जारी हो गया। अशोक के लेखों से पता लगता है कि ईसा पूर्व तीसरी सदी में मौर्य शासन मैसूर तक फैल गया था। उसके लेखों में सुदूर दक्षिण में स्थित चोल, पांड्य तथा केरलपुत्र राज्यों का उल्लेख पाया जाता है। इस प्रकार ईसा पूर्व शताब्दियों से दोनों भागों में राजनैतिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध प्रारम्भ हो गये थे। इसके कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि उस भाग में किसी प्रकार की संस्कृति का अभाव था। द्राविड लोगों की एक विशिष्ट सभ्यता थी जिसका वहाँ प्रचार था। पीछे चलकर ईसवी सन् की शताब्दियों में दक्षिण के लोगों ने एशिया के विभिन्न देशों में अपना सिक्का जमाया। अपने प्रभाव तथा व्यापारिक सम्बन्ध से पूर्वी द्वीप समूह तथा हिन्द-चीन में दक्षिण भारत के लोगों ने उपनिवेश बनाये तथा भारतीय सभ्यता को वहाँ फैलाया।

जहाँ तक राजनैतिक इतिहास का परिज्ञान किया जाता है मौर्य लोगों के बाद सातवाहन वंश ने कई सौ वर्षों तक शासन किया। वास्तव में दक्षिण भारत के पठारी भाग में ईसवी सन् की छठी सदी से प्रधान राज्यवंशों का शासन आरम्भ होता है जिसमें चालुक्य, राष्ट्रकूट, यादव, कदम्ब, होयसल तथा विजयनगर का नाम गिनाया जा सकता है। परन्तु कृष्णा नदी से सुदूर दक्षिण में पल्लव चोल, पांड्य आदि नरेश पहले से ही राज्य करते चले आ रहे थे। यद्यपि ईसा पूर्व सदियों में इनका उल्लेख स्थान स्थान पर पाया जाता है परन्तु मध्ययुग (ई० स० ६००) के बाद ही इनके विस्तृत इतिहास का पता लगता है तथा विभिन्न क्षेत्रों में इन शासकों के कार्यों का अच्छी प्रकार अध्ययन किया गया है।

दक्षिण भारत के सिक्कों का अध्ययन ही ऐतिहासिकों के लिए बिना मूल्य का विषय बन जाता है। इस भाग में प्रचलित प्राचीन सिक्के अलभ्य हैं और जो

सिक्के मिलते हैं उनसे इतिहास के ज्ञान वृद्धि में अधिक सहायता नहीं मिलती है। यह तो सभी को मालूम है कि भारत के प्राचीन इतिहास की जानकारी में सिक्कों से अमूल्य सहायता मिलती और इसी कारण भारतीय सिक्के एक प्रधान साधन माने गये हैं। परन्तु ये सारी बातें उत्तरी भारत के लिए चरितार्थ होती हैं। वर्तमान अवस्था में दक्षिण के भारतीय सिक्कों से इतिहास का अध्ययन प्रारम्भ हो गया है। प्राचीन विषयों की जानकारी में उनकी सहायता नहीं के बराबर है। दक्षिण भारत में जो पुराने सिक्के मिले हैं वे आकार के इतने छोटे हैं और तौल में दो ग्रेन के बराबर हैं कि उन पर खुदे अक्षर पढ़े नहीं जा सकते। अधिकतर सिक्कों पर लेख का अभाव रहता है। उन पर खुदी आकृति साफ नहीं हैं। पिछले मुसलमान सिक्को के अतिरिक्त तिथि का उल्लेख तो कहीं पाया नहीं जाता है। उत्तर भारत की तरह प्राचीन काल में दक्षिणापथ मे भी पुराण (पंचमार्क सिक्के) का प्रचार था। उत्तरी भारत में तो इन सिक्के के बाद मुद्रा नीति में क्रमशः उन्नति होती गयी और अच्छे तथा कला पूर्ण सिक्के बनने लगे। परन्तु दक्षिण भारत में पंचमार्क सिक्कों का प्रचलन यकायक बन्द हो गया। किस तरह तथा किस सदी मे इसका चलना या बनना समाप्त हो गया यह कहना कठिन है। उस भूभाग में पुराण स्थान का कोई सिक्कों न ले सका। कुछ ठप्पे से तैयार पंचमार्क सिक्के उत्तर मे दक्षिण भारत में पहुँच गये थे परन्तु उनका भविष्य अन्धकारमय रहा। कोयम्बटूर नामक नगर में रोम सिक्कों के साथ पंचमार्क मिले हैं जिससे प्रगट होता है कि ई० स० २०० में इनका प्रचार समाप्त हो गया था। इसका कारण यह है कि दक्षिण भारत मुद्रानीति में उन्नति न कर सका। सम्भवतः तीसरी शताब्दी के बाद इस मार्ग मे दक्षिण और उत्तर भारत से सर्वथा सम्बन्ध न रहा। सातवाहन युग में जो सिक्के प्रचलित थे उनका वर्णन किया गया है। परन्तु इस अध्याय में मध्य युग के बाद प्रचलित सिक्कों का वर्णन किया जायगा।

दक्षिण भारत में सोना तथा ताम्बा धातु का प्रयोग सिक्कों के लिए होता रहा। तीसरी सदी के बाद दक्षिण भारत से रोम का व्यापार अधिक बढ़ गया था। यहाँ तक कि दक्षिणापथ में रोम के सोने के सिक्के सर्वत्र प्रचलित हो गए थे। सम्भवतः रोम के सम्बन्ध मे अथवा दक्षिण में सोने की खान के कारण चाँदी के स्थान पर इसी धातु को अपनाया गया। दक्षिण भारत में भी कुछ चिपटे पंच चिह्नों से युक्त सोने के सिक्के उपलब्ध हुए हैं जो अलभ्य हैं और तौल में ५२ ग्रेन के बराबर हैं। उत्तर भारत की तरह दक्षिण में भी सिक्के बीज के तौल पर निश्चित किए जाते थे। दक्षिण में कलंजु नाम वाले बीज से तौलकर ५० ग्रेन के बराबर सिक्के तैयार किए जाते रहे। इस तौल के सिक्के हून, वराह अथवा

पगोद नाम से प्रसिद्ध थे। पगोद शब्द का समावेश तो पुर्तगाली लोगों ने किया था परन्तु इस पगोद का प्रयोग दक्षिण भारत के सोने के सिक्के के लिए क्यों किया गया यह बात अज्ञात सी है। वराह तो चालुक्य सिक्कों पर बाराह चिह्न के कारण प्रसिद्ध हो गया। इन कन्नड़ भाषा में अर्द्ध पगोद के लिए प्रयोग किया जाता है। इस तरह तीनों नाम ४०—६० ग्रेन तक के सिक्कों के लिए प्रचलित हो गये। पगोद के दसवेंभाग वाले सिक्के को फणम कहते हैं जो ब्राह्मणों को दान देने के लिए प्रयोग किए जाते थे। सम्भवतः यह शब्द उत्तरी भारत के पण का भ्रष्ट रूप है। पण से फण बना और इसमें दक्षिण की विभक्ति देकर फणम बना दिया गया। दक्षिण भारत में स्वतंत्र रूप से सोने के सिक्के का जन्म हुआ। इन पर प्रारम्भ में एक ओर चिह्न खोदे जाते थे जिन्होंने क्रमशः दोनों ओर स्थान प्राप्त कर लिया। सोलहवीं सदी में यही पगोद सिक्के ठप्पे द्वारा तैयार होने लगे। यह विशेषता स्थायी हो गयी जिससे सिक्के सदा छोटे आकार के बनते रहे। कहने का सारांश यह है कि दक्षिण में आहत तथा ठप्पे दो रीति से सिक्के बनाए जाते थे।

दक्षिण भारत के पुराने सिक्कों में सर्वप्रथम चालुक्य वंशी सिक्कों ने विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। मध्ययुग के दक्षिण राज्य वंशों में चालुक्यों का प्रथम स्थान है जिनके शासन काल में ईरान के बादशाह खुशरु द्वितीय ने राजदूत भेजा था। इस वंश ने पश्चिमी तथा पूर्वी शाखा में विभक्त होकर क्रमशः बातापी तथा वेंगी में शासन किया। इसी वंश के सिक्के पर बाराह की आकृति होने के कारण दक्षिण भारत के सोने के सिक्के वराह नाम से विख्यात हुए। समयान्तर में योरप के व्यापारियों ने इन्हें पगोद नाम से प्रसिद्ध किया। चालुक्य सिक्के प्याले के आकार के मिले हैं जिन पर एक ओर बाराह की आकृति है और कुछ चिह्न बने हैं। दूसरी ओर खाली है। सम्भवतः ये सिक्के ठप्पे से तैयार किए गए थे। १२ वीं सदी में पश्चिमी शाखा के शासक जयसिंह तथा त्रैलोक्य मल्ल ने सिंह को स्थान दिया था। उनसे पूर्व शासन करने वाले कदम्ब राजाओं ने कमल के चिह्न को अपने सिक्कों पर खुदवाया था अतएव प्याले के आकार वाले सिक्के पद्म टंका के नाम से पुकारे जाते हैं। पश्चिमी चालुक्यों के स्थान पर राज्य करने वाले होयसल नरेशों ने वहाँ प्रचलित सिंह के चिह्न को अपनाया तथा कन्नड़ भाषा में लेख भी खुदवाए। १२ वीं सदी के पश्चात् दक्षिण के पठार में अनेक प्रकार के पगोद प्रचलित थे जिन्हें विभिन्न वंशों से सम्बन्ध बतलाया जाता है। उन पर नन्दि, गरुड़ या मनुष्य की आकृति खुदी है और पृष्ठ ओर कन्नड़ भाषा में उपाधि सहित राजा का नाम लिखा है। उनकी कोई विशेषता न होने के कारण विस्तृत विवरण आवश्यक नहीं प्रतीत होता। इसी भाग से आकर अनन्तवर्मन नामक व्यक्ति ने उड़ीसामें राज्य स्थापित किया था। अतएव उड़ीसामें

नन्दि की आकृति सिक्कों पर मिलती है। वहाँ के राजाओं के सिक्कों पर तिथियाँ राज्यवर्ष में पायी जाती हैं।

जैसा कहा गया है कि सुदूर तामिल प्रदेश में तीन राजा शासन करते थे। पांड्य मदुरा प्रदेश में, चोल पूर्वी तटपर (चोल मण्डल) तथा केरल राज्य मालावार कोचीन तथा ट्रावनकोर के प्रदेश पर विस्तृत था। ये विदेशी व्यापार के कारण अत्यन्त समृद्ध शाली थे। यद्यपि अत्यन्त प्राचीन कालीन इतिहास धुंधला सा है परन्तु मध्य युग से इनके इतिहास तथा शासन प्रबन्ध का अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त होता है। छठीं सदी से दक्षिण भारत में पल्लव वंश का राज्य स्थापित हो गया था जिसने तीन सौ वर्षों तक शासन किया। नवीं सदी में चालुक्य तथा पांड्य और चोल ने मिलकर पल्लव नरेश को पृथक पृथक हराया। पल्लव वंश के सिक्के आंध्र सिक्कों के अनुकरण पर तैयार किये गए थे। पल्लव पगोद तथा फनम पर शेर की आकृति पायी जाती है।. पाँड्य नरेशों ने अपने जीवन काल में दो प्रकार के सिक्के प्रचलित किए थे। सर्व प्रथम वे स्वतंत्र शासक के रूप में राज्य करते रहे परन्तु सातवीं सदी के बाद पल्लवों के नायक के रूप में कार्य किया। ९वीं सदी में पुनः स्वतंत्र होकर पांड्य लोगों ने सिर उठाया था कि चोल नरेश के द्वारा परास्त किए गए और सामंत के रूप में समय व्यतीत करने लगे। १३ वीं सदी में पांड्य लोगों का भाग्य चमका और वे तामिल प्रांत के प्रधान शासक हो गए। ऐसी परिस्थिति में उनकी मुद्रानीति एक सी न रही। सर्व से प्रथम पांड्य सिक्के वर्गाकार और ठप्पे द्वारा तैयार किये जाते थे। अग्र-भाग में हाथी की आकृति मिलती है और पृष्ठभाग खाली रहता है। सातवी सदी के बाद पांड्य सोने तथा ताम्बे के सिक्कों पर मछली का चिन्ह पाया जाता है जिसे सभी सामंतों ने अपनाया था। तामिल भाषा में 'चोल के विजेता' अथवा 'संसार के मुख्य' आदि वाक्यों में लेख पाया जाता है। दसवी सदी में चोल वंश की प्रधानता थी। चोल राजराज के समय में वह वंश बहुत उन्नत कर गया था और सारे दक्षिण तथा लंका तक इसका राज्य विस्तृत हो गया। चोल वंश के सोने के सिक्कों पर बैठे शेर तथा मछली की आकृतियाँ खुदी मिलती हैं। राज-राज के ताम्बे के सिक्कों पर अग्रभाग में खड़े मनुष्य की तथा पृष्ठ ओर बैठे व्यक्ति मूर्ति दिखलाई पड़ती है। नागरी में राजराज का नाम खुदा है। इस शैली का इतना अधिक प्रचार हुआ कि मदुरा के नायक शासकों ने तथा लंका के राजा ने इसी ढङ्ग के सिक्कों का अनुकरण किया।

यह कहा जा चुका है कि १३ वीं सदी तक दक्षिण में पांड्य लोगों की प्रधानता थी। उत्तरी भारत में खिलजी सुलतान अलाउद्दीन राज्य करता था। सन्

१३११ में उसी के सेनापति काफूर ने दक्षिण पर आक्रमण किया और असंख्य सोना लूट कर ले आया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि बहुत पहले से सोने के ही सिक्के वहाँ प्रचलित थे। उस विजय के बाद मदुरा में मुसलमान रियासत कायम हो गयी थी जो अधिक समय तक स्थायी न रह सकी और विजय नगर नामक हिन्दू राज्य में सम्मिलित कर ली गयी। विजय नगर के राजा दक्षिण भारत में हिन्दू संस्कृति के रक्षक थे यही कारण है कि इनके चलाए गए सिक्कों का सर्वत्र प्रचार हुआ। दक्षिण भारत में बहुत समय तक उसी ढङ्ग के सिक्के विभिन्न शासकों द्वारा बनते रहे। उनका अधिक प्रभाव पड़ा। पगोद, अर्द्ध पगोद तथा चतुर्थ पगोद के बराबर सिक्के प्रचलित हुए। उस वंश में बारह नरेशों ने सिक्के चलाए जिन पर नन्दि तथा हाथी की आकृतियाँ अधिकतर मिलती हैं। विभिन्न राजाओं के शासन काल में प्रचलित पगोद पृथक पृथक नाम से प्रसिद्ध हुए तथा उन पर अलग अलग आकृति खुदी है। उदाहरणार्थ हरिहर प्रथम के सिक्के पर बैठे देवी देवता की मूर्तियाँ और राम राय के सिक्के पर विष्णु की आकृति खुदी मिलती है। कृष्ण राय के सिक्के पर भगवान विष्णु शंख चक्र लिए दिखलाए गये हैं। इसके अर्द्ध पगोद सिक्के पर जिसका तौल २६ ग्रेन है

अग्रभाग	पृष्ठभाग
शंख चक्र लिए बैठे विष्णु की मूर्ति बनी है।	नागरी अक्षर में राजा का नाम श्री प्रताप कृष्णराय लिखा है।

इस प्रकार विजय नगर सिक्कों पर कन्नड़ अथवा नागरी में लेख लिखा मिलता है। विजय नगर के राजा तिरुमल्लराय ने एक विचित्र सिक्का तैयार कराया था जिसकी तौल पगोद के चौथाई भाग के बराबर है तथा व्यास में १'२५ इंच है। इसे छोटे होने के कारण रामटंकी कहते हैं। इस पर राम सीता लक्ष्मण तथा हनुमान की आकृतियाँ हैं। यह ढङ्ग इतना प्रसिद्ध हो गया कि पिछले शासकों ने इसका अनुकरण किया। उड़ीसा के शासकों ने भी इसे अपने राज्य में समावेश किया परन्तु १८७-१६३ ग्रेन के बराबर तौल में रामटंकी को तैयार कराया था। उनमें से कुछ इतने भारी थे कि दक्षिण भारत के मंदिरों में देवमूर्ति के स्थान पर स्वामी लोग रामटंकी को ही पूजा के लिए प्रयोग करने लगे।

विजय नगर राज्य के नष्ट हो जाने पर तंजौर और मदुरा के नायक राजाओं ने ताम्बे के ऐसे सिक्के चलाना आरम्भ किया जिस के अग्रभाग पर हनुमान गणेश, नन्दि सूर्य अथवा चन्द्र की आकृति मिलती है और पृष्ठ भाग पर तामिल में राजा का नाम खुदा है। इस तरह स्वतंत्र रियासतों ने अपना मुद्रा चलाना शुरू कर दिया। हैदरअली के समय से दक्षिण

में सिक्कों के पृष्ठ पर तिथि तथा वर्ष फारसी में लिखा जाने लगा। उनके शैली में कोई भेद नहीं पाया जाता। दक्षिण में योरप के विभिन्न कम्पनी के कर्मचारियों ने विजयनगर शैली को अपनाया था। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने रामटंकी के तरह सिक्के चलाए। डच लोगों ने वेंकटपति पगोद का अनुकरण किया। निजाम हैदराबाद तथा करनाटक के नवाब ने भी प्रचलित शैली को अपनाया था। मालाबार तथा त्रावनकोर में के सिक्के दक्षिण के अन्य सिक्कों से कुछ भिन्न हैं। वे सिक्के अधिकतर चाँदी के बने थे जो दक्षिण भारत के लिए नयी बात थी। उन पर शंख की आकृति मिलती है। विदेशियों ने भी शंख चिह्न वाले सिक्कों को प्रचलित किया था। पठार के कुछ शासकों ने मुगल बादशाह मुहम्मद शाह तथा आलमगीर के नाम के साथ ताम्बे के सिक्के अथवा फनम को मुद्रित कराया और फारसी में लेख खुदवाया। कुछ फनम पर अग्रभाग में नागरी में 'श्री राजा शिव' तथा पृष्ठ ओर छत्रपति लिखा मिलता है। इस लेख से स्पष्ट हो जाना है कि महाराज शिवाजी ने सिक्के बनवाए थे। इस वर्णन से प्रगट होता है कि दक्षिण में पगोद तथा फनम ने अपना स्थान बनाए रक्खा। उत्तर भारत की तरह उनकी शैली, बनावट के प्रकार तथा तौल में बहुत कम भेद पाया जाता है। १८ वीं सदी के बाद योरप की कम्पनियों ने अपना प्रभुत्व जमा कर दक्षिण भारत की आर्थिक नीति को अपने हाथ में कर लिया और अंत में सिक्कों में परिवर्तन ला दिया जिसका वर्णन अगले पृष्ठों में किया जायगा।

दसवां अध्याय

भारत में मुसलमान शासक

मुद्राशास्त्र के जानने वालों से यह बात छिपी नहीं है कि सिक्के राजा के प्रभुत्व को बतलाते हैं तथा शासक के स्वतंत्रता के चिह्न समझे जाते हैं। देश को जीतकर विजेता जनता में अपने प्रभुता की घोषणा नए सिक्कों के प्रचार से करते रहे हैं। हिन्दू शासन के पश्चात् मुसलमान विजेताओं ने ऐसा ही किया। सिक्कों के प्रचलन की वार्ता राजनैतिक इतिहास से घनिष्ट सम्बन्ध रखती है। इसी कारण से मुस्लिम सिक्कों के वर्णन से पूर्व उनके शासन और राजनैतिक जीवन का ज्ञान रखना आवश्यक है। मध्यकालीन युग में हिन्दू राज्यों की अवनति के बाद इस्लाम मतानुयायियों ने भारतवर्ष में अपना राज्य स्थापित किया। अरब में इस्लाम मत के प्रसार हो जाने पर वहाँ के निवासियों ने धर्म प्रचार के लिए चारों तरफ धावा किया। उनकी आँख भारत के धन तथा वैभव की ओर पहले से लगी थी। धर्म के नाम पर उतावले होकर समुद्र से भारत पर आक्रमण शुरू कर दिया। सन् ६३७ ई० में सर्व प्रथम बम्बई के समीप थाना नामक स्थान पर अरब वाले पहुँच गए। दूसरी बार सिन्ध के किनारे उन्होंने सेना उतारी। इस तरह सातवी सदी के मध्य तक सिन्ध जीतकर दक्षिणी अफगानिस्तान में राज्य स्थापित कर लिया। पश्चिमी भारत में सिन्ध तथा मुल्तान में उनकी दो रियासतें कायम हो गयी। उत्तरी पश्चिमी भारत हिन्दू शाही राजाओं के हाथ में था। सिन्ध की घाटी में अधिकार कर अरब वालों ने आगे बढ़ने का विचार त्यागा न था परन्तु विवश होकर उन्हें शांत रहना पड़ा। मुहम्मद बिन-कासिम ने गुजरात तथा मारवाड़ के प्रदेशों पर धावा किया था परन्तु दक्षिण भारत में चालुक्य नरेशों के शासन के कारण आगे बढ़ न सके। पूर्व में भी यही हालत थी। कन्नौज के सम्राट गुर्जर प्रतिहारों का प्रभुत्व सर्वत्र फैला था। उनके भय के कारण अरब के लोग मुल्तान से पूर्व की ओर न बढ़ सके। यही नहीं मुल्तान के प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर के धर्मान्ध होने पर भी न तोड़ा। जब कभी प्रतिहार राजा अरब वालों पर चढ़ाई करने की चर्चा करते थे तो मुल्तान के मुस्लिम शासक सूर्य मन्दिर को तोड़ देने का हल्ला मचाते। प्रतिहार हिन्दू मन्दिर के नष्ट हो जाने के डर से वापस चले जाते। यों कहा जाय कि सूर्यमन्दिर के कारण

अरब वालों की रक्षा होती रही। उत्तरी दिशा में करकोट वंश का काश्मीर में राज्य था। इन राज्यों के भय से अरब शासक सिन्ध तथा मुल्तान में कई सौ वर्षों तक घिरे रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि पांचवी सदी में हूण सरदार तोरमाण के आक्रमण के पश्चात् पांच सौ वर्षों तक भारतीय पूर्ण स्वतंत्र होकर राज्य करते रहे। विदेशी आक्रमण का उन्हें भय न था परन्तु दसवी सदी के बाद मुसलमानों का भाग्य चमका। प्रतिहार वंश की अवनति हो गयी। उसके भग्न साम्राज्य के भूभाग पर अनेक छोटी छोटी हिन्दू रियासतें स्थापित हो गयी जिनमें राष्ट्रीयता की कमी थी। स्वार्थवश आपस में मेल हो जाता था परन्तु जातीयता तथा भारतीय एकता की भावना का अभाव था। उधर इसी समय (६६२ ई०) अफ़गानिस्तान (गज़नी) में एक नए राज्य की स्थापना हुई। गजनी का शासक सुबुक्तगीन राज्य बढ़ाने के लिए भारत की ओर बढ़ा। उत्तर पश्चिम तथा कांगरा की घाटी हिन्दू शाही राजा जयपाल के अधिकार में था। इस कारण जयपाल तथा सुबुक्तगीन में युद्ध हुआ। गजनी के सुल्तान के मर जाने के कारण उसके लड़के महमूद ने भारतीय युद्ध को आगे बढ़ाया। भारतवर्ष से धन लूटने की प्रबल इच्छा के कारण महमूद ने जयपाल पर चढ़ाई की और १००१ ई० में पेशावर के पास हिन्दू शाही राजा को हरा दिया। उसके वंशज अनंगपाल तथा त्रिलोचनपाल ने महमूद का सामना किया तथा मध्यभारत तक के राजाओं ने उस युद्ध में त्रिलोचनपाल की सहायता की थी परन्तु उसके भावी परिणाम को न समझने के कारण हिन्दू राजाओं ने जी जान से मुकाबिला न किया। एक महमूद की सेना के सामने हिन्दुओं का संघ सफलता प्राप्त न कर सका। महमूद ने पचीस वर्षों के अन्दर उत्तरी भारत के हिन्दू शासकों के संगठन को नष्ट कर दिया। भारतीय सैनिकों के आचार को समाप्त कर दिया और उनकी युद्ध-कुशलता की प्रसिद्धि को मिटा दिया। ११ वीं सदी के आरम्भ से २५ वर्षों के भीतर थानेश्वर, कन्नौज, कालिञ्जर तथा सोमनाथ पर धावा कर धन लूट कर तथा मन्दिरों को नष्ट कर गजनी वापस लौट गया।

यद्यपि महमूद ने भारत में राज्य स्थापित करने का स्वप्न भी न देखा था तो भी अपनी प्रभुता को प्रकट करने के लिए भारत में सिक्के तैयार कराए थे। अफ़गानिस्तान (गजनी) में शसैनियन सिक्कों के ढंग पर अरबी लेख के साथ मुद्राएँ चलती रही। धार्मिक भावना से प्रेरित होकर उनपर खलीफा का नाम तथा कलमा लिखे गए थे। परन्तु भारत में महमूद ने पंजाब में प्रचलित शाही सिक्कों के ढंग को ही अपनाया। स्थानीय आवश्यकता के अनुकूल महमूद ने "घुड़सवार तथा नन्दि' (हिन्दुशाही सिक्कों के चिन्ह) के चिन्ह को अपनाया और संस्कृत में

अपना नाम खुदवाया। यद्यपि इस्लामी सिक्कों की तरह उसने अरबी में कलमा को स्थान दिया था तो भी उसे भारतीय ढङ्ग को स्वीकार करना पड़ा और प्रजा में विश्वास पैदा करने के लिए हिन्दू चिन्ह तथा संस्कृत को अपने सिक्कों पर स्थान दिया। यह उसकी राजनैतिक चाल थी। ११८७ ई० तक पिछले गजनी के राजकुमार लाहौर में राज्य करते रहे और वे सिक्के भी तैयार कराए थे।

उधर गजनी प्रदेश पर गोर-वंश का राज्य हो गया। ११७३ ई० में ही मुहम्मद गोर (मुहम्मद बिनसाम भी कहा जाता था) उस प्रदेश का गवर्नर हो गया। समयान्तर में उसने भारत पर आक्रमण किया। शक्ति के लिए उसे मुस्लिम शासकों से लड़ना पड़ा। गजनी पर अधिकार कर मुहम्मद गोर ने सर्व-प्रथम मुल्तान को जीता। ११७८ ई० में उसने गुजरात पर आक्रमण किया परन्तु असफल रहा। पाँच वर्षों के बाद जम्मू (काश्मीर) के राजा से सहायता पाकर मुहम्मद ने पंजाब से महमूद के वंशजों को मार भगाया। इस विजय के पश्चात् मुहमद बिनसाम को भारत में आगे चढ़ाई करने का अवसर मिल गया। १२ वीं सदी के अंत में गोर ने दिल्ली अजमेर के राजा पृथ्वीराज पर धावा बोल दिया। यह कहा जा चुका है कि उस समय तमाम हिन्दुओं की छोटी रियासतें पृथक पृथक ध्येय और स्वार्थ से काम कर रही थी इस कारण चौहान नरेश पृथ्वीराज को पूरी तरह सहायता न मिल सकी। यद्यपि वह अकेले न था तथा कई सहस्र सेना उसके साथ थी तो भी राजपूत राजा (११६२ ई० के युद्ध में) हार गया। पृथ्वीराज मारा गया। उसी समय से भारत में मुसलमानों का राज्य स्थापित हो गया। उत्तरी भारत के हिन्दू (राजपूत) शासक अपने को सम्भाल न सके। कुछ ही वर्षों में उत्तरी भारत को तुर्की नायक कुतुबुद्दीन ऐबक तथा इख्तियारुद्दीन ने जीत कर अपने अधिकार में कर लिया। ११६४ ई० में कन्नौज का गहड़वाल शासक जयचन्द भी मारा गया तथा १२०२ ई० में कालिंजर को जीतकर ऐबक बहुत सा लूट का माल लेकर दिल्ली लौटा। बाख्तियार खिलजी के बेटे इख्तियारुद्दीन मुहम्मद ने नदिया से लक्ष्मणसेन को भगाकर बिहार तथा पश्चिमी बंगाल को गोर के राज्य में सम्मिलित कर लिया। कहने का तात्पर्य यह है कि गोर वंश का राज्य गजनी से दिल्ली तक फैल गया। परन्तु मुहम्मद गोर इस का आनन्द न ले सका। अफगानिस्तान, मध्यएशिया, मुल्तान तथा पंजाब में विद्रोह के दबाने में ही व्यस्त रहा। उसी सिलसिले में किसी विद्रोही ने १२०६ ई० में उसे मार डाला।

भारतीय राजाओं के स्थान पर गुलाम राज्य स्थापित करने के पश्चात् मुहम्मद गोर ने सिक्के तैयार कराए। चौहान राजा के सिक्का की तरह दिल्ली में भारतीय

ढङ्ग की मुद्रा उसने तैयार करायी तथा कन्नौज के जीतने पर गहड़वाल वंश के सोने के सिक्कों के ढङ्ग पर लक्ष्मी चिन्ह तथा संस्कृत लेख के साथ सिक्के तैयार कराया था। कन्नौज का स्थान ही सातवीं सदी से भारत की प्रधान राजधानी मानी जाती रही। पाटलीपुत्र का स्थान इस नगर ने ले लिया था। ईसा पूर्व तीन सौ वर्ष से लेकर छठीं शताब्दी तक पाटलीपुत्र ही समस्त राजाओं की राजधानी रही। उसी प्रकार हर्ष के समय से ही कान्यकुब्ज का महत्व बढ़ गया। मध्य युग में (६००-१२०० ई०) कन्नौज का राजा ही प्रधान सम्राट समझा जाता था। इस कारण दक्षिण के राष्ट्रकूट तथा उत्तरी भारत के प्रतिहार और पाल आदि शासकों में कन्नौज के लिए युद्ध होता रहा। प्रतिहार इस युद्ध में विजयी होकर ११वीं सदी तक वहाँ राज्य करते रहे। बाद में गहड़वालों का राज्य कन्नौज पर हो गया था। यही कारण है कि टाड आदि लेखकों ने जयचन्द को भारत का सम्राट् लिखा है। मुहम्मद गोर ने कन्नौज को जीतकर भारत का राजा (सुल्तान) कहलाने के लिये लक्ष्मी ढंग का एक सोने का सिक्का तैयार कराया लेकिन उसे चाँदी के सिक्कों में ही सीमित रहना पड़ा। चौहान सिक्कों का अनुकरण एक राजनैतिक चाल थी ताकि गुलाम सुल्तान प्रजा का प्रिय बन सके। गोर सर्वप्रथम भारत में मुसलमान राज्य का संस्थापक कहा जाता है। परन्तु सर्वप्रथम दिल्ली को कुतुबुद्दीन ऐबक ने ही अपनी राजधानी बनायी थी। वास्तव में गुलामवंश का वह पहला राजा था जिसने दिल्ली में रहकर शासन करना आरम्भ किया। उसके पश्चात् भारत तथा अफगानिस्तान का संघ समाप्त हो गया।

कुतुबुद्दीन ऐबक योग्य तथा न्यायप्रिय शासक था। उसके मृत्यु पश्चात् उसका दामाद अलतमश गद्दी पर बैठा। इसी समय में बंगाल में इख्तियारुद्दीन और सिन्ध में नासिरुद्दीन कुवाचा ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इस तरह कितने लोगों ने विद्रोह खड़ा किया परन्तु अलतमश ने शनैः शनैः सब को दबाया। बगदाद के खलीफा ने खुश होकर उसे 'सुल्ताने आजम' की उपाधि दी। वास्तव में अलतमश ही गुलामवंश का सबसे शक्तिशाली सुल्तान हुआ है। इससे पूर्व इस्लामी दुनिया में खलीफा सबसे बड़ा बादशाह समझा जाता था परन्तु अलतमश के शासन काल से भारतीय सीमा के बाहर खलीफा का प्रभुत्व सीमित हो गया। यही कारण है कि अलतमश ने अपने को सिक्कों पर खलीफा का अधिनायक विजेताओं का पिता कह कर उल्लेख किया है। अलतमश ने गुलाम शासन के बाल्यकाल में देश को छिन्नभिन्न होने से बचाया और कुतुबुद्दीन के राज्य सीमा को उत्तरी भारत पर विस्तृत कर शक्तिशाली बनाया था।

दुर्भाग्यवश अलतमश के मरने के तीन वर्ष तक मुसलमान राज्य संकटापन्न अवस्था में रहा। राजकोश खाली हो गया और राजा की प्रतिष्ठा जाती रही। गुलाम सुल्तानों का दिवालियापन प्रगट हो गया और जो कुछ था उसे मंगोल आक्रमण ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उसी समय बलबन के हाथ में शासन की बागडोर आयी। सेना को संगठित कर द्वाबा तथा दिल्ली के समीप बलबन ने शांति स्थापित की। उसने रक्षा के निमित्त किले बनवाये और अफगान अफसरों को नियुक्त किया। सारे देश में विद्रोह को दबाकर बलबन बीस वर्ष तक राज्य करता है। मंगोल लोगों ने पंजाब पर आक्रमण कर उसके पुत्र को मार डाला। इससे वृद्ध बलबन को गहरी चोट पहुँची और सम्भवतः इसी दुख के कारण १२८७ ई० में वह मर गया। यद्यपि वह प्रतापी शासक था परन्तु उसके उत्तराधिकारी अत्यन्त निर्बल थे। देश में अशांति तथा झगड़े का राज्य हो गया। अंत में खिलजी सरदारों के हाथ में शासन की बागडोर आ गयी।

खिलजी-वंश का सबसे प्रतापी सुल्तान अलाउद्दीन था। उसने अपने चाचा के समय में ही विन्ध्या को पार कर दक्षिण भारत पर चढ़ाई की थी। यद्यपि दक्षिण में आठवीं सदी से मुसलमान प्रवेश कर रहे थे परन्तु उत्तरी भारत के मुस्लिम शासक का यह पहला आक्रमण था। पहले से ही अलाउद्दीन खिलजी को देवगिरी राज्य के अपार धन का समाचार मिल चुका था। अतएव उसने देवगिरी पर चढ़ाई कर दी। वहाँ के शासक रामचन्द्र यह सुनकर अवाक् हो गया। अंत में उसने सुल्तान को अनगिनत मुद्रा देकर विदा किया। दिल्ली का शासक होकर उसने राज्य सीमा को विस्तार करने के लिए राजपूत रियासतों पर आक्रमण आरम्भ किया जिससे चित्तौर, मालवा आदि उसके अधिकार में आ गए। १४ वीं सदी के आरम्भ में अलाउद्दीन ने मलिक नायक के अध्यक्षता में फिर देवगिरी पर चढ़ाई के लिए सेना भेजी। मुसलमान सेना राजपूत रियासतों को नष्ट करती हुई देवगिरी पहुँच गयी और असंख्य धन लूटकर दिल्ली वापस चली आयी। रामचन्द्र ने सन्धि करली। १३१० ई० में काकतीय राजा (दक्षिण के एक नरेश) ने भी सन्धि की और मलिक नायब काफूर को सैकड़ों हाथियों, हजारों घोड़े, बहुत से रत्न तथा सिक्के भेंट किये। इतना ही नहीं काफूर मदूरा को रौंदता हुआ सुदूर रामेश्वरम् तक पहुँच गया था। इस आक्रमण में बीस हजार घोड़े तथा लाखों मन सोना लूट कर दिल्ली ले आया। इस लूट से जो धन-राशि मिली उसमें सोनेकी अधिकता थी। यही कारण है कि मुहम्मद बिनसाम के बाद अलाउद्दीन ने चाँदी के अतिरिक्त सोने के सिक्के भी तैयार कराए थे। अलाउद्दीन का राज्य सुदूर दक्षिण तक फैल गया था परंतु

प्रजा अत्यन्त दुखी थी। उसने जनता से आधी पैदावार तथा पशुओं पर कर वसूल करने की आज्ञा निकाली ताकि कोई अच्छा भोजन, व त्र अथवा सुख की सामग्री का उपभोग न कर सके। वह राज्य को सुदृढ रखने के लिए अधिक सेना रखना आवश्यक समझता था। इस सेनाके व्यय के निमित्त उसने जीवन के उपयोगी सभी वस्तुओं (साधारण से वैभव की चीजें) का विक्रम मूल्य नियत कर दिया। जिसे आधुनिक कन्ट्रोल से समता कर सकते हैं। इस तरह साम्राज्यवादी नीति को मानता हुआ १३१६ ई० में वह मर गया। उसके मृत्यु पश्चात् झगड़ों के बाद कुतुबुद्दीन मुबारक कुछ वर्षों तक गद्दी का मालिक बना रहा परन्तु दरबार के सरदारों ने १३२० ई० में गाजी मलिक को सुल्तान बनाया। शासक होने पर गाजी ने गयासउद्दीन तुगलक के नाम से राज्य करना प्रारम्भ किया। इसके राज्य काल में दक्षिण तथा पूर्व (बंगाल) में विद्रोह खड़ा हो गया था। गयासउद्दीन के वे बुरे दिन थे। बंगाल में शांति स्थापित कर तथा सूबेदार नियुक्त कर ज्योंही वह दिल्ली पहुंचा कि १३२५ ई० में इस संसार से कूच कर गया।

उसके पश्चात राजकुमार जौन मुहम्मद बिनतुगलक के नाम से गद्दी पर बैठा। अफ्रीका का यात्री इब्नबतूता ने उसके शासन का विस्तृत विवरण दिया है। इतिहास जानने वालों से यह छिपा नहीं है कि मुहम्मद बिन तुगलक असाधारण व्यक्तित्व का मनुष्य था। उसके सम्बन्ध मे कोई निश्चित मत स्थिर करना कठिन है। वह एक बड़ा विद्वान था और कुशाग्र बुद्धि, आश्चर्ययुक्त स्मरण-शक्ति तथा विद्या ग्रहण करने की शक्ति के लिए प्रसिद्ध था। उसने शासन प्रबंध तथा सैनिक बल को बढ़ाने के लिए द्वाब की जनता पर विशेष कर लगाया था। उस समय जनता को भीषण अकाल का सामना करना पड़ा था तौभी उसके कर्मचारियों ने कर वसूल करने में कठोरता दिखलाई। १३२७ में सुल्तान दिल्ली से दौलताबाद में राजधानी उठाकर ले गया जिसे शासन कुशलता का प्रमाण मान सकते हैं। बरनी ने भी लिखा है कि वह नगर तुगलक राज्य के बीचो बीच में स्थित था और उससे देहली, गुजरात, लखनौती, तेलंग द्वारसमुद्र तथा कामपिल बराबर दूरी पर थे। परन्तु इस परिवर्तन सम्बन्धी इब्नबतूता अथवा बरनी का वर्णन अक्षरशः सत्य नहीं माना जा सकता है कि दिल्ली में एक बिल्ली तथा कुत्ता भी शेष न रहे। पुनः उसने दिल्ली लौटने की घोषणा कर दी। यह तो सभी मानते हैं कि मुहम्मद की यह आज्ञा बुद्धि से परे थी। मुहम्मद बिन तुगलक की इस यात्रा से देश की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव पड़ा। दक्षिण की यात्रा में उसे सोने अधिक मिले अतएव सोने तथा चांदी के मूल्य के अनुपात

में अन्तर पड़ गया। सोना की अधिकता से उसने सिक्कों में परिवर्तन किया। दो सौ ग्रेन के सोने के दीनार (सिक्के) तैयार कराए थे। चांदी के सिक्के की तौल कम कर दी गयी और इस धातु की कमी होने से १७५ ग्रेन के बदले कम तौल का सिक्का तैयार कराया गया। राज्य की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए मुहम्मद ने एक बड़ी चाल चली। १३३० ई० के आसपास चीन में कागज के सिक्के चल रहे थे और ईरान में उससे पूर्व ऐसी घटना होचुकी थी। अतः तुगलक सुल्तान ने पीतल, ताम्बे सिक्के को सोने, चांदी के समान कानूनी सिक्का घोषित कर दिया जिससे सब सोना चांदी शाही खजाने में वापस आ गया। उस घटना की समता अंग्रेजी रुपयों से की जा सकती है। जहाँ चाँदी की कमी होने से सरकार ने विक्टोरिया के सिक्कों (जिसमें चांदी की अधिकता थी। प्रायः चौदह आना चांदी था) को वापस लेकर गिलट धातु के रुपये प्रचलित कर दिये। इस तरह चांदी के सिक्के सभी ने सरकारी खजाने में जमा कर दिये। मुहम्मद बिन तुगलक की यह चाल राजनीति पूर्ण थी। परन्तु कुप्रबन्ध से सफलता न मिल सकी। सरकारी तथा जाली सिक्के को परख करने वाले कर्मचारी न थे। अतएव घर घर 'टकसाल घर' बन गया क्योंकि सुल्तान का टकसाल पर एकाधिकार न था। करोड़ों जाली सिक्के तैयार होने लगे। उसी से सरकारी टैक्स दिया जाने लगा। जिस ध्येय को लेकर वह नियम बनाया गया था उसमें सुल्तान असफल हुआ। जनता धनवान हो गयी और शाही खजाने में जाली सिक्के भर गए। जहाँ पर यह आज्ञा चलती रही एक सोने की टंका (दीनार सिक्का) सौ ताम्बे के टंका के बराबर थे। ताम्बे के सिक्कों को टंका इसलिए लिखा जा रहा है कि नयी घोषणा के कारण नियमित ताम्बे का सिक्का सोना अथवा चाँदी के सिक्के के समान माना गया था। पुराने टंका की कीमत चौगुनी या पांचगुनी हो गयी थी। ऐसी परिस्थिति में व्यापार तथा कारबार को बहुत क्षति पहुँची। इस नियम के चार वर्ष के बाद सुल्तान को वास्तविक स्थिति का परिज्ञान हो गया अतएव उस घोषणा को भंग कर दिया। जो व्यक्ति ताम्बे का जितना सिक्का लाता था सुल्तान उसी मूल्य का चाँदी अथवा सोने का सिक्का लोगों को देना प्रारम्भ कर दिया। राजा को इससे बड़ा घाटा हुआ और ताम्बे के सिक्कों का ढेर तुगलकाबाद (दिल्ली) में लग गया। तुगलक सुल्तान के अदूरदर्शिता तथा नीति-विरुद्ध कार्य का नमूना मध्य एशिया की चढ़ाई से भी दी जाती है। इन सब कार्यों से जनता का कष्ट बहुत बढ़ गया और स्थान स्थान पर विद्रोह खड़ा होगया। सुल्तान की चिंता बढ़ने लगी और व्याकुल अवस्था में मिश्र के खलीफा से सहायता मांगी। इस अधिकार पत्र के बदले

मुहम्मद बिन तुगलक ने अपने नाम के स्थान पर खलीफा का नाम सिक्कों पर लिखवाना शुरू कर दिया। इस नयी नीति तथा खलीफा के अधिकार पत्र से जनता के दिलों में परिवर्तन न आ सका और एक राजविद्रोह के बाद दूसरा विप्लव खड़ा होता गया। अन्त तक सुल्तान शांति स्थापित न कर सका और इसी प्रयास में १३५१ ई० में मर गया।

चूँकि मुहम्मदबिन तुगलक की मृत्यु सिन्ध प्रांत में हुई थी, इसलिए दरबारियों ने फिरोज को वहीं सुलतान घोषित कर दिया। शासन की बागडोर हाथ में लेते ही फिरोज़ ने सेना को शांत किया और दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। दिल्ली में अपनी स्थिति मजबूत कर वह देश में फैली अराजकता के मिटाने में लग गया। बंगाल से सिन्ध तक के प्रदेशों को अपने अधिकार में करके ही शांति से बैठा। वह चतुर सेना नायक न था पर उसकी नीति पर धार्मिक रूचि तथा भावना का अधिक प्रभाव था। इस कारण वह मिश्र के खलीफा को श्रद्धा के भाव से देखता था। फिरोज ने अपने को खलीफा का अधिनायक घोषित किया और राज्य करने का अधिकार पत्र उससे ग्रहण किया था। यही कारण है कि सिक्कों पर अपने नाम के साथ फिरोज ने खलीफा का नाम भी खुदवाया (अंकित कराया) था। उसकी नीति थी कि ईश्वर ही राज्य का स्वामी (प्रभु) है और ऐसे धार्मिकता के साथ शासन करता रहा। इस कारण प्रजा सुखी थी और धन धन्य से पूर्ण थी। सुलतान का खजाना भी भरा था। सिक्कों की धातु की कमी न रही। साधारण वस्तुओं का दाम कम हो गया था जिसके कारण सर्व साधारण आराम के साथ जीवन व्यतीत करते रहे। फिरोज तुगलक के अंतिम समय कष्टमय बीते। उसके बाद उत्तराधिकार के लिए युद्ध आरम्भ हो गया। जब गद्दी के लिए गृहयुद्ध चल रहा था उसी समय द्वाब में विद्रोह फैल गया जिससे राज्य की प्रतिष्ठा समाप्त हो गयी। इस अराजकता के समय अमीर तीमूर ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। १३९८ ई० में सिन्ध, झेलम, रावी को पार करता हुआ तीमूर विशाल सेना के साथ दिल्ली में प्रवेश किया। असंख्य व्यक्ति मारे गये। राजधानी में अकाल ने बचे लोगों को नष्ट कर दिया। प्रकृति के कारण तीमूर का कार्य पूरा हो गया तथा मेरठ, हरद्वार होता सिवालिक के पर्वतीय मार्ग से वापस चला गया।

इस आक्रमण के फलस्वरूप अनेक छोटी छोटी रियासतें कायम हो गयी। स्थान स्थान पर शासकों ने शक्ति संचय करके स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। दिल्ली में अमीरों के हाथ में वास्तविक शक्ति थी। प्रायः १४२१ ई० में आलम

शाह ने लाहौर के सूबेदार बुहलूल लोदी को दिल्ली का राज्य सौंप कर स्वयं हट गया। अफगानी होने के कारण लोदी सुल्तान ने अनेक राजाओं को परास्त किया। फिरोज तुगलक के बाद बुहलूल ने दिल्ली में शांतिमय वातावरण पैदा कर अपनी सरकार को शक्तिशाली बनाया। इन गुणों के कारण प्रजा का प्रिय बन गया। वह अधिक देश जीत न पाया था कि १४८६ ई० में मर गया। बुहलूल के बाद सुल्तान सिकन्दर शाह शासन करने लगा। इसके समय की कोई घटना उल्लेखनीय नहीं है। अफगान सुल्तान सिकन्दर तथा उसके उत्तराधिकारी इब्राहिम राजनीति से अनभिज्ञ थे। उन लोगों ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए लोहानी तथा लोदी वंश के अमीरों को तंग किया। इस लिए अफगानों की सहानुभूति खो बैठे। इब्राहिम ने लाहौर के शासक दिलावर खां के साथ बुरे ढंग से व्यवहार किया जिस के कारण उसके पिता दौलत खाँ लोदी ने काबुल से बाबर को बुलाया तथा दिल्ली से अफगान शासन समाप्त करने में उसने बाबर की सहायता की।

तुर्क-अफगान राज्य का नाश तो फिरोज तुगलक के समय से आरम्भ हो गया था। उसने हिन्दूओं पर जजिया लगा कर समाज के अधिक भाग को मुसलमानों के विपरीत कर दिया था। हिन्दू समाज में तो भक्ति के कारण एक ईश्वर की भावना फैल गयी थी। उनके विचार में सब धर्मों का मूल एक था और भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति की जा सकती थी। रामानन्द तथा चैतन्य ने सर्वत्र इसी भक्ति भाव को प्रचारित किया था। महाराष्ट्र में नामदेव ने ऐसा ही विचार फैला कर मुसलमानों को हिन्दू भावना से भर दिया। वे भी शिष्य होकर हिन्दू समाज में मिलने लगे थे। परन्तु मुसलमान शासकों ने हिंदू भावना को तिरस्कृत कर जजिया टैक्स लगाया और प्रजा के दिल में घृणा पैदा कर दिया। कबीर ने इस भावना को मिटाने का पूरा प्रयत्न किया था परन्तु सर्वथा सफल न हो सका। अंतिम समय में लोदी शासकों ने अफगान अमीरों को दबा कर ऐसा विष बो दिया जिसका फल उन्हें भोगना पड़ा। भारत में उसी समय विदेशी शासक को निमंत्रण दिया गया और सोलहवीं सदी में मुगल राज्य की स्थापना बाबर ने की।

बाबर प्रारम्भिक जीवन में चीनी तुर्किस्तान के फरगाना का मालिक था। जहां से उसके जाति भाइयों ने बाबर को निकाल बाहर किया। यद्यपि १५०४ ई० में काबुल जीतकर वह शासन करने लगा था परन्तु उसका ध्यान सदा समरकंद की ओर था। समरकंद के जीतने में असफल हो जाने पर बाबर दक्षिण पूर्व (भारत) की ओर सैनिक परीक्षक की दृष्टि से देखने लगा। संयोग से लोदी

सरदार दौलतखाँ ने उसे बुला भेजा इस कारण लाहौर से निमंत्रण मिलने पर उसे साहस हो गया। उसी सम्बंध में भारत वर्ष में प्रवेश कर बाबर ने मुगल राज्य की स्थापना की। अफगान राज्य (इब्राहिम लोदी का राज्य) को नष्ट कर बाबर ने आगरा तथा दिल्ली पर अधिकार कर लिया। वह अपनी स्थिति को दृढ़ कर चार वर्षों में ही पंजाब, संयुक्त प्रांत, उत्तरी विहार तथा मेवार का स्वामी बन गया था। आगरा दिल्ली को छोड़ कर विजित प्रांतों में स्थिर शासन न था इसलिए बाबर ने स्वतंत्र शासन के सूचक सिक्कों को आगरा से ही चलाया। उसके मृत्यु परचात हुमायूं भी अपनी शक्ति के बिस्तार में लगा रहा पर पंजाब तथा संयुक्तप्रांत में ही उसका प्रभाव सीमित था। विहार में शेरशाह से हार खानी पड़ी। हुमायूं ने दिल्ली लाहौर तथा आगरा को ही मुख्य नगर मान कर सिक्के तैयार करवाए थे। विहार के विद्रोह के सामने उसे झुकना पड़ा। अफगान सरदार गम्भीर विद्वान होने के अतिरिक्त कुशल शासक था। १५३६ में हुमायूं को परास्त होने पर शेरशाह कन्नौज से पूर्वी बंगाल तक और हिमालय से दक्षिण में बंगाल की खाड़ी तक समस्त प्रदेशों का शासक हो गया। उसी समय से खुतवा में उसका नाम लिया जाने लगा और सिक्कों पर उसके नाम खोदे (अंकित किए) गये। शनैः शनैः शेरशाह का प्रभाव पंजाब तक फैल गया। उस विशाल राज्य का शासन उसने नये ढंग से संगठित किया। समस्त राज्य प्रांतों (सरकार) में बांटे गये जिसके मालिक सूबेदार नियुक्त किए गये थे। मुगल शासन का वास्तविक ढांचा शेरशाह ने ही तैयार किया था। शेरशाह के शासन प्रबंध के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है पर इतनाही पर्याप्त है कि उसी की दीवाल पर अकबर ने शासन रूपी महल खड़ा किया था। देश की आर्थिक सुधार पर उसका विशेष ध्यान था। शेरशाह ने मुद्रानीति में ठोस परिवर्तन किया। उसने चाँदी के टंका को १८० ग्रेन का तौल पूरा कर रुपया का नाम दिया जो आज कल भारत में चला आ रहा है। उसके उत्तराधिकारी शेरशाह की प्रतिष्ठा को कायम न रख सके। कुछ वर्षों के बाद १५५६ के समीप हुमायूं पुनः दिल्ली का बादशाह बन गया। इसके मरने पर अकबर ने अपने सैन्य बल, चतुरता तथा नीति से उत्तरी भारत के अतिरिक्त दक्षिण में बीजापुर तक मुगल साम्राज्य की सीमा विस्तृत की। देश की आर्थिक स्थिति शेरशाह के समय से ही सुधर रही थी। अतएव अकबर ने साम्राज्य के विभिन्न नगरों में टकसाल घर बनवाए। दक्षिण भारत पर राज्य विस्तार हो जाने पर सोने की कमी न रही अतः सोना तथा चाँदी के अनगिनत सिक्के तैयार किए गये। उसके पिता के चाँदी के सिक्के कम मिलते हैं परन्तु देश में धन धान्य के बढ़ने तथा व्यापार की उन्नति के कारण

सोना, चाँदी तथा ताम्बे के सिक्कों का तैयार कराना आवश्यक हो गया। वाणिज्य की उन्नति की सूचना सिक्कों की अधिक संख्या से मिलती है। जहाँगीर तथा शाहजहाँ के शासन काल में मुगल संस्कृति चरम सीमा को पहुँच गयी थी। इन मुगल सम्राटों का शासन हर एक पहलू से आदर्श ढङ्ग का था।

जहाँगीर के समय में ही योरप से जलमार्ग से व्यापार शुरू हो गया था। चाँदी ले आने वालों को व्यापार में अधिक सुविधा दी जाती रही। चाँदी की अधिकता के कारण ही जहाँगीर ने असंख्य चांदी के सिक्के तैयार कराये थे। शाहजहाँ का राज्य सोने, चाँदी तथा जवाहीरात से भरा पड़ा था। ताजमहल तथा सिंहासन के अतिरिक्त महलों की दीवालों पर भी रत्न जड़े गये थे। इसका रूप यह हुआ कि वाणिज्य दिन दूना रात चौगूना बढ़ रहा था। योरप वालों को व्यापार करने की आज्ञा इसी कारण दी गयी थी ताकि देश समृद्धशाली हो। चांदी के रुपयों के अतिरिक्त छोटे पैमाने (तौल) आधा तथा चौथाई भाग के बराबर सिक्के बनाए गये। औरङ्गजेब के शासन तक देश की ऐसी ही हालत रही। यद्यपि उसे गद्दी के लिए बहुत लड़ाई लड़नी पड़ी थी तौभी देश की हालत बुरी न हो सकी। औरङ्गजेब के सम्राट होने पर खुतबा में उसका नाम पढ़ा जाता रहा। उसके नाम के साथ आलमगीर, पातशाह तथा गाजी शब्द (पदवियाँ) जोड़ी गयी थीं। राज्य में शांति स्थापित करने के लिए उसने जनता को कठिनाइयों को दूर किया और अराजकता को मिटाने का प्रयत्न किया। औरङ्गजेब फारस, टर्की आदि से सम्बन्ध स्थापित कर वहाँ के लोगों को अपार धन भेंट में दिया करता था जिससे विदेशी मुगल कालीन वैभव तथा धन को देख कर चकित हो गए थे। सारे साम्राज्य में स्थापित विभिन्न टकसालघरों से असंख्य सिक्के बनते रहे। सर्वसाधारण में व्यवहृत चांदी के सिक्कों की गणना नहीं हो सकती थी। सोने के मुहर मूल्यवान होने के कारण उतने प्रचलित न थे। औरङ्गजेब के मरने के कुछ ही वर्षों बाद मुगल साम्राज्य की अवनति होने लगी। जाट, सिक्ख, राजपूत तथा मरहठों ने अपनी शक्ति एकत्रित कर स्वतंत्र राज्य स्थापना के लिए विद्रोह खड़ा किया। १७ वीं सदी से मरहठों ने चौथ तथा सरदेश मुखी के लिए सर्वत्र धावा शुरू कर दिया। देश की आर्थिक स्थिति खराब होने लगी और व्यापार ढीला पड़ गया। पिछले मुगल बादशाहों के सिक्के इस बात को चरितार्थ करते हैं। १८ वीं शताब्दी में मरहठों का संगठन तथा शासन सुव्यवस्थित हो गया था जिस कारण उन्होंने एक छोटा साम्राज्य कायम कर लिया। उसी काल से विदेशी योरप के व्यापारियों ने वाणिज्य के अतिरिक्त भारत में राज्य स्थापना के लिये प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया था। मुगलों के

सूबेदार स्वतंत्र हो गये थे और अपने नाम से सिक्के चलाने लगे। चूंकि मुगल काल में उन स्थानों पर टकसालें थीं अत: उस मार्ग में रियासतों को पर्याप्त सुविधा प्राप्त हो गयी। उस खींचा तानी में भारतीय शासकों में शक्ति की कमी तथा संगठन के अभाव के कारण अंग्रेजों का प्रभुत्व बढ़ता ही गया। उन लोगों ने देश जीत कर भी मुद्रानीति में शीघ्र परिवर्तन न किया। स्थानीय सिक्के चलते रहे। मुगल वंश का अंतिम बादशाह शाहआलम के समय के काफी सिक्के मिले हैं जिनमें चाँदी की अधिकता थी। अन्य सूबेदार भी उसी के नाम से सिक्के चलाते रहे ताकि जनता को यह मालूम होता रहे कि मुगल शासन अथवा प्रभुत्व अभी तक (उस समय) बना है। लोगों को मुगल बादशाह से आन्तरिक प्रेम था और सब उन्हीं की छत्रछाया में रहना चाहते थे। प्रांतीय सूबेदारों (जो स्वतंत्र हो गये थे) के अतिरिक्त अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी को भी इसी नीति पर चलना पड़ा। जनता को शांत रखने के लिए थोड़े दिनों के लिए शाह-आलम का नाम अंकित करा कर ईस्ट इंडिया कम्पनी भी अपना सिक्का तैयार करती रही।

एग्यारहवां अध्याय

मुसलमान शासन
में
भारत की आर्थिक अवस्था

यह कई बार कहा जा चुका है कि शासन की मुद्रानीति का तत्कालीन आर्थिक स्थिति से घनिष्ट सम्बन्ध रहता है या यों कहा जाय कि नीति उसी पर अवलम्बित रहती है। प्राचीन भारतीय सिक्कों की चर्चा करते समय इस विषय पर जोर दिया गया है। अतएव मुसलमान सुल्तान तथा बादशाहों के सिक्कों के वर्णन से पूर्व तत्कालीन आर्थिक अवस्था पर दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्राचीन समय में भारतवर्ष धन धान्य से पूर्ण था और इसके वैभव की चर्चा दूर तक फैली थी। यहाँ के व्यापारियों ने सुदूर पूर्व देशों में व्यापारिक केन्द्र स्थापित किये और भारतीय उपनिवेश बसाये थे। उस समय के सोने के सिक्कों तथा अन्य पुरातत्व सम्बन्धी प्रमाणों पर पुराने समय की आर्थिक दशा का वर्णन किया जा चुका है। पूर्व मध्य काल में मुसलमानों ने इस्लाम मत के प्रचार के लिए भारत पर आक्रमण करना शुरू किया था। दसवीं सदी तक मुसलमानों का अधिकार सिन्ध तथा मुल्तान में ही सीमित रहा। इसके बाद अफ़गानिस्ताम से हमले होने लगे। यह ठीक ठीक कहना कठिन है कि गजनी के सुल्तान ने भारत पर आक्रमण किस ध्येय को लेकर प्रारम्भ किया था। परन्तु फिरिस्ता (एक मुसलमान लेखक) के कथन से यह पुष्ट होता है कि महमूद भारतवर्ष से असंख्य धन राशि लेकर अपनी राजधानी को लौटा था। यह तो सत्य है कि उसने हिन्दुओं के मंदिर तथा मूर्तियों को तोड़ा परन्तु इस तोड़ने में स्यात् धन प्राप्ति की इच्छा छिपी थी। अस्तु। गुलाम वंश से शासकों ने भारत में राज्य करना आरम्भ किया। इसी देश को अपना समझ कर शासन प्रबन्ध में व्यस्त थे। देश का अपार धन उनकी इच्छा पर रहा। जिस रूप में उसका व्यय अथवा वृद्धि चाहते करते रहे। तुर्क तथा अफ़गान सुल्तानों के समय में भारत की वास्तविक आर्थिक स्थिति का आँकना कठिन है परन्तु ऐतिहासिकों से यह बात छिपी नहीं है कि तैमूर दिल्ली को नष्ट कर असाधारण लूट का माल

और धन स्वदेश को लेगया। उस आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि महमूद के अपार धन गजनी ले जाने पर भी भारत वर्ष में धन धान्य की कमी न रही। यह कहना आवश्यक है कि तुर्क-अफगान सुल्तानों की कोई आर्थिक नीति न थी जिसके कारण देश की श्री वृद्धि हो तथा जनता की माली हालत में सुधार हो। फिरोज तुगलक तथा अलाउद्दीन खिलजी ने क्रय विक्रय की नीति को राष्ट्रीय करण का रूप दिया था परन्तु इस परीक्षा का कुछ स्थायी फल न हो सका। उन्होंने कृषि की उन्नति तथा राज्य में धन के समुचित वितरण की ओर ध्यान तक न दिया। यों तो भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन समय से ही व्यापारिक संस्थाएं-श्रेणी तथा निगम समूह—काम कर रही थी जिनका कारोबार अच्छे रूप में चल रहा था तथा जिनका व्यापार भीतरी और बाहरी प्रदेशों में दूर तक फैला था। ये संस्थाएं इस तरह सुसंगठित थीं कि राजनैतिक परिवर्तन का उनपर बहुत कम प्रभाव पड़ सका और राजकीय सहायता न मिलने पर भी जीवित रहीं। मध्य कालीन मुसलमान शासकों (दिल्ली के सुल्तान और प्रांतीय सूबेदार) ने स्वार्थवश कुछ कारखानों को स्थापित किया जिसमें शाही दरबार में प्रयुक्त वस्तुएं तैयार की जाती थीं। अधिकतर रेशमी कपड़े का कारबार उन्नत किया गया था। इनका कार्य आधुनिक ढंग पर न था परन्तु विभिन्न रूप से चलता रहा जिसमें स्वयं बुनकार ही माल सब लोगों के हाथ बेचा करता था। कभी कभी उत्सव के अवसर या मेलों में अपना माल बेचने के लिये ले जाया करते थे। उस समय कपड़ों- रेशमी सूती और ऊनी—का व्यापार अधिक मात्रा में था और यह देश उसके लिये प्रसिद्ध भी था साथ साथ रंगाई तथा छपाई के कारखाने चल निकले थे। दूसरे स्थान पर भोग विलास की सामग्री तैयार की जाती थी। शराब के कारखाने, धातु तथा मिट्टी के सामान बनाने के केन्द्र तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के तैयार करने का व्यवसाय जगह जगह खोले गये थे। तुर्क अफगान सुल्तानों के राज्य काल में भारत का वाणिज्य सम्बन्ध सुदूर देशों से स्थापित रहा। जलमार्ग से योरप तथा पूर्व में चीन तक व्यापार होता था। स्थल मार्ग से कारवां सामान लेकर मध्य एशिया, ईरान तथा अफगानिस्तान तक जाते रहते थे। मुसलमान यात्रियों ने भारत के निर्यात और आयात का वर्णन किया है जिस आयत में मुख्यतः भोगविलास की सामग्री, घोड़े तथा खच्चर भारत आते रहे।

भारत वर्ष सदा से कृषिप्रधान देश रहा है। मुसलमानी युग में भी अधिक तर लोग कृषि पर ही जीवन व्यतीत करते रहे। राजनीति के गाँवों की जनता तथा ग्रामसभा को कोई सीधा सम्बन्ध न था। वे प्रायः स्वतंत्र रूप से कार्य

करती थीं। खेती से उपज इतनी अधिक होती थी कि इस देश के बाहर ईरान अरब वालों को भोजन सामग्री भेजी जाती थी। खेतों से उपज का कोई स्थिर भाव न था। कम पैदावार या अकाल पड़ने पर मंहगा हो जाता तथा अधिक पैदावार के समय बहुत सस्ते मूल्य पर चीजें बिकती थीं। उदाहरण के लिए तुगलक सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के समय में अकाल के समय १६ जितल (पैसा) में एक सेर अनाज बिकता रहा। फिरोज के समय में स्थिति सुधर गयी तो ८ जितल में पांचसेर अन्न बिकने लगा। अलाऊद्दीन खिलजी के शासन काल में अन्न समुचित भाव से बिकने लगा था। गेहूं साढ़े सात जितल में एक मन, धान और दाल ५ जितल में एक मन, चीनी सौ जितल में एक मन तथा घी १६ जितल में एक मन बिकता रहा। लोदी वंश के समय में जीवन के उपयोगी सामान-अन्न तथा वस्त्र अत्यन्त सस्ते थे। एक मनुष्य दस मन अन्न, पांच सेर तेल तथा दस गज मोटा कपड़ा १६ जितल में खरीदता था। कपड़े भी सस्ते दाम पर बिकते थे। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में प्रत्येक मनुष्य कितने कम पैसे में आवश्यक सामग्रियों को खरीद कर सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करता था। इब्न बतूता का कथन है कि उसे ऐसा देश कहीं दिखलाई नहीं पड़ा जहाँ सामान इतना सस्ता बिकता हो। उनके कथनानुसार तीन व्यक्तियों के एक छोटे परिवार के लिए आठ सिक्के वार्षिक व्यय के लिए पर्याप्त थे। इस प्रकार की सस्ती से सभी को लाभ था। इन सब उल्लेखों को छोड़ कर भारत वर्ष में प्रति व्यक्ति औसत आय तथा व्यय जानने का कोई साधन नहीं है। इतना तो कहा जा सकता है कि अमीर तथा शासक वर्ग के जीवन तथा साधारण किसान के जीवन में जमीन आसमान का अन्तर था।

सोलहवीं सदी से भारत में मुगल शासन आरम्भ हो गया। मुगल कालीन आर्थिक अवस्था अच्छी थी। जनता सांसारिक दृष्टि से सुखी थी। मुगल शासकों के वैभव, रत्न जटित पात्र तथा नीले और हीरों से जड़ित भवनों की चर्चा सुनकर कौन आश्चर्य युक्त नहीं होता! मुगल कालीन प्रारम्भिक जीवन के विषय में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है परन्तु हुमायूं नामा से पता चलता है कि उस समय आवश्यक वस्तुओं का मूल्य बहुत कम था। उसके पश्चात् शेरशाह के सुधार से भारत वर्ष की आर्थिक अवस्था में परिवर्तन अवश्य हुआ। जनता में उस सुधार का समुचित प्रभाव पड़ा। मुगल कालीन आर्थिक दशा का वर्णन आइने अकबरी में बहुत मिलता है। उस के वर्णन से आधुनिक भारत में उत्पन्न वस्तुओं की समता की जा सकती है। यद्यपि उस समय का वाणिज्य

बहुत उन्नत अवस्था में था। भोजन की चीजों के अतिरिक्त काफी कपड़े-रेशमी, सूती तथा ऊनी-तैयार किये जाते थे। नील की खेती, तम्बाकू, गन्ना आदि पर्याप्त मात्रा में पैदा होते रहे। खेती के हथियार तथा सिंचाई आदि का वर्णन वर्तमान समय में भी घटित हो सकता है। वाणिज्य के लिए सड़के तैयार की गयी थीं जो मुख्य नगरों से होकर जाती तथा स्थान स्थान पर यात्री के सुविधे के लिए सराय (धर्मशाला) बनायी गयी थीं। मुगल लोगों से पहले सूर नरेश शेरशाह ने हजारों मील लम्बी सड़क तैयार करायी थी। नदियों से भी काफी माल एक स्थान से दूसरी जगह जाया करता था। विदेशी व्यापारियों ने भी इस मार्ग से सामान ले जाना आरम्भ कर दिया।

इस तरह जहाँगीर तथा शाहजहाँ ने भी खेती तथा व्यापार की उन्नति के लिए काम किया। जहाँगीर के दरबार में आकर विदेशी टामसरो ने व्यापारिक कम्पनियां खोलने की आज्ञा ली थी। उस आज्ञा देनेका ध्येय यही था कि देश की श्री वृद्धि हो। विद्वानों का मत है कि अकबर वाणिज्य की उन्नति के लिए ही मेवार विजय करना चाहता था। उसी मार्ग से गंगा की घाटी से पश्चिमी किनारे तक व्यापारिक मार्ग आता जाता था। अकबर की साम्राज्य स्थापना का एक यह भी ध्येय था ताकि व्यापार की उन्नति से भारत समृद्धशाली हो जावे। इसका तात्पर्य यही है कि मुगल काल में आर्थिक स्थिति अच्छी थी तभी तो विदेशियों ने यहाँ से लाभ उठाने के लिए व्यापारिक केन्द्र स्थापित किए केन्द्र खोले और भविष्य में भारत को नंगा तथा भूखा बना कर धनराशि उठा ले गये। अकबर के समय से कारखानों की इतनी उन्नति हुई की सारे देश के अमीरों की आवश्यता की पूर्ति कर भारत के व्यापारी विदेशी-योरप तथा एशिया-सौदागरों को पूरा माल देते रहे। उस काल में विशेष कर सूती कपड़े बनते थे। सूती कारखाने गुजरात से बंगाल तक फैले थे। पूर्वी बंगाल में तो इसका जाल बिछा था। ढाका के मलमल की प्रसिद्धि सर्वत्र व्याप्त थी। विदेशी यात्री बरनियर ने लिखा है कि रेशम तथा सूती माल इतनी अधिक मात्रा में तैयार किये जाते थे कि उनके लिए भारत गोदाम बन गया था तथा योरप में भी भर गया था। रंगने तथा छापने की कला काफी उन्नत कर चुकी थी। अबुलफजल के वर्णन से भी इसकी पुष्टि होती है। बंगाल के रेशमी वस्त्र योरप में सर्वत्र बेचे जाते थे। १७ वीं सदी में बंगाल में इस कारखाने की आशातीत उन्नति हुई जिसका अनुमान आजकल नहीं किया जा सकता। वर्तमान शताब्दी में भारत में वस्त्र के लाले पड़े हैं परन्तु तीन सौ वर्ष पहले ही भारत योरप तथा एशिया को वस्त्र दिया करता था। ऊनी शाल तथा कालीन

संसार में प्रसिद्ध थे। मुगलकाल में दस्तकारी के अनेक केन्द्र थे जहाँ लकड़ी तथा हाथी दाँत की चीज़ें तैयार की जाती थीं। कारखाने तथा दस्तकारी की इतनी उन्नति होने पर भी साधारण श्रेणी के लोगों की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न थी. ऊँची श्रेणी तथा अमीर लोग व्यापार से लाभ उठाते रहे। इतना होते हुए भी राज्य में उपयोगी वस्तुओं चावल, शाक, मसाले, दूध-मांस का भाव अत्यंत कम था। १६८५ ई० के एक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि औरङ्गजेब के समय में उत्तर के अतिरिक्त दक्षिणी भारत में गेहूँ तथा दाल ढाई मन प्रति रुपया, ज्वार साढे तीन मन तथा घी चार सेर प्रति रुपया के भाव से बिकते रहे। देश में सब सामान भरा था अतः रोटी का कोई प्रश्न ही न था। सभी के आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से हो जाती थी। साधारण जीवन के लिए सभी के पास द्रव्य था। मुगल बादशाहों के कारण विदेशी व्यापार बहुत विस्तृत तथा तेज़ी पर था और योरप तथा एशिया के देशों से व्यापार बड़े पैमाने पर चलता रहा। निर्यात के बदले में भारत में चाँदी, घोड़े हाथी दाँत, मूँगा तथा चीनी मिट्टी के बरतन आया करते थे। स्थल से अधिक जलमार्ग से व्यापार होता रहा। सिन्ध से बङ्गाल तक समुद्र के किनारे के बन्दरगाह माल भेजने में व्यस्त रहते थे और उनसे चुङ्गी भी कम ली जाती थी। सिक्के तैयार करने के लिए चाँदी की बहुत आवश्यकता थी अतएव कोई व्यापारी चाँदी देश (भारत) से बाहर नहीं ले जा सकता था। भारत के सामान की आवश्यकता योरप वालों को अधिक थी अतएव मूल्यवान सामान योरप में जाया करता जिसके बदलेमें योरप के व्यापारी चाँदी लाया करते थे। भारत में चाँदी लाने के कारण ही उन्हें अच्छे तथा मूल्यवान सामग्री योरप ले जाने की आज्ञा दी गयी थी। यद्यपि उन वस्तुओं की अधिक मूल्य की आलोचना योरप में होती रही परन्तु धनीमानी लोग भारतीय माल को शौक से खरीदते थे। मुगलकाल में अधिक चाँदी सिक्कों के लिए इस मार्ग से भारत में आया करती थी। भारतीय सामग्री खरीदने के लिए विदेशी व्यापारियों को स्थानीय अमीर तथा प्रांतीय गवर्नर (सूबेदार) को कई प्रकार से संतुष्ट रखना पड़ता था ताकि वे लोग माल के खरीदने में अड़ंगे न पैदा करें। इस तरह योरप के व्यापारी आवश्यकता के कारण भारतीय माल के खरीदने में संलग्न हो गये थे। अंत में भारतीय उत्पादन को नष्ट कर इस देशको विदेशी वस्तु खरीदने के लिए लाचार कर दिया।

बारहवां अध्याय

मुस्लिम सिक्कों की विशेषता

प्रारम्भ में यह कहा जा चुका है कि सातवीं सदी से अरब वालों ने भारत पर आक्रमण करना शुरू कर दिया था परन्तु तीन सौ वर्षों तक इनका प्रभाव भारतीय जीवन पर न पड़ सका। दसवीं सदी तक सिन्ध तथा मुल्तान में ही सीमित रहे। इस्लामी दुनियां में पैगम्बर के मरने के बाद हिजरी ७७ यानी ६९६ ई० में खलीफा ने सिक्का तैयार कराया था जो सर्वथा धार्मिकता लिए हुए था और इस्लाम के वाक्यों से संयुक्त था। ७१२ ई० के पश्चात् सिन्ध विजय करने पर कासिम के गवर्नरों ने भारत में सर्व प्रथम इस्लामी सिक्के तैयार कराए जो बगदाद के खलीफा की शैली पर बनाए गये थे। उनपर टकसाल तथा गवर्नर का नाम तथा धार्मिक वाक्य खुदे थे। इनका प्रभाव सिन्ध तथा मुल्तान के बाहर न फैल सका और भारत की देशी रियासतों में प्राचीन ढंग के ही सिक्के तैयार होते रहे। राठौर, चौहान तथा चंदेल आदि राजाओं ने मुद्रा नीति में मुसलमानों द्वारा प्रचलित नयी शैली पर ध्यान तक न दिया। इसके विपरीत भारत में राज्य स्थापित करने वाले मुसलमान शासक भारतीय शैली से प्रभावित हुए। इस्लाम धर्म की मर्यादा के बाहर कुरान के धार्मिक भावों को ठुकरा कर अपने सिक्कों पर भारतीय मूर्तियां (आकृतियां) को खुदवाया जो इस्लामी दुनियाँ में नयी बात थी। महमूद गजनी के आक्रमण से इस्लाम मतानुयायियों का प्रभाव भारत के अन्दर फैल गया। महमूद के गजनी वापस चले जाने के बाद भी उसके गवर्नर लाहौर में रहने लगे। यद्यपि महमूद का विचार भारत में राज्य स्थापित करना न था परन्तु उत्तर पश्चिमी भाग में उसके सेना नायक अधिकार जमाए रहे अतएव राजा होकर स्वतंत्रता के प्रतीक सिक्कों को चलाना भी आवश्यक समझा गया। मुसलमान शासकों में सर्वप्रथम महमूद ने भारतीय ढङ्ग पर 'सिक्के तैयार कराया था। इस्लामी दुनिया में जो सिक्के प्रचलित थे उनकी शैली तथा बनावट को त्याग कर भारतीय ढङ्ग को अपनाया। जो शाही सिक्के उत्तर पश्चिम में प्रचलित थे और दिल्ली में जो चौहान सिक्के महमूद के सामने आये उन्हीं की

नकल पर गजनी शासक के सिक्के तैयार करने की आज्ञा दी। उन भारतीय सिक्कों पर 'नन्दि तथा घुड़सवार' की आकृतियाँ वर्तमान थीं तथा नागरी अक्षरों में राजा के नाम अंकित थे। महमूद ने उस चिन्ह को तो ज्यों का त्यों रहने दिया तथा तौल में (६० ग्रेन) भी कोई परिवर्तन नहीं किया। परन्तु मुसलमान होने के नाते उसने कलमा (इस्लाम मत की प्रतिज्ञा) को अपने सिक्कों पर स्थान दिया। यह इस्लामी संसार की एक विचित्र बात थी कि महमूद ने उस कलमा को अरबी में न लिखवाकर उसी का संस्कृत अनुवाद अंकित कराया ताकि उसे भारतीय जनता समझ सके। अल्लाह का अव्यक्त बिस्मिल्लाह का अव्यक्तीय नाम तथा रसूल का अवतार अनुवाद सिक्कों पर मिलता है। कलमा (ला इल्लिला मुहम्मद रसूल्लिलाह) का पूरा अनुवाद "अव्यक्त नाम अवतार मुहम्मद" मिलता है। दूसरी ओर टकसाल का नाम भी पाया जाता है। संस्कृत में अयं टंकं मुहमदपुरे घटे—लिखा है कि यह सिक्का अमुक (मुहमदपुर) टकसाल में तैयार किया गया था। मुसलमान मुद्राविद्या में यह पहला तथा अंतिम उदाहरण मिलता है जिस स्थान पर अरबी कलमा का संस्कृत अनुवाद सिक्के पर अंकित कराया गया हो।

११९२ ई० में मुहम्मद गोर ने चौहान नरेश पृथ्वीराज को परास्त कर अजमेर तथा दिल्ली पर गुलामवंश का राज्य स्थापित कर दिया। यद्यपि उसके गजनी के सिक्के बगदाद के खलीफा के सिक्कों की नकल पर बने थे परन्तु मुसलमान विजेता ने सम्भवतः राजनैतिक चाल के कारण इस्लामी दुनिया में प्रचलित सिक्कों (खलीफा के सिक्का) के समान भारत में मुद्रा तैयार नहीं कराया। दिल्ली तथा अजमेर में प्रचलित भारतीय सिक्कों का ही अनुकरण किया। चौहान सिक्कों पर 'नन्दि तथा घुड़सवार' का चिन्ह अंकित था उसी को मुहम्मद गोर ने अपने सिक्कों पर खुदवाया और लेख देवनागरी में ही लिखवाया। दिल्ली में चौहान तथा राजपूताने में नारवार के सिक्कों की तौल ६० ग्रेन की थी। महमूद के सिक्के भी इसी तौल के बनाए गये जो 'दिल्ली वाला' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मुसलमान शासक ने भारतीय चिन्ह देवनागरी में लेख तथा तौल को अपनाया था। इस्लाम मतानुयामी होने पर भी महमूद गोर (सिक्कों पर मुहम्मद बिनसाम लिखा मिलता है) ने शिव के वाहन नन्दि (हिन्दू देवता) को सिक्कों पर स्थान दिया था। देवनागरी में नामोल्लेख के अतिरिक्त पृष्ठ ओर हमीरशब्द का प्रयोग मिलता है। डा० हेमचन्द्रराय का मत है कि हमीरशब्द अरबी के अमीर का बिगड़ा स्वरूप है। अरबी में अमर धातु (आज्ञा देना) से अमीर शब्द बनाया गया जो उमर के समय से खलीफा

के नाम के साथ प्रयोग किया जाने लगा। समयान्तर में जो इस्लामी दुनिया में सेनानायक या नेता थे सभी अमीर कहे जाने लगे। राजाओं के नाम के साथ अमीर शब्द का प्रयोग होने लगा जैसे अमीर सुबुक्तगीन। भारत में अरबी शब्द अमीर का अशुद्ध रूप हमीर का प्रयोग मिलता है और १००० से १३०० ई० के बीच प्रायः सभी मुसलमान शाहजादा हमीर कहलाते रहे। यही कारण है कि मुहम्मद बिनसाम के सिक्कों पर घुड़सवार के दाहिने 'श्री हमीर' लिखा मिलता है।

मुसलमान होते हुए भी मुहम्मद बिनसाम ने हिन्दू देवता, के वाहन नन्दि को न हटाया जो इस्लाम मत के विपरीत था। वे कभी भी हिन्दू देवता की मूर्तियाँ किसी प्रकार के हिन्दू चिह्न को सिक्कों पर स्थान देना नहीं चाहते थे लेकिन मुहम्मद बिनसाम को भारतीय सिक्कों का अनुकरण लाभप्रद मालूम हुआ। इसलिए उसने इस्लामी दुनिया के सिक्के को पसंद न किया। गुलाम वंश के शक्तिशाली हो जाने पर अलतमश ने सिक्कों से हिन्दू मूर्ति को हटा दिया। किसी प्रकार की मूर्ति के वे उपासक न थे अतः घुड़सवार की आकृति को भी स्थान न मिल सका। कहने का तात्पर्य यह है कि इस्लाम मत का प्रभाव सिक्कों पर शनैः शनैः आ गया। भारत में मुसलमानों का आगमन धार्मिक धेय को लेकर हुआ था अतः प्रत्येक क्षेत्र में धार्मिक प्रभाव बढ़ने लगा। इस्लाम संस्कृति में सिक्कों पर शासक (अमीर) का नाम लिखना विशेष महत्वपूर्ण था। खुतवा (सामूहिक प्रार्थना) में राजा के नाम पढ़ने से वास्तविक शक्ति पाने की बात समझी जाती थी उसी सिद्धान्त से मुद्रापर नाम खुदवाना भी आवश्यक ही था। अलतमश ने पहले भारतीय चिह्नों के साथ सिक्के तैयार कराया था परन्तु पीछे इनको हटाकर सिक्कों पर अपना नाम खुदवाया और साथ में कलमा (अल्लाह ही ईश्वर है मुहमद उसका अवतार है) भी अंकित कराया। इसके अतिरिक्त सिक्कों के तौल में भी काफी परिवर्तन हुआ। उस समय मध्य एशिया से व्यापार चल रहा था इसलिए भारत में चाँदी की कमी न थी। अलतमश ने सब से बड़ा कार्य यह किया कि भारतीय रीति और 'दिल्लीवाला' को छोड़ कर १७० ग्रेन के बराबर तौल में चाँदी के सिक्के तैयार कराया और मिश्रित धातु (चाँदी तथा ताम्बा) के सिक्के ५६० ग्रेन के बराबर बनते रहे। संक्षेपमेंयह कहा जा सकता है कि अलतमश के शासन काल से मुस्लिम सिक्कों में बड़ा परिवर्तन किया गया। मुसलमान परम्परा तथा इस्लाम धर्म के कारण मुद्रा शैली तथा सिक्के की तौल में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। (अ) भारतीय शैली को त्याग देने के बाद

हिन्दू चिह्न हटा दिए गये और दोनों ओर लेख के लिए स्थान सुरक्षित किया गया। (ब) चूँकि इस्लाम मत का सब से बड़ा अधिकारी खलीफा था अतएव धार्मिकता के कारण उसका नाम भी सिक्कों पर लिखा गया। परन्तु यह ढंग सदा न रह सका। हिजरी ६१६ में बगदाद के खलीफा के मरने पर बलबन ने अमीर खलीफा के स्थान पर अपना नाम खुदवाया। फिरोज तुगलक ने अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के कारण पुनः खलीफा का नाम खुदवाया था पर वह स्थायी लक्षण न रह सका और पदवी सहित शासक का नाम ही अंकित किया जाने लगा। (स) इस्लाम मत के प्रवर्तक मुहम्मद साहब के नाम पर जो हिजरी (मुसलमान सम्वत् का नाम) चल रहा था उसी का प्रयोग मुसलमान सिक्कों पर होने लगा। (द) भारतवर्ष के सिक्कों के इतिहास में उस समय एक नयी घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। वह है सिक्कों पर टकसाल नगरों के नाम जो अंकित कराए गये। प्राचीन समय में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। यद्यपि उस समय में स्थान विशेष का चिह्न अवश्य निश्चित था परन्तु मुस्लिम सिक्कों की यह विशेषता अवश्य थी। सिक्कों पर चिह्न देखकर ही अमुक स्थान का नाम लिया जाता था परन्तु मुसलमान शासकों ने उस नगर का नाम भी स्पष्ट रूप से सिक्कों पर लिखवाना प्रारम्भ किया। यही नहीं विशिष्ट स्थानों के लिए कुछ इस्लामी नाम भी चुने गये थे जिनको वास्तविक नाम के साथ सिक्कों पर खोदा जाता था। जैसे दिल्ली के लिए 'देहली हजरत, दारुल खिलाफ़त, दारुल इस्लाम या दारुल मुल्क आदि सिक्कों पर लिखे मिलते हैं। (इनका विशेष रूप से वर्णन आगे किया जायगा)। (द) इन सिक्कों पर धार्मिकता का छाप इतना अधिक पड़ा कि सिक्कों के एक ओर इस्लाम मत की प्रतिज्ञा (जिसे कलमा कहते हैं) सदा लिखी जाती रही और यह स्थायी लक्षण बन गयी। यह सीरिया के खलीफा के धर्म युद्ध में उत्साह देने वाला नारा था जिसका अनुकरण भारत में किया गया। यद्यपि कलमा सदा बना रहा परन्तु समयान्तर में इसके अतिरिक्त कुरान की कुछ आयतें भी लिखी जाने लगीं। पृष्ठ ओर सुल्तान या बादशाह का पदवी सहित नाम, हिजरी में सम्वत् तथा टकसाल नगर (इस्लामी नाम के साथ) का नाम अंकित होने लगा था। इस प्रकार सिक्कों के दोनों तरफ लेख के अतिरिक्त और कुछ न था। यह पहले कहा जा चुका है कि मूर्ति पूजा के विरोधी होने के कारण किसी प्रकार की आकृति या मूर्ति को अंकित कराना इस्लाम मत के खिलाफ़ था यही कारण है कि दोनों तरफ लेख ही लेख दिखलाई पड़ता है।

मुसलमान काल में चाँदी के सिक्कों के लिए 'टंक' नाम का अधिक प्रयोग

मिलता है। 'टंकः' शब्द भारतीय नाम है जो विभिन्न तौल तथा धातु के सिक्कों के लिए प्रयोग होने लगा। इसीलिए महमूद गजनी के सिक्के पर 'अर्थ टंकः' लिखा मिलता है। गुलामवंश के राज्य स्थिर होने पर मुहम्मद बिनसाम ने ४६ ग्रेन के मिश्रित धातु के सिक्के चलाए थे जो 'देहली वाला' के नाम से प्रसिद्ध हुए। परन्तु यह नाम अधिक दिन तक न चल पाया। तुर्क मुसलमान शासकों ने सोने के कम सिक्के तैयार कराए थे परन्तु जो कुछ भी निकाला गया उसे पुराना नाम दीनार के नाम से ही प्रचारित किया गया। चाँदी के सिक्कों के लिए 'दिर हम' (द्रम का बिगड़ा रूप) नाम भीपाया जाता है। अधिकतर मिश्रित धातु (चाँदी ताम्बा) के सिक्के बनते रहे परन्तु ताम्बे के सिक्कों की कमी न थीं। उन्हें 'जितल' कहा जाता था। मुहम्मद बिन तुगलक ने अपने सिक्कों को 'अदिलिस' का नाम दिया था। लोदी वंश के प्रारम्भ में देश की आर्थिक दशा बड़ी खराब थी इस कारण वहलोल लोदी ने मिश्रित धातु के ही सिक्के तैयार कराए थे जिसे 'वहलोली' कहा गया है।

सिक्कों के विभिन्न नाम

मुगलवंश की स्थापना के बाद देश की आर्थिक दशा सुधरी। बाबर तथा हुमायूं के शासन काल में तो दिरहम का ही प्रचार था पर शेरशाह ने नए ढंग के सिक्के तैयार कराए थे। चाँदी के सिक्के 'रुपया' तथा ताम्बे के सिक्के 'दाम' के नाम से प्रसिद्ध हुए। रुपया शब्द इतना उचित प्रतीत हुआ कि शेरशाह के बाद मुगल शासक तथा उसके बाद इस्ट इंडिया कम्पनी ने उसी नाम को कायम रक्खा। आज तक वही शब्द 'रुपया' जनता में प्रयोग होता चला आ रहा है। अकबर के समय में प्रायः सभी सिक्के 'इलाही सिक्के' के नाम,से पुकारे जाते थे परन्तु सब धातुओं के सिक्कों का पृथक पृथक नाम था। अकबर ने सोने के सिक्कों को अधिकतर आगरा की टकसाल में तैयार कराया था। उनका आकार विचित्र था। उसके दोनों तरफ मेहराव की बनावट आ गयी थी अतएव सोने के सिक्के 'मुहर' के नाम से प्रसिद्ध हुए। विद्वानों का कहना है कि 'मुहर' नाम शेरशाह के समय से ही प्रचलित था। कहने का तात्पर्य यह है कि मुगल राज्य में 'मुहर' तथा 'रुपया' नाम ज्यों का त्यों कायम रहा। चाँदी के सिक्के 'निसार' भी कहे जाते थे जिसका शाब्दिक अर्थ है बखेरना। इसी कारण उत्सव त्यौहार तथा विवाह आदि में निसार के बाँटे जाने का वर्णन मिलता है। लेकिन सर्वसाधारण में 'मुहर' ही नाम प्रचलित था। जब इस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ में शासन आया उस समय इसे असरफी का नाम दिया गया। यही कारण है कि १८ वीं सदी के सोने के सिक्कों पर 'असरफी कम्पनी अंग्रेज बहादुर' लिखा पाया जाता

है। सोने तथा चाँदी के अतिरिक्त मुगल जमाने में ताम्बे के सिक्कों को दाम के स्थान पर 'फलुस' कहा जाता था। अकबर ने जनता के सुविधे के लिए मुद्रानीति में दशमलव रीति का प्रयोग किया। अपने शासन के पचासवें वर्ष से पूरा टंका के अतिरिक्त सिक्के के मूल्य का आधा चौथाई, आठवां तथा सोलहवां भाग वाले 'टंकी' तैयार किए जो वर्तमान समय में अठन्नी, चवन्नी, दुवन्नी तथा इकन्नी कहे जा सकते हैं। इतना ही नहीं ताम्बे के फलुस में भी दशमलव रीति के नियमानुकूल छोटे सिक्के तैयार किये गये। फलुस के दाम के आधे को निष्फी, चौथाई मूल्य के सिक्के को दमरा तथा आठवें भाग को दमरी कहते थे। यद्यपि इन सब पर सरकारी मुहर नहीं था परन्तु जहांगीर ने आधे दाम पर 'रवानी' शब्द खुदवा दिया था। दूसरे छोटे ताम्बे वालों पर 'राईज' यानी प्रचलित लिख दिया गया था। मुगल साम्राज्य की अवनति होने के साथ भारत में आन्तरिक झगड़ों तथा लड़ाइयों के कारण इस ओर किसी शासक ने विशेष ध्यान नहीं दिया। प्रत्येक प्रांत में स्थित टकसालों का सूबेदारों ने प्रयोग किया और उसी ढंग से अपने नाम के सिक्के तैयार कराए। इस्टइंडिया कम्पनी ने जनता को अपने पक्ष में रखने के लिए प्रचलित सिक्कों में अधिक परिवर्तन करने का साहस न किया। असरफी, रुपया तथा छोटे मूल्य के सिक्के उसी रूप में प्रचलित किए गए। १६ वीं सदी से मुगल शैली तथा शिरनामा को बदल आधुनिक (अंग्रेजी) ढंग काम में लाया गया।

पुराने समय से भारत में सोना, चाँदी तथा ताम्बा इन तीन धातुओं का प्रयोग सिक्के निर्माण में होता रहा। मुसलमानी शासन काल में भी इन्हीं धातुओं का प्रयोग मिलता है। यद्यपि सोना भारत में पाया जाता है

धातु तथा तौल

परन्तु सोने का प्रयोग बहुत सीमित मात्रा में था। जिस समय मुसलमान शासकों ने दक्षिण भारत पर विजय किया, उस समय दक्षिण से सोना लाकर सिक्के बनाने लगे। सर्वप्रथम उत्तर से अलाउद्दीन खिलजी की सेना ने देवगिरि को जीता था। फिर मुहम्मद बिन तुगलक ने देवगिरि पर चढ़ाई की। अलाउद्दीन की सेना के साथ एक लाख मन सोना लूट कर दिल्ली ले आया गया था इस कारण खिलजी तथा तुगलक सुल्तानों ने सोने के सिक्के चलाए। मुगल सम्राट अकबर के समय से लेकर औरंगजेब तक दक्षिण भारत पर उनका शासन बना रहा। इस लिए मुगल काल में भी सोने का प्रयोग सिक्कों के लिए होता रहा।

चाँदी सदा भारत के बाहर देशों से आती रही जिसका प्रयोग सिक्कों के लिए किया जाता था। गुलामवंश की संस्थापना होने पर मुहम्मद बिनसाम ने

उस समय प्रचलित भारतीय सिक्कों की नकल पर अपनी मुद्रानीति स्थिर की थी। सोने तथा चाँदी के सिक्के स्वतंत्र राजा की प्रतिष्ठा निमित्त थोड़ी संख्या में तैयार किए गये परन्तु बहुत समय तक मिश्रित धातु (चाँदी ताम्बा) के 'देहली वाला' सिक्का प्रचलित रहा। अलतमश के समय में मध्य एशिया से व्यापार बढ़ने पर चाँदी की अधिकता हो गयी अतएव उसने प्राचीन भारतीय शत रत्ती का (१०० रत्ती) यानी १७५ ग्रेन के बराबर शुद्ध चाँदी के सिक्के चलाए। उसके समय से चाँदी के तथा मिश्रित धातु के सिक्के अधिक संख्या में बनते रहे। १४ वीं सदी में मुहमद बिन तुगलक ने सोने तथा चाँदी के सिक्के चलाने के बाद मुद्रानीति में गम्भीर परिवर्तन किया। युद्ध तथा अशांतिमय वातावरण होने से चाँदी की कमी हो गयी अतएव उसने ताम्बे के सिक्कों पर विशेष जोर दिया। इनकी तौल १४० ग्रेन कर दी और सरकारी चिन्हित सिक्का घोषित कर दिया परन्तु वह इस मामले में असफल रहा। देश की आर्थिक अवस्था खराब हो गयी। उस समय के बाद अफगान तुर्क शासकगण धातु सम्बन्धी नीति स्थिर न कर सके। उनके सोने तथा चाँदी के कुछ सिक्के मिलते हैं परन्तु अधिकतर मिश्रितधातु के ही हैं। लोदी वंश के सुल्तानों ने मिश्रित धातु (चाँदी + ताम्बा) तथा ताम्बे को सिक्कों के लिए प्रयोग किया था। बहलोली उसके जीवित प्रमाण हैं। यद्यपि मुगल वंश की स्थापना से आर्थिक दशा सुधरी और सिक्कों के लिए शुद्ध चाँदी का प्रयोग होने लगा। बाबर तथा हुमायूं के दिरहम इसके उदाहरण हैं। शेरशाह ने तो विशुद्ध चाँदी के रुपया तथा ताम्बे का दाम तैयार कराया था। अकबर के समय से भारत धन धान्य से पूर्ण था और किसी धातु की कमी न था। दक्षिण भारत से सोना तथा विदेशों से चाँदी प्रचुर मात्रा में मिलती रही। देश में ताम्बे की कमी न था। इसलिए सोना चाँदी तथा ताम्बे के सिक्के तैयार किए गए। पिछले मुगल बादशाह तथा बाद में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इसी का अनुकरण किया।

जहाँ तक तौल का सम्बन्ध है देश की आर्थिक परिस्थिति के साथ सिक्कों की तौल घटती बढ़ती है। भारतवर्ष में तीन विभिन्न तौल का वर्णन मिलता है। चाँदी के पुराण ३२ रत्ती = ५६ ग्रेन का उल्लेख मिलता है। दूसरी तौल सुवर्ण तौल के नाम से प्रसिद्ध है जो ८० रत्ती = १४० ग्रेन के होता था। तीसरी तौल शत रत्तीका (१०० रत्ती = १७५ ग्रेन) का वर्णन मिलता है। इन तीनों अवस्था में रत्ती १·७५ ग्रेन के बराबर मानी गयी है। पहली तौल पुराने पंच मार्क सिक्कों में प्रयोग किया जाता था। सुवर्ण तौल के बराबर गुप्त सम्राटों ने रोमन तौल = १२४ ग्रेन के अतिरिक्त सिक्के तैयार कराए थे। मध्य युग के आरम्भ से

देश की आर्थिक अवस्था क्षीण होती चली गयी और सोने तथा चाँदी की कमी अनुभव करके हिन्दू राजपूत शासकों ने पुराण तौल (३२ रत्ती = ५६ ग्रेन को ही अपनाया। सोने, चाँदी तथा ताम्बे के सिक्के ३२ रत्ती के बराबर बनाए गये। सम्भवतः उस समय रत्ती १·८ ग्रेन के बराबर था अतः मध्यकालीन सिक्के ५६ ग्रेन से ६२ ग्रेन तक के पाए जाते हैं। मुहमद बिनसाम ने प्रचलित चौहान सिक्कों का अनुकरण किया और ५६ ग्रेन के बराबर 'दिल्ली वाला' तैयार कराया। आगे चलकर दिल्ली के सुल्तानों ने मिश्रितधातु (चाँदी + ताम्बा) और ताम्बे के सिक्कों में उसी तौल को स्थायी रक्खा। पांच सौ वर्षों के बाद अलतमश ने भारतीय मुद्रानीति में परिवर्तन किया। मध्य एशिया से चाँदी मिलने के कारण उसने शत रत्तीका १७१ ग्रेन के तौल को अपनाया। कुछ विद्वानों का मत है कि अलतमश के टंका की तौल ६६ रत्ती था। रत्तीकी तौल अधिक मानी गयी जिससे १७५ ग्रेन हो जाता है। (वही तौल आज तक चला आ रहा है)। अलतमश ने इस नए तौल को शुद्ध चाँदी के सिक्कों के लिए प्रयोग किया वरन् मिश्रित धातु में वही ३२ रत्ती की तौल कायम रक्खा। मुहमद बिन तुगलक के समय युद्ध के कारण आर्थिक स्थिति खराब हो गयी। चाँदी का आना प्रायः बंद हो गया इसलिए उसने उसे अदली (चाँदी सिक्का) का तौल टंका से कम कर दिया। शत रत्तीका के स्थान पर सुवर्ण तौल (१४० ग्रेन) को अदली के लिए प्रयुक्त किया। इसके विपरीत सोने के सिक्के २०० ग्रेन की तौल बराबर बनने लगे। पीछे मिश्रितधातु के सिक्कों को ६० ग्रेन के बदले १४५ ग्रेन कर दिया और वही सरकारी मुद्रा (चाँदी के स्थान पर) घोषित किया गया। उसके समय में जाली सिक्कों से खजाना भर गया था इसलिए सुल्तान को अपनी नीति बदलनी पड़ी। उसके उत्तराधिकारियों में फिरोज तुगलक ने १४१ ग्रेन को कायम रक्खा। बहलोल लोदी ने देश की बुरी अवस्था को देखा। तैमूर की चढ़ाई के कारण धन नष्ट हो गया था अतः उस सुल्तान ने मिश्रितधातु के सिक्के १४५ ग्रेन के बराबर बनवाया। मुगल सम्राट बाबर तथा हुमायूं ने भी ३२ रत्ती (६२ ग्रेन-७० ग्रेन) का दिरहम तथा १४५ ग्रेन का ताम्बे का सिक्का टकसालों में तैयार कराया था।

शेरशाह के साम्राट होते ही मुद्रानीति में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। शुद्ध चाँदी तथा ताम्बा धातुओं के सिक्के बनने लगे। मिश्रित धातु का प्रयोग बंद कर दिया गया। शेरशाह ने १८० ग्रेन के आसपास (१७८·२५ ग्रेन) तौल में चाँदी का रुपया तथा ३२१·५ ग्रेन तौल में ताम्बे का दाम तैयार कराया। मुगल बादशाह अकबर ने इसका स्वागत किया पर वाणिज्य की उन्नति

के लिए दशमलव रीति का समावेश किया। रुपया के आधा, चौथाई, आठवां भाग तथा सोलहवा भाग तौल के बराबर सिक्के तैयार कराए गये। सोने के मुहर १७५ ग्रेन की तौल पर बनते रहे। इन्हीं मुगल सम्राटों के समय मुगल संस्कृति चरम सीमा को पहुँच गयी थी। जहाँगीर के समय से विदेशी व्यापार बढ़ने लगा। उसने मुहर की तौल बढ़ाकर २०४ ग्रेन और फिर २१२ ग्रेन कर दिया। रुपया के तौल में भी कुछ वृद्धि की थी। परन्तु दो पीढ़ियों के बाद परिस्थिति बदल गयी। औरंगजेब के शासन काल मे चाँदी की कीमत पहले से कम हो गयी और ताम्बे का बढ़ गया। इस लिए दाम (फलुस) की तौल २२० ग्रेन के बराबर कर दी गयी तथा आधा टंका पूरे रुपये के बराबर घोषित किया गया। यही कारण है कि औरंगजेब के प्रत्येक टकसाल से अनगिनत चाँदी के ही सिक्के तैयार किए गये। ताम्बे के सिक्कों से चाँदी की मुद्रा की संख्या कई गुनी होगी। औरंजेब के बाद मुगल बादशाहों के समय में सोने तथा चाँदी के सिक्के अधिक संख्या में तैयार होते रहे। उन लोगों ने पुरानी तौल को अपना लिया था और उसी के नकल पर १८० ग्रेन के बराबर तौल में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अशरफी तथा रुपया बनाना शुरू किया। मुगल शासक फरुख-सियर के समय से ही कम्पनी मुगल सिक्के तैयार करने में लगी थी। उन्हें १७४२ ई० में सिक्के तैयार करने की आज्ञा मिल गयी और १७६५ ई० से बंगाल के टकसालों पर अधिकार कर लिया। उनकी बनावट साफ होती गयी। किनारे चिकने बनने लगे। १८३५ से कम्पनी ने अपना स्वतंत्र सिक्का चलाया था। वही ढंग और तौल आज तक चला आ रहा है।

सिक्कों पर काल का उल्लेख

मुसलमान कालीन सिक्कों की यह विशेषता रही है कि सभी सिक्कों पर काल (समय) का उल्लेख पाया जाता है। पुराने समय में भी शक क्षत्रप के चाँदी के सिक्कों पर शकसम्वत् में वर्ष लिखा जाता रहा जिसका अनुकरण गुप्तों के सिक्कों पर मिलता है। परन्तु वह आकस्मिक घटना सी बात थी। अन्य किसी तरह के सिक्कों पर वर्ष काल का उल्लेख नहीं पाया जाता है। दिल्ली के सुल्तान ईस्लामी वर्ष हिजरी का प्रयोग करते रहे। भारत के गुलाम वंश से लेकर मुगल वंश तक सभी सुल्तान और बादशाहों ने हिजरी का प्रयोग किया है जो ई० सन् ६०२—३ में प्रारम्भ हुआ था। भारत के सभी मुसलमान सूबेदारों ने भी स्वतंत्र होने पर अपने सिक्कों पर हिजरी का ही प्रयोग किया था। अकबर के इलाही सिक्के मिले हैं जिन पर बादशाह के शासन वर्ष का उल्लेख पाया जाता है। उन पर ईरानी सौर मास भी लिखा मिलता है।

जहाँगीर के सिक्कों पर भारत के राशियों का चित्र मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि वे उस मास में तैयार किए गए।

मुस्लिम सिक्कों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन पर दूसरी ओर टकसाल नगर का नाम खुदा रहता है। यह ढंग अपने ढंग का अनूठा है और भारत के अन्य सिक्कों (पुराने या वर्तमान) पर नहीं मिलता।

टकसाल

नाम के साथ टकसाल घरों के अपने चिन्ह होते थे जो सिक्कों पर अंकित किए जाते थे। कुछ विद्वान इसे आभूषण मात्र समझते हैं परन्तु बहुमत टकसाल चिन्ह ही के पक्ष में है। दिल्ली सुल्तान तथा मुगल सिक्कों पर विभिन्न तरह के चिन्ह पाए जाते हैं। भारत की मुस्लिम रियासतें भी किसी न किसी प्रकार का टकसाल चिन्ह रखती थीं जैसे अवध के नवाबी सिक्कों पर विभिन्न आकार के रेखा चित्र या मछली पायी जाती है।

साधारणतः टकसाल घर प्रधान नगर तथा राजधानी में बनवाए जाते थे। पहले गुलाम वंश के शासकों ने दिल्ली में टकसाल घर बनाया। धीरे धीरे ज्यों प्रांत जीतते गये उस प्रदेश के प्रधान नगर में टकसाल स्थापित किया। उदाहरणार्थ अलाउद्दीन ने दक्षिण में देवगिरि जीतने के बाद ही वहाँ टकसाल घर खोला था। मुहम्मदबिन तुगलक की भी यही हालत रही। लोदी वंश ने दिल्ली में ही उसे सीमित कर दिया था।

मुगल साम्राज्य की स्थापना के साथ टकसाल घरों की संख्या बढ़ने लगी। बाबर तथा हुमायूं ने लाहौर, दिल्ली तथा आगरा को मुख्य केन्द्र मानकर उन स्थानों से सिक्के तैयार कराए। शेरशाह के बादशाह होने पर शासन प्रबंध अच्छे ढंग से आरम्भ हुआ। टकसाल घरों को बढ़ाने की योजना शेरशाह को सूझी। सारे राज्य को प्रांतों में बांटा गया और प्रायः प्रत्येक सूबे में एक टकसाल खोला गया। अकबर ने इस योजना को और भी आगे बढ़ाया। कुल ७६ टकसाल अकबर ने तैयार किया था। मुगल साम्राज्य में दो सौ टकसाल स्थापित किए गये थे परन्तु सभी सदा काम नहीं करते थे।

सब से बड़ी विचित्रता नाम के साथ जुड़े इस्लामी नामों की है जो टकसाल के नाम से मिलाकर सिक्कों पर खोदे जाते थे। उसे टकसालों की प्रतिष्ठा सूचक पदवी कहना उचित होगा। दिल्ली को देहली हजरत, दारुल खिलाफत, दारुल मुल्क तथा दारुल इस्लाम (मुख्य नगर या इस्लाम का घर आदि) की पदवी दी गयी थी। लाहौर दारुल सलतनत के नाम से प्रसिद्ध था। अकबर के चाँदी के सिक्कों पर यह पदवी अहमदाबाद के लिए भी प्रयोग की गयी है। शेरशाह के रुपयों पर शेरगढ़ को 'उर्फ हजरत देहली' कहा गया है। मुगल

शासन काल में बड़े नगरों को शासक के नाम पर नया नाम करण किया जाता था। दिल्ली के लिए शाहजहाँना बाद तथा आगरे के लिए अकबराबाद का भी उल्लेख मिलता है। संक्षेप में यह प्रगट होता है कि मुसलमान शासकों के समय में सिक्कों पर अपने नाम के साथ प्रतिष्ठा सूचक पदवी के सहित टकसाल का नाम अंकित कराने की परिपाटी चल पड़ी थी। यही उनकी विलक्षणता है।

पुराने सिक्कों से मुसलमान सिक्कों की बनावट प्रायः एक सी थी। तौल में अन्तर होने के कारण मध्य कालीन सिक्के बड़े आकार के दिखलाई पड़ते हैं परन्तु दोनों के तरीकों में कोई भेद नहीं पाया जाता। इतना अवश्य बनावट तथा चिंह परिवर्तन दिखलाई पड़ता है कि मुस्लिम सिक्के भारतीयता को छोड़ रहे हैं। मुसलिम सिक्कों का आकार, गोल वर्गाकार, मेहराबदार तथा कोणयुक्त था। प्रारम्भ में मुहम्मद बिनसाम ने गहड़वाल सिक्कों के ढंग पर सोनेका सिक्का तैयार कराया था जिसपर लक्ष्मी बैठी हुई हैं। यह सिक्का केवल सुल्तान के शक्ति का प्रतीकमात्र था। बाद में उसने चौहान चाँदी के सिक्के का अनुकरण किया जिसपर 'नन्दि तथा घुड़सवार' का चिन्ह पाया जाता है। मुसलमान मूर्तिनाशक थे अतएव हिन्दू मूर्तियों को कब तक देख सकते थे। इसी कारण क्रमशः हिन्दू चिन्ह सिक्कों से हटा दिया गया और दोनों तरफ लेख ही खुदे जाने लगे। अलतमश के चाँदी के सिक्कों से भारतीय चिन्ह सदा के लिए हटा दिया गया। परन्तु यह धार्मिक विचार मिश्रित धातु के सिक्कों के लिए न था। सर्व प्रथम शिव के वाहन नन्दि को हटाया। घुड़सवार चिन्ह वाला सिक्का अलतमश से नासिरुद्दीन के समय तक बनता रहा। १३वीं सदी में पश्चिमी भारत पर आक्रमण करने वाले विदेशियों ने नन्दि तथा घुड़सवार 'चिन्ह को कायम रक्खा। दिल्ली के सुल्तान बलबन के समय से सिक्के पाक समझे गये और उसी समय से मुसलमान सिक्कों पर दोनों ओर लेख के सिवाय कोई आकृति नहीं पायी जाती। जहाँ तक इतिहासज्ञों को पता है अकबर तथा जहाँगीर दोनों पर हिन्दू धर्म का प्रभाव था अतएव उसके मुहरों पर पूरा चित्र तैयार कराया गया था। एक सिक्के पर पृष्ठ ओर लेख के बीचोबीच सूर्य की आकृति खुदी है। जहाँगीर के शासन काल में सिक्कों की बनावट सुन्दरता की चरम सीमा को पहुँच गयी थी। उसने अपने रुपयों पर राशियों की विभिन्न आकृतियों (शेर, भेड़ा, बैल, बिच्छू, तराजू तथा योद्धा आदि) को सुन्दर रीति से खुदवाया था। इस के बाद मुगलवंश के शासकों ने किसी भी आकृति को स्थान न दिया। १८वीं सदी में अवध के नवाबों ने मछलीदार रुपया तैयार कराया था जिससे प्रगट होता है कि अवध के सिक्कों पर मछली का चिन्ह अवश्य था

शासन में भाषा का प्रश्न एक जटिल समस्या समझी जाती है। इतिहास के विद्यार्थी इस बात को जानते हैं कि देश जीतकर विजेता अपनी भाषा का प्रचार करता है। राजनीति में विजेता की भाषा का प्रचार ही सर्वोपरि माना जाता है। अंग्रेजी इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इस्लाम मतावलम्बी अरब से आए थे अतएव अरबी का विस्तार करना उनका कार्य था। सिक्के राजा के प्रतीक समझे जाते हैं तथा सर्वसाधारण तक पहुँचते हैं अतएव उनपर किस भाषा में लेख हो यह प्रश्न शासक के सामने आ जाता है। स्वभावतः मुसलमान बादशाहों ने भारत में राज्य स्थापित कर अरबी का प्रयोग प्रारम्भ किया। गुलामवंश के कई राजाओं ने अरबी के साथ देवनागरी लिपी में सुल्तान का नाम लिखने की आज्ञा जारी किया था। यह एक राजनैतिक चाल थी और प्रजा को खुश करने का एक मार्ग था अथवा राजा के नाम साफ तौर से पढ़ने का यही माध्यम था। भारत के सुल्तान अरब के खलीफा के अधीन अपने को समझते थे अतएव उसका नाम भी पहले खुदवाया जाता था। ६१६ हिजरी (१२५८ ई०) में बगदाद के खलीफा के मर जाने पर बलवन ने लेख को बदलवा दिया और शासक का नाम दोनों तरफ अंकित होने लगा। मुस्लिम सिक्कों में परिवर्तन का श्रेय बलवन को है। इसी ने हिन्दू चिह्न तथा खलीफा के नाम को बंद करा दिया। तुगलक वंश में मुहमदबिन तथा फिरोज ने कुछ समय तक खलीफा के नाम को भी पुनः अपने सिक्कों पर स्थान दिया था। पिछले गुलाम वंश के सुल्तान अरबी में अपना नाम टकसाल तथा तारीख एक तरफ खुदवाते और ऊपर ओर इस्लाम मत की प्रतिज्ञा (कलमा) खुदा रहता था। प्रत्येक सिक्का पर बीच भाग में कलमा को लिखवाना आवश्यक था। सारे मुस्लिम सिक्कों पर यह एक स्थायी चीज़ दिखलाई पड़ती है। मुगल बादशाहों के समय कलमा के चारो तरफ किनारे पर कुछ पद्य की पंक्तियाँ भी खुदवा दी जाती थीं। दूसरी ओर पदवी सहित राजा का नाम टकसाल का नाम तथा हिजरी सम्वत् अंकित किया जाता था। लेख पहले अरबी में पीछे ईरानी भाषा में लिखे जाते थे। भाषा के साथ उसी की लिपि का भी प्रयोग होता था। यों तो सर्वप्रथम मुहमूद ने अरबी कलमा का अनुवाद संस्कृत में लिखवाया था परन्तु वह व्यक्तिगत बात थी। उसी प्रकार देवनागरी का प्रयोग अलाउद्दीन मुहम्मद शाह (१२४१-४६ ई०) तक होता रहा।

सिक्कों पर लेख (भाषा + अक्षर)

भारत के पुराने सिक्कों के देखने से पता चलता है कि सिक्कों पर अत्यन्त सुन्दर रीति से शासक की आकृति तैयार की जाती थी। लिखने का भी ढङ्ग अच्छा था। इसका मूल कारण यह था कि राज्य में ललित कला की उन्नति से

सिक्कों पर भी सुन्दर कारीगरी की जाती थी। मध्य युग के आरम्भ से कई सदियों तक सिक्कों पर कला प्रदर्शन का आभास तक नहीं मिलता।

कलापूर्ण लिखने की शैली

कला के नष्ट हो जाने से सर्वत्र उसका प्रभाव पड़ा। राजपूतों के सिक्कों पर लक्ष्मी की आकृति इतनी भद्दी होगयी है कि साधारण व्यक्ति कुछ समझ नहीं सकता। यही दशा नन्दि तथा घुड़सवार' की भी है। उसी सिक्कों की नकल पर मुस्लिम (सुल्तान) सिक्कों में कला का नामोनिशान नहीं है। नन्दि तथा घुड़सवार पहचाने नहीं जाते। मुगल साम्राज्य की सांस्कृतिक विकास के साथ कला की भी चरम उन्नति हुई। चूँकि इस्लाम मत में मूर्ति के लिए कोई स्थान नहीं था इसलिए वास्तु (भवन निर्माण) तथा सुन्दर लिखावट की कला में कारीगरों ने अपनी निपुणता का परिचय दिया। सिक्कों के दोनों तरफ लिखने के अतिरिक्त अन्य आकृतियों को अधिक स्थान न मिल पाया, इसलिए कलाकारों ने पद्य, कलमा तथा पदवी सहित बादशाह का नाम बड़े सुन्दर रीति और भव्य अक्षरों में लिखा है।

तेरहवां अध्याय

दिल्ली सुल्तानों के सिक्के

बारहवीं सदी के अंत में हिन्दू शासन का अंत करके मुहमद बिनसाम ने मुसलमान राज्य की नींव डाली। १२०६ ई० से १५२६ ई० तक पांच वंश के सुल्तानों ने राज्य किया। पहले तीन तुर्क वंशी शासकों ने उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व तक राज्य विस्तार किया था। चौथा वंश अरब वालों के सम्बन्ध से सैयद कहलाया और थोड़े दिनों (१४१४-१४५१) तक शासन करता रहा। अंतिम लोदी वंश अफगान या पठान वंश के नाम से प्रसिद्ध थे जिसकी एक शाखा (सूर वंश) में शेर शाह पैदा हुआ था। इन सुल्तानों का इतिहास देश का कोई उज्ज्वल स्वरूप सामने नहीं रखता है। सभी भोग विलास का जीवन व्यतीत करते रहे। राज्य का वास्तविक भार उनके विश्वासपात्र मन्त्रियों पर रहता था जो विद्रोह को शांत कर सुल्तान को स्वतंत्र रूप से जीवन निर्वाह में सहायता करते थे। जिस किसी व्यक्ति (मन्त्री या सम्बन्धी) की शक्ति बढ़ जाती थी वही सुल्तान बन जाता था। यह सर्वथा सम्भव न था कि पिता के बाद पुत्र ही गद्दी का मालिक हो। शासक को मार कर कोई राजा बन सकता था और ऐसा ही होता रहा। राज्य पाने के जो कुछ भी साधन थे उसके विवेचन में जाना हमारा धेय नहीं है। यहाँ इतना कहना पर्याप्त है कि शासक बनते ही दिल्ली के सुल्तान सिक्के तैयार कराते क्योंकि वह स्वतंत्रता का प्रतीक था। उनके समय में देश की आर्थिक स्थिति के अनुसार शुद्ध अथवा मिश्रित धातु के सिक्के चलाए गए थे।

यद्यपि मुहमद बिनसाम गोर वंश का राजकुमार था तौभी भारत में शासन स्थापित कर उसने भारतीय सिक्कों का अनुकरण करना हितकर समझा। अफगानिस्तान में ईरानी सिक्के प्रचलित थे पर गोर सुल्तान ने चौहान सिक्कों के ढङ्ग पर अपना सिक्का तैयार कराया। उसके सिक्के मिश्रित धातु—चाँदी तथा ताम्बा के ५६ ग्रेन की तौल बराबर मिलते हैं जो 'देहली वाला' के नाम से प्रसिद्ध हैं। मिश्रित धातु के सिक्कों पर

अग्रभाग	पृष्ठभाग
नन्दि की आकृति और चारो	चौहान ढङ्ग के घुड़सवार तथा

तरफ नागरी में श्री महमद साम खुदा है | दाहिनी ओर नागरी में श्री हमीर लिखा है ।

मुहमदगोर ने कन्नौज के जीतने पर गहड़वाल ढङ्ग के सोने के सिक्के तैयार कराया था जिनपर लक्ष्मी की आकृति पायी जाती है। पृष्ठ ओर नागरी अक्षरों में श्री मुहमद बिनसाम लिखा है। अरबी लेख इन सिक्कों पर नहीं पाया जाता। गुलाम वंश के तीसरे सुल्तान अलतमश के समय में दिल्ली का प्रभाव हिन्दुस्तान से बाहर फैल गया था इस कारण बगदाद के खलीफा ने उसका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया था। उसकी ओर से अलतमश को सब अधिकार मिल गये थे। इसी लिए सुल्तान ने एक ओर बगदाद के खलीफा का नाम खुदवाया और दूसरी ओर अलतमश का नाम अंकित कराया। राजा स्वयं घोड़ेपर सवार दिखलाया गया है। यह ढङ्ग उसके उत्तराधिकारियों के समय में भी काम में लाया गया। सब सिक्कों पर इस तरह का 'खलीफा के राज्य में' लेख मिलता है। अलतमश ने अन्य सिक्कों पर एक ओर कलमा तथा दूसरी ओर अपना नाम लिखवाया था। ये लेख वृत्त में अंकित किये जाते थे। सिक्कों में वृत्त के बाहर (किनारेपर) टकसाल का नाम तथा तिथि खुदवाने की प्रथा अलतमश ने प्रारम्भ की। सबसे विचित्र बात यह है कि इसी सुल्तान ने भारतीय शैली को समाप्त कर मुस्लिम ढङ्ग के सिक्के तैयार कराए जिनकी बनावट, लिखावट तथा तौल सभी बातें विभिन्न थीं। इसने १७५ ग्रेन (१०० रत्ती) के बराबर तौल में चाँदी के सिक्के प्रचलित किया जो १६ वीं सदी तक बराबर चलते रहे। इतनी नवीनता केवल चाँदी के सिक्कों में दिखलाई पड़ती है वरन् अलतमश ने मिश्रित धातु तथा ताम्बे की मुद्रा के लिए वही पुराना ढङ्ग और तौल (५६ ग्रेन) को कायम रक्खा। अजमेर के समीप शासन करने वाले राजपूत राजा के चाहड़देव को परास्त कर अलतमश ने उसके नाम के साथ सिक्का चलाया। नन्दि तथा घुड़सवार के चिह्न के साथ नागरी अक्षर में एक ओर असावरी श्री समसीरलदेव तथा दूसरी ओर श्री चाहड़देव लिखा मिलता है। यह उसकी राजनैतिक चाल थी। उसके बाद सुल्ताना रजिया ने उसी ढङ्ग के टंका (चाँदी का सिक्का) को तैयार कराया था। उसके राज्य में लखनौती (गौड़, बंगाल) में टकसाल घर स्थापित किया गया था। नासिरुद्दीन ने टंका के बराबर तौल (१७५ ग्रेन) में सोने का टंका भी तैयार कराया था जो उसी की विशेषता है। ये सिक्के प्रसिद्ध न हो सके। अन्य धातुओं (मिश्रित या ताम्बा) के सिक्कों के लिये पुरानी भारतीय ढङ्ग तथा तौल (५६ ग्रेन) को प्रयोग में लाते रहे। इसके बाद मिश्रित धातु के सिक्कों पर से भी भारतीय चिह्न (नन्दि तथा घुड़सवार) हटा दिये गये जिसका श्रेय ग्यास

सुद्दीन बलबन को है। इस तरह के सिक्कों पर एक तरफ अरबी में सुल्तान का नाम तथा दूसरी ओर नाम नागरी में पाया जाता है। यही नहीं बलबन ने सोने चाँदी के सिक्कों पर खलीफा का नाम सदा के लिए हटाकर अपना नाम अंकित कराया। उस समय से नयी प्रथा को सभी ने स्वागत किया। बलबन के समय से लेकर गुलाम वंश के अंत तक (१२६० ई०) सभी सुल्तानों ने मिश्रित धातु के सिक्कों को अधिक संख्या में तैयार कराया था। छोटे पैमाने (एक आना, दो और आठ आना) के सिक्कों का प्रचार न हो पाया जिन्हें अधिकतर दान या उपहार में देने के लिए तैयार किया जाता था। बलबन के पौत्र कैकुबाद के व्यसनी होने के कारण खिलजी वंश का अधिकार हो गया। १२६५ ई० में अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली की गद्दी पर बैठा। उसने मुहम्मद शाह के नाम से सिक्के तैयार कराए। खिलजी वंश का प्रताप दक्षिण भारत पर भी फैल गया। दक्षिण के प्रदेशों पर विजयी होने के कारण अलाउद्दीन खिलजी ने 'दूसरे सिकन्दर' की पदवी धारण की जो उसके टंका पर अंकित मिलता है। यही नहीं, अलाउद्दीन ने देवगिरि (दौलताबाद) में भी टकसाल घर स्थापित किया जहाँ से सोने के सिक्के (दीनार) टंका के समान तैयार होने लगे। ये सिक्के वर्गाकार थे जिसकी बनावट को कुतुबुद्दीन मुबारक शाह ने चाँदी, ताम्बा तथा मिश्रित धातु के सिक्कों में अनुकरण किया था। अलाउद्दीन के सिक्कों पर एक ओर अरबी में सुल्तान का नाम तथा दूसरी ओर "दूसरे सिकन्दर" की पदवी तथा टकसाल का नाम (व हजरत दिल्ली) खुदा मिलता है। मुबारक शाह के सिक्के खिलजी वंश में सबसे सुन्दर समझे जाते हैं। उसके सिक्कों पर अहंकार युक्त लम्बी उपाधियाँ मिलती हैं। वह अपने को इस्लाम का प्रधान तथा पृथ्वी और स्वर्ग के स्वामी का खलीफा कहता था। यही सिक्कों पर अंकित कराया। दूसरी ओर सुल्तान का नाम (मुबारक शाह) बीच में खुदा है और चारो तरफ उपाधिसहित टकसाल का नाम लिखा मिलता है। मुबारक शाह के चाँदी तथा सोने के सिक्कों की तौल बराबर (१७० ग्रेन) है परन्तु मिश्रित धातु के सिक्के ५६ ग्रेन के ही मिलते हैं।

इन दो राजवंशों के समय में सिक्कों की कीमत तथा अनुपात जानने का कोई साधन नहीं है परन्तु इब्नबतूता के कथन से पता चलता है कि चाँदी और सोने के सिक्कों में १०:१ का क्रमशः अनुपात था। ६४ ताम्बे के जितल एक टंका के मूल्य बराबर समझे जाते थे। मिश्रित धातु के सिक्कों में ७२ फी सदी चाँदी मिलती है। अलाउद्दीन के समय में छोटी मूल्य के सिक्के एक आना, दो आना

चार आना के सदृश तैयार कराए गये थे। इसके अतिरिक्त खिलजी सुल्तानों ने दोनों तरफ अरबी लेख को फैला दिया था। अलाउद्दीन के मिश्रित धातु के सिक्कों पर सर्व प्रथम तिथि (सन्) का उल्लेख पाया जाता है। उसके पौत्र मुबारक ने गोलाकार के ढङ्ग को छोड़ कर वर्गाकार सिक्के भी चलाया था। उसके समय में लिखने की शैली सबसे सुन्दर मानी जाती है।

मुबारक को उसके दरबारी नासिरुद्दीन खुशरू ने मार डाला जो गाजी बेग तुगलक द्वारा (१३२० ई० में) परास्त किया गया। इस तरह चौदहवीं सदी के आरम्भ में तुगलक राज्य की नीव पड़ी। तुगलक वंश का पहला शक्तिशाली सुल्तान मुहम्मद शाह तीसरा था जो मुहमद शाह बिन तुगलक के नाम से प्रसिद्ध है। मुद्रा शास्त्र के ज्ञाता उसे सिक्का चलाने वालों में राजकुमार (यानी श्रेष्ठ) कहते हैं। यह तो सिक्कों के देखने से पता लगता है कि मुहमद शाह तीसरे के सिक्के पूर्व प्रचलित सिक्कों से कई बातों में उत्तम हैं। उनकी बनावट तथा लिखने की कला सबसे श्रेष्ठ है। मुहमद बिन तुगलक ने सोने के अधिक सिक्के तैयार कराये थे कारण यह था कि दक्षिण भारत पर अधिकार करने से सोना अधिक मात्रा में मिल गया था। उसने कई मूल्य के सिक्के बनवाए। सिक्कों पर लेख लिखवाने मे वह विशेष ध्यान रखता था जिससे उसके भिन्न भिन्न कार्यों के विषय में जानकारी होती है। देश की आर्थिक स्थिति खराब हो जाने पर मुहमद शाह ने नए ढङ्ग के सिक्के निकाले जो कृत्रिम सिक्के कहे जाते हैं। ये सभी उस सुल्तान की मुद्रानीति तथा नवीन विचार धारा के द्योतक हैं। इस शासक के सिक्कों के अध्ययन से गम्भीर ऐतिहासिक विषयों पर प्रकाश पड़ता है। उनमें कई तरह की बनावट मिलती है जो कला की दृष्टि से उत्कृष्ट माना गया है। उसके सिक्के यह बतलाते हैं कि देश पहले धनधान्य से पूर्ण था परन्तु शासक के अंतिम दिनों में सब कुछ क्षय हो गया। मुहमदबिन तुगलक ने दीनार की तौल बढ़ा कर २०० ग्रेन कर दिया और उसने बुरे दिन आने पर पीतल के सिक्कों को कानूनी मुद्रा घोषित कर दिया था। इसके समय में सोने के सिक्का का मूल्य कम होकर चाँदी से १:७ के अनुपात में आ गया था। चांदी (टंका) तथा ताम्बे का अनुपात १:६४ का बना रहा। मुहमदबिन तुगलक ने अदली नाम का नया चांदी का सिक्का चलाया जो ८० ताम्बे के जितल के मूल्य बराबर निश्चित किया गया था। सुल्तान ने आधा टंका (३२ जितल) चौथाई टंका (१६ जितल) तथा आठ जितल के मूल्य बराबर सिक्के भी प्रचलित किया था। मुहमद बिन तुगलक के कई प्रकार के सिक्के पाए जाते हैं। सोने के सिक्कों पर एक कलमा लिखा रहता है और टकसाल का नाम भी कलमा के वृत्त बाहर

किनारे पर अंकित मिलता है। दूसरी ओर पदवी सहित सुल्तान का नाम उल्लिखित है। चांदी के कमी के कारण सुल्तान ने टंका की तौल (१७५ ग्रेन) घटा कर १४० ग्रेन के बराबर चांदी का नया सिक्का अदली का प्रचार किया। राजकीय कोष खाली हो जाने के कारण सुल्तान मुहमदबिन तुगलक ने चांदी के बदले पीतल के सिक्के तथा मिश्रित धातु के बदले ताम्बे के सिक्के १४० ग्रेन के बराबर तौल में तैयार कराया था। इस नीति से उसे कोई लाभ न हो सका अतएव सुल्तान को पुराने तौल को मानना पड़ा। १७५ ग्रेन का टंका तथा ५६ ग्रेन का देहलीवाल सिक्कों की तरह मिश्रित धातु का सिक्का पुनः निर्माण करना पड़ा। हिजरी ७४० के बाद मुहमदबिन तुगलक ने सिक्कों से अपना नाम हटा लिया और सभी सिक्कों पर बगदाद के खलीफा अल मुस्तफी तथा खलीफा अलहकीम के नाम अंकित कराया। इसका एक मात्र कारण यह था वह अपने शासन का बाहरी शासकों से समर्थन चाहता था। धार्मिक जगत में सर्व मान्य खलीफा को इस मुहमदबिन तुगलक ने इस तरह अपना पृष्ट पोषक बनाया। उसने अधिकार पत्र पाने के निमित्त एक शिष्ट मण्डल भी मिश्रदेश (काहिरा नगर) को भेजा था। मुहमदबिन तुगलक के अंतिम समय तक सभी सिक्कों पर खलीफा मुस्तफी के उत्तराधिकारी अलहकीम का नाम चलता रहा। इस तरह के सिक्कों को 'खिलाफती' कहते हैं।

तुगलक वंश के दूसरे प्रसिद्ध राजा फिरोज को शाही खजाना भरा मिला था। इसने अपने सैंतीस वर्ष के शासन काल में सार्वजनिक कार्य के लिए बहुत धन व्यय किया। फिरोज तुगलक के समय में सिक्कों की अधिकता थी। छोटी मूल्य के सिक्के भी खूब चलते रहे। उसके छः तरह के सोने के सिक्के मिले हैं। फिरोज ने भी धार्मिक भावना से प्रेरित होकर पूर्व प्रचलित ढंग पर खलीफा के नाम को एक ओर लिखवाया और दूसरी ओर अपना नाम खुदवाया था। वह अपने को खलीफा का दाहिना हाथ तथा अधिनायक कहता था। ऐसा ही उल्लेख सिक्कों पर मिलता है। चांदी के कमी के कारण १४४ ग्रेन के बराबर मिश्रित धातु का सिक्का फिरोज ने बनवाया था। अंतिम दिनों में उसके पुत्र का नाम भी सिक्कों पर अंकित मिलता है। फिरोज के बाद तुगलक सुल्तान भी इसी तरह के सिक्के चलाते रहे जिसमें चांदी का अनुपात घटता गया। उन लोगों ने फिरोज की नकल की। फिरोज के मरने पर भी चालीस वर्षों तक उसके (मिश्रित धातु) सिक्के अदलबदल (मुद्राविनिमय) के साधन बने रहे। उसके वंशजों के सिक्कों को दौलतखां लोदी तथा खिजरखां तैयार कराते रहे जिन्हें अपने नाम को अंकित

फलक सं० १४

कराने की इच्छा न थी और स्वयं सुल्तान होना भी न चाहते थे। देश की आर्थिक स्थिति खराब होती गयी तथा सुल्तान राज्य में शांति कायम न रख सके। हिजरी ८०१ में तैमूर ने दिल्ली पर चढ़ाई कर दी। दिल्ली में जो कुछ जीवन था वह समाप्त हो गया। तैमूर के चले जाने पर भी कई वर्षों तक अशांति मची रही। अराजकता का अन्त न हो पाया। १४१२ ई० में तुगलक सुल्तान महमूद के मरने पर दरबार के प्रधान सभासदों (सैयद वंश) के हाथ शासन की बागडोर आ गयी। परन्तु उन लोगों ने फिरोज तुगलक के टंके का प्रयोग किया और तारीख (हिजरी) बदल कर वैसा ही सिक्का तैयार करने लगे। सैयाद वंश के अंतिम काल में सुल्तान मुबारक ने अपना नाम सिक्कों पर खुदवाया था। कुछ ही समय बाद (१४४३ ई० में) अफ़गान शासक बहलोल लोदी ने दिल्ली पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। उसके समय में राजधानी की खोई प्रतिष्ठा वापस आयी। स्वतंत्र होने वाले सूबेदार फिर से अधीन बनाए गये। बहलोल ने जौनपुर को जीतकर वहाँ टकसाल घर बनवाया। इस सुल्तान ने 'बहलोली' नाम की मिश्रितधातु के सिक्के (१४५ ग्रेन तौल में) तैयार करवाये थे जो लोदी वंश में कानूनी सिक्के माने गये। देश की दुरीदशा के कारण लोदी सुल्तान चाँदी या सोने के सिक्के बनवाने में असमर्थ थे। मिश्रितधातु के सिक्कों में भी चाँदी तथा ताम्बे का कोई निश्चित अनुपात न रहा। इनमें १८·४ ग्रेन चाँदी तथा १२१·६ ग्रेन ताम्बा मिला रहता था। उस समय ७० बहलोली एक टंका के बाबर मूल्य में माना जाता था। लोदी वंश के सिक्कों पर एक ओर खलीफा का नाम तथा दूसरी ओर सुल्तान और टकसाल घर दिल्ली का नाम खुदा मिलता है। बहलोल अपने को खलीफा का नायक कहता रहा। १५२६ ई० में पानीपत के मैदान में बाबर ने इब्राहिम लोदी को परास्त कर भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली।

दिल्ली सुल्तानों के सिक्कों पर टकसाल घर के नामों से उनके राज्य सीमा का ज्ञान होता है। कभी उन शहरों के वास्तविक नाम के अतिरिक्त पदवी लिखी रहती है। प्रायः सभी शासकों के समय में दिल्ली में टकसाल घर कार्य करता रहा जिसके लिए हजरत दारूल खिलाफत दारूल मुल्क तथा दारूल इस्लाम आदि पदवियाँ पायी जाती हैं। अलतमश के समय में लखनौती (गौड़) का नाम भी सिक्कों पर अंकित मिलता है जिससे प्रगट होता है कि बंगाल तक गुलाम वंश का राज्य विस्तृत हो गया था। बलबन ने पंजाब में भी व्यास नदी किनारे टकसाल घर खोला। सबसे प्रथम दक्षिण भारत के देवगिरि का नाम अलाउद्दीन खिलजी के सिक्कों पर

टकसाल घर

मिलता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि अलाउद्दीन ने दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त किया था। मुहमदबिन तुगलक के सोने के दीनार यही बतलाते हैं कि सुल्तान ने भी देवगिरि पर अपनी विजय पताका फहरायी थी उसके फलस्वरूप उसे अधिक सोना मिला और शासक ने सिक्के की तौल बढ़ाकर २०० ग्रेन कर दी। लोदी वंश के समय में जौनपुर के टकसाल घर से भी सिक्के तैयार होते रहे। सारांश यह है कि टकसाल घरों की संख्या में वृद्धि करने की ओर सुल्तानों का ध्यान न था परन्तु देश की आर्थिक स्थिति के अनुकूल सिक्कों के निर्माण में व्यस्त रहे।

शेरशाह के सिक्के

जैसा कहा गया है कि दिल्ली में शासन करने वाले सुल्तान अपने पूर्व प्रचलित सिक्के का अनुकरण करते गये थे और कुछ ने नये रीति (बनावट तथा तौल) के सिक्के भी तैयार कराये थे। धातु के अनुपात तथा मूल्य में देश की आर्थिक परिस्थित का प्रभाव पड़ता रहा। १५२६ ई० में मुगल साम्राज्य की नीव पड़ने पर भी किसी विशेष प्रकार के सिक्कों का जन्म न हो सका। बाबर सैनिक बल से दिल्ली के समीप प्रदेशों पर कुछ वर्षों तक शासन करता रहा परन्तु उसके पुत्र हुमायूं का शासन सुदृढ़ न हो सका। शासक के प्रधान गुणों का उसमें अभाव था। इस कारण शेर खां ने अफगान सरदार के रूप में उसे चौसा तथा कन्नौज में हरा कर भारत छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया। १५४० ई० में हुमायूं के चले जाने पर शेर शाह सूरी उत्तरी भारत का मालिक बन गया। उसके व्यवहारिक चतुरता, कार्य कुशलता तथा शासन में योग्यता के कारण देश में अनेक सुधार किए गए। सिक्कों के क्षेत्र में उसने सर्वथा नयी शैली का समावेश किया। उसकी नवीनता ने सिक्कों के इतिहास में नया युग पैदा किया। शेरशाह के समय से मिश्रित धातु से सिक्के बनाने की प्रथा सदा के लिए बन्द हो गयी जिसे कई सौ वर्षों से दिल्ली के सुल्तान प्रयोग में लाते रहे। शेरशाह के समय मुद्रानीति में निम्न लिखित परिवर्तन किये गये।

(१) शुद्ध चाँदी के सिक्के रुपया नाम से चलाए गए।
(२) शुद्ध ताम्बे के सिक्के दाम कहलाए।
(३) चांदी के रुपयों का तौल १७८ ग्रेन तथा
(४) दाम की तौल ३३० ग्रेन स्थिर की-गयी।

कुछ विद्वानों का कथन है कि शेरशाह ने रत्ती का तौल बढ़ा दिया था इसलिए उसका रुपया १८० ग्रेन से कम तौल में नहीं हो सकता। उस समय के सिक्कों के

तौल पर विचार करने से यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि शेरशाह के समय में रत्ती की तौल कितने ग्रेन के बराबर मानी गयी थी। यदि रत्ती १·७८ के बराबर मानी जाय तो दाम की तौल ३१३ ग्रेन के बराबर होता है परन्तु वर्तमान समय में ३२० या ३२६ ग्रेन के ताम्बे के सिक्के मिले हैं। बहुत सम्भव है कि रत्ती की तौल १·८७५ ग्रेन के बराबर हो। दूसरी विशेषता शेरशाह के टकसाल घरों की हैं जिनकी संख्या तेइस तक हो गयी थी। इस का कारण यह मालूम पड़ता है कि उसने बंगाल तथा बिहार में अपने टकसाल घर खोले जहाँ से एक ढंग के रुपया तथा दाम तैयार किये जाते थे।

शेरशाह के सोने के सिक्के कठिनता से मिलते हैं। चाँदी के रुपये गोलाकार होते हुए बड़े दिखलाई पड़ते हैं। एक ओर वृत के सीमा में कलमा लिखा है तथा दूसरी ओर पदवी सहित सुल्तान का नाम अंकित किया गया है। नाम के साथ हिज़री में तिथि, लेख (ईश्वर राज्य को स्थिर करे) तथा नीचे अशुद्ध हिन्दी में सुल्तान का नाम लिखा मिलता है। शेरशाह के चांदी तथा ताम्बे के सिक्कों पर टकसाल का नाम सदा नहीं मिलता। परन्तु कभी किनारे पर लिखा मिलता है। ताम्बे के सिक्कों में एक ओर निम्न प्रकार का लेख 'खलीफा के सेनानायक के समय में धर्म का त्राता' मिलता है तथा दूसरी ओर पदवी सहित सुल्तान और टकसाल का नाम खुदा रहता है। इस्लाम शाह ने शेरशाह के सदृश सिक्के चलाये उसके समय में अनेक सिक्कों पर टकसाल घर का नाम नहीं मिलता। उन सब के सिक्कों पर भी एक ओर कलमा तथा दूसरी ओर शासक का नाम खुदा है। शेरशाह के उत्तराधिकारी अधिक समय तक राज्य के भार को सम्भाल न सके। हुमायूं ने भारत पर आक्रमण कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

-थों तो देश की राजनैतिक तथा आर्थिक अवस्था के अनुकूल ही शासक अपनी मुद्रानीति स्थिर करता है क्योंकि आर्थिक परिस्थिति तथा सिक्कों के निर्माण में घनिष्ट संबन्ध है परन्तु मुसलमान शासक विशेष कर मुगल बादशाहों के समय में सिक्का धर्म प्रचार का माध्यम समझा जाता था। अकबर अपने 'दीन-इलाही' का प्रसार सिक्कों के द्वारा भी करता रहा। अकबर और जहाँगीर ने अपने कला प्रेम को इन्हीं सिक्कों द्वारा व्यक्त किया था। मुगल बादशाहों के सिक्कों का वर्णन 'आइने-अकबरी' जहाँगीर की आत्मकहानी तथा अन्य ऐतिहासिक लेखों में मिलता है। अबुलफजल तथा जहाँगीर ने ऐसे विशेष सिक्कों का उल्लेख किया है जो सर्वसाधारण जनता में प्रचलित नहीं किए गए थे। मनूची ने भी उस प्रकार के सिक्कों का नाम लिया है।

जैसा कहा गया है वास्तव में मुगल मुद्रा का आरम्भ अकबर के समय से ही हुआ। राज्यभार ग्रहण करते अकबर ने सूरी माप (Standard) का अनुकरण कर सिक्के तैयार किया। अबुलफजल ने आइने अकबरी में मुगल रुपये की तौल १७८·२५ ग्रेन (११½ मासा) का उल्लेख किया है जिससे प्रमाणित हो जाता है कि शेरशाह के रुपया के सदृश अकबर ने चाँदी के सिक्के चलाए थे। देश की समृद्धि के कारण ९७१ हिजरी से सोने के मुहर भी तैयार होने लगे जिनकी तौल १७०-१७५ ग्रेन तक पायी जाती है। अकबर के हजारों सिक्के सोने, चाँदी अथवा ताम्बे के मिलते हैं जो विभिन्न श्रेणी में विभक्त किए जाते हैं। सभी सिक्कों हर कलमा-अथवा अकबर के सिद्धान्त वाचक वाक्य मिलते हैं तथा दूसरी तरफ बादशाह का नाम, तिथियाँ और टकसाल घर का नाम अंकित पाया जाता है। सर्वप्रथम अकबर के रुपयों पर एक तरफ कलमा लिखा मिलता है। वे सिक्के चौकोर अथवा गोलाकार हैं इसलिए लेख वृत्ताकार अथवा पंक्तियों में लिखे हैं। कलमा के स्थान पर अकबर बादशाह ने 'अल्लाह अकबर' का नया लेख अंकित कराया था। इसी को बढ़ाकर 'अल्लाह अकबर जल जलालू' के रूप में बदल दिया। इससे पता चलता है कि अकबर अपने को धार्मिक अगुआ घोषित कर चुका था। अकबर के वर्गाकार रुपये जलाली के नाम से पुकारे जाते थे।

मुगलवंश के व्यवहारिक सोने के सिक्के को मुहर के नाम से पुकारते थे। अकबर ने इसे आरम्भ कर पिछले मुगल बादशाहों के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। अकबर कालीन मुहर तौल में १७० ग्रेन और मूल्य में ८७ रुपया के बराबर समझा जाता था। आगरा टकसालघर से ९८१ हिजरी में अकबर ने 'मेहराबी मुहर' चलाया जिसकी बनावटमें मेंहराब की शकल दिखलाई पड़ती है।
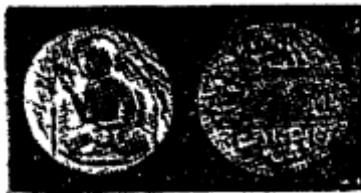
सम्राट् अकबर अपने शासन काल में 'दीन इलाही' मत को जन्म देकर प्रचार के लिए प्रयत्नशील रहा। अतएव सिक्कों के माध्यम द्वारा प्रचार में उसे सफलता मिली। उस नए मत के स्मारक में नौरोज के दिन ६६३ हिजरी में अकबर ने इलाही सम्वत् की स्थापना की। १००१ हिजरी के पश्चात् उसने हिजरी वर्ष के स्थान पर इलाही सम्वत् का प्रयोग शुरू कर दिया। फतेहपुर सिकरी के टकसाल से प्राय: सभी सिक्के इलाही धर्मसूचक वाक्य तथा सम्वत् के साथ अंकित किए जाते थे। ऐसे सिक्कों पर एक ओर धार्मिक लेख 'अल्लाह · अकबर जल जलालू' खुदा जाता था तथा दूसरी ओर बादशाह का नाम, इलाही सम्वत् में राज्य वर्ष और टकसाल का नाम अंकित होता रहा। अहमदाबाद के टकसाल घर में ऐसे ही सिक्के बनते रहे। पचासवें वर्ष के मुहर में असीरगढ़ के विजय स्मारक में बाज पक्षी की आकृति भी अंकित करायी गयी तथा सीताराम की मूर्ति वाले आधे मुहर भी तैयार किए गये थे। शासन के अंतिम समय में अकबर ने पद्य युक्त वाक्य सिक्कों पर खुदवाना आरम्भ कर दिया था जिसका अनुकरण बहुत समय तक होता रहा।

यह तो सर्व विदित है कि शेरशाह के दाम के सदृश मुगल बादशाहों ने ताम्बे के सिक्के तैयार किए थे। अकबर के समय से ये ताम्बे के सिक्के पैसा या फलुस के नाम से पुकारे जाने लगे। परन्तु आइने अकबरी में दाम का ही अधिक प्रयोग मिलता है। ये सिक्के अहमदाबाद जीतने पर निकाले गए थे। उसके समय में निस्फी (आधादाम) दामर (चौथाई दाम) तथा दमरी (आंठवा दाम) नाम के सिक्के प्रचलित थे। सम्भवतः इसी दमरी का प्रयोग आजकल भी कौड़ियों में किया जाता है तथा बोलचाल में भी प्रयुक्त होता है कि अमुक व्यक्ति के पास दमरी भी नहीं है। हिजरी १००८ के बाद अकबर ने टंका नाम से नये ताम्बे सिक्कों का प्रयोग आरम्भ किया जिसकी तौल ६३२-६-४४ ग्रेन के बराबर थी। इस सिक्के के लिए कुछ टकसाल निश्चित थे। उस समय आधा, चौथाई, आठवा तथा सोलहवां भाग का टंका (छोटे टंका) बनता रहा। अकबर ने मुद्रा में दशमलव रीति का समावेश किया और चार, दो तथा एक टंकी नामक छोटे सिक्कों को अहमदाबाद, आगरा, लाहौर तथा काबुल के टकसालों में तैयार करने की आज्ञा दी थी। दस टंकी एक टंका के बराबर मूल्य में समझी जाती रही। उन टंका पर एक ओर 'टंका अकबर शाही' तथा देहली में अंकित ऐसा लिखा मिलता है। दूसरी ओर ईलाही सम्वत् में राज्यवर्ष अंकित रहता है।

मुगलकालीन सिक्कों की सुन्दरता जहाँगीर के समय चरम सीमा को पहुँच

गयी थी। उसके शासनकाल में योरप से व्यापार बढ़गया था। अंग्रेजों को व्यापार केन्द्र खोलने की आज्ञा मिल गयी थी। ऐसी दशा में भारत में चाँदी की कमी न रही। भारतीय सामान के बदले चांदी ही मूल्य में ली जाती थी। प्रथम जहांगीर ने सलीमी सिक्के तैयार कराए। इसके बाद उसने रुपये की तौल बढ़ा दिया। इसी तरह मुहर की तौल पहले से एक चौथाई अधिक बढ़ाकर २१२ ग्रेन के समीप पहुँचा दिया। नूरजहां के सिक्के २२० ग्रेन के बराबर मिलते हैं। जहांगीर के सिक्कों में अनेक विशेषताएं पायी जाती हैं। सर्वप्रथम उनकी सुन्दरता को देखिये। उस काल में गोल या चौकोर आकार के मुहर तैयार किए जाते थे जिनके किनारों पर बिन्दुमाडल तथा शरीर पर लताएँ तथा फूल खुदे हुए दिखलाई पड़ते हैं और ऐसे सतह पर लेख खुदे हैं। जहांगीर ने कलमा का फिर से प्रयोग किया और खलीफा का नाम भी अंकित कराया जो सम्राट का इस्लाम मत के प्रति प्रेम को प्रगट करता है। जहांगीर के सर्व प्रथम सिक्कों पर एक ओर पिता के नाम के साथ सम्राट (जहांगीर) का नाम है तथा दूसरी ओर टकसाल का नाम तथा राज्यवर्ष अंकित मिला है। १०२८ हिजरी के बाद जहांगीरी के विचित्र प्रकार के सिक्के मिले हैं जो एक ही परिपाटी के हैं। उन पर हिन्दू राशि चक्र के चिह्न मिलते हैं। इस सम्बन्ध में जहाँगीर ने अपने जीवन चरित में लिखा है कि इससे पूर्व सिक्कों पर राजा का नाम, स्थान (टकसाल) महीने का नाम तथा सम्वत् का नाम लिखा जाता था। उनके मन में यह विचार आया कि जिस मास में सिक्के बनाए जाते थे उस महीने का नाम न अंकित कर तत्सम्बन्धी मासिक राशि चित्र खुदवाया जावे जिसके देखने से अमुक मास का बोध हो जाय। इस कारण जिस राशि स्थान में सूर्य आवे यानी अमुक महीने की राशि चित्र-भेड़ा बैल, तुला आदि सिक्कों पर अंकित किया जाय। यह मेरी (जहाँगीर) सूझ है। पहले ऐसा नहीं होता रहा। जहांगीर के सिक्के उसके आदेशानुसार बनने लगे। वे राशियाँ उस मास (महीने) की ठीक अनुरूप हैं। राशियों को व्यक्त करने वाले चिह्न शेर, बैल, भेड़ा, वृश्चिक, तुला तथा योद्धा के चित्र खुदे हुए हैं। अजमेर में नए ढंग का मुहर तैयार किया जाता था जिसमें अग्रभाग की ओर अर्द्ध पद्मासन में जहाँगीर की आकृति है और शराब का प्याला हाथ में लिए है। पृष्ठ ओर मध्य में सूर्य और चारों तरफ लेख खुदे हैं। इनके अतिरिक्त सिक्कों पर लेख लिखने की कला उन्नति के शिखर पर पहुँच गयी थी। इसके सिक्के पद्यमय वाक्य के लिए प्रसिद्ध हैं। आगरा के सिक्कों में पांच प्रकार के पद्य की पंक्तियाँ मिलती हैं। सभी में शाह जहांगीर शाह अकबर का बेटा लिखा गया है। यह रीति केवल जहांगीर के सिक्कों में ही पायी जाती है। यह पंक्तियां प्रायः प्रत्येक मास में बदल दी जाती रहीं। काबुल,

श्री नगर (काश्मीर) तथा बंगला के टकसाल द्वारा प्रचलित सिक्कों में भी पद्य की पंक्तियां मिलती हैं। इनके लिखने का ढंग अत्यन्त सुन्दर है। ऐसे सैंतालीस तरह के पद्य मय लेख मिले हैं जिनका विस्तृत वर्णन अनावश्यक प्रतीत होता है। मुगल वंश में जहांगीर के सिक्के कला की दृष्टि से सब से उत्तम माने जाते हैं। जहांगीर शासन के अंतिम वर्षों में सिक्कों पर एक ओर अपना नाम खुदवाया करता था तथा दूसरी ओर तिथि मास तथा टकसाल का नाम अंकित किया जाता था। इसने इलाही ढंग के भी सिक्के तैयार कराये थे। जहांगीर के सिक्के तीन नामों के साथ मिलते हैं। पहला 'शाह जहांगीर बेटा अकबर बादशाह' दूसरा नूरजहां के साथ तथा तीसरा सलीम वाले सिक्के प्राप्त हुए हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जहांगीर सिक्कों को सदा नए ढंग से निर्माण करने में पागल सा हो गया था। आरम्भ के बारह वर्षों तक प्रति मास नए लेख खुदवाया करता था। तेरहवें वर्ष में राशिचक्र के चिह्नों का समावेश किया और उसी महीने का नाम दूसरी ओर खुदवाया। ये चिह्न सोने के मुहर तथा चाँदी के रुपयों पर एक समान खुदे हुए मिलते हैं। अजमेर का रुपया विशेष सुन्दरता तथा पद्य पंक्तियों में चमत्कार पूर्ण है। इसके लेख से (उर्दू दर राही दकन) उस स्थान के भौगोलिक परिस्थित का भी ज्ञान हो जाता है।

जहाँगीर के पुत्र शाहजहां के सिक्कों की अपनी विशेषता थी। इसने मुहर तथा रुपयों की पुरानी तौल को ही अपनाया था क्योंकि जहांगीर के बढ़ाए तौल को अधिक समय तक कार्यान्वित न कर सका। शाहजहां के जीवन घटना की बातें भी उन सिक्कों के आधार पर बतलायी जाती हैं। धन की कमी न होने से इस बादशाह के सिक्के विशुद्ध धातु के मिलते हैं। तौल के साथ साथ शाहजहां ने पुरानी शैली को भी अपनाया। उसके सिक्कों पर एक ओर कलमा तथा टकसाल का नाम मिलता है तथा दूसरी ओर उपाधि सहित बादशाह का नाम पाया जाता है। शाहजहां को आगरा अधिक प्रिय था अतः उसने १०३८ हिजरी में इसका नाम अकबराबाद कर दिया। इस टकसाल में निर्मित मुहर तथा रुपये मुगल सिक्कों में अधिक प्रचलित पाए जाते हैं। हिजरी तथा इलाही सम्वत् के प्रयोग से उन्हें दो भागों में विभक्त किया जाता है। शाहजहां के पाचवें वर्ष से लेकर शासन के अंतिम समय तक एक नए प्रकार का सिक्का चलाया गया जिसके अनेक भेद पाए जाते हैं। परन्तु सब से विचित्रता यह है कि उसके ऊपरी भाग में किनारा वर्गाकार, गोल अथवा विषम कोण के सम चतुर्भुज के आकार में तैयार किया गया था। सिक्कों के अध्ययन से पता चलता है कि शाहजहां तथा उसके वंशजों को वर्गाकार किनारा अधिक प्रिय था। यही कारण है कि

फलक सं० १६

१०

इसकी बहुलता पायी जाती है। इस किनारे से कलमा घिरा रहता है और बाहरी भाग में खलीफा का नाम अंकित मिलता है। दूसरी ओर बादशाह का नाम मिलता है। लाहौर टकसाल से शाहजहां ने खुर्रम के नाम से भी सिक्के तैयार किए गए थे। इस प्रकार हिजरी तथा इलाही सम्वत् वाले और वर्गाकार अथवा गोलाकार किनारे में लिखित कलमा शैली के सिक्के मिलते हैं। परन्तु उस समय सिक्काघर के पंक्तियों में कलमा लिखने के ढंग का अभाव न था।

अन्य सिक्कों के सदृश मुगल बादशाह ने अकबराबाद टकसाल से एक प्रकार के दान तथा उपहार के योग्य चांदी के सिक्के तैयार कराया था जिसे निसार कहते थे। जहाँगीर के समय से ही इसका प्रचार हो गया था जिसका पालन उसके उत्तराधिकारी करते रहे। शाहजहाँ के भी निसार मुगल रुपये की तरह १७६ ग्रेन के बराबर तौल में मिले हैं परन्तु आधा निसार (८८ ग्रेन) ही सबसे अधिक प्रचलित था। निसार सिक्कों की तौल एक क्रम में रक्खी गयी थी जिसमें ११ ग्रेन तक के छोटे निसार मिले हैं। सोने का निसार विरले तथा अलभ्य हैं। निसार शब्द के अर्थ से पता चलता है कि इन सिक्कों को शासकों के राज्यारोहण के अवसर पर जनता में लुटाया जाता था तथा विवाह, जन्म, बादशाह के नगर प्रवेश आदि उत्सवों पर उपहार के रूप में बांटा जाता था। निर्धन व्यक्ति निसार को उठा कर शीघ्र बाजार में ले जाकर सामान खरीदते थे।

औरङ्गजेब के शासन काल मुगल से मुद्रानीति में कई परिवर्तन हो गए थे जिसका प्रभाव आर्थिक दशा की अवनति के कारण चिरस्थायी हो गया। इस के समय में चाँदी के सिक्कों का मूल्य कम हो गया। रुपये का मूल्य ४० दाम से घटकर ३० दाम के बराबर हो गया। इस लिए सम्राट ने आदेश किया कि सरकारी कर ताम्बे के सिक्कों में दिया जाय। परन्तु प्रजा चांदी के द्वारा ही कर देती रही। औरङ्गजेब के समय में चांदी तथा ताम्बे के मूल्य का अनुपात सर्व साधारण जनता में घटता बढ़ता रहा। सरकार की कोई दृढ़ नीति न रही। उस समय ताम्बे के चिह्नित सिक्के भी तैयार न हो सके इस कारण देश के व्यापार को क्षति पहुँची। जनता की आर्थिक स्थिति बिगड़ती गई जिसका कारण यह था कि औरङ्गजेब अपने पूर्वजों की तरह सिक्कों के सम्बन्ध में स्पष्ट मार्ग का अवलम्बन न कर सका। उसके समय में रुपये की आधी कीमत हो गयी। ऐसी परिस्थिति के कारण औरङ्गजेब के राजनैतिक मसले थे जिनके सुझाव में उसका अधिक समय व्यय होता रहा। दक्षिण भारत में विजय पाकर औरङ्गजेब ने बीजापुर अहमद नगर तथा शोलापुर आदि नगरों में टकसाल घर खोले जहाँ मुहर तथा रुपया

तैयार होने लगे। १०७१ हिजरी में सर्वप्रथम औरङ्गजेब ने सिक्कों का निर्माण आरम्भ किया था। शाहजहाँ के वर्गाकार किनारे वाले बनावट को इसने अपनाया जिनके ऊपरी भाग पर 'शाह आलमगीर बादशाह गाजी' का लेख मिलता है। चारों ओर किनारे के बाहरी भाग में औरङ्गजेब का नाम तथा तिथि मिलती है। उसके निचले भाग में टकसाल का नाम और सूत्र रूप में लेख पाया जाता है जिसे उसके उत्तराधिकारियों ने सिक्कों पर सदा स्थान दिया था। औरङ्गजेब के मुहरों में एक तरफ राज्य वर्ष का उल्लेख मिलता है तो दूसरी ओर हिजरी सम्वत् में तिथि अंकित रहती है उसके असंख्य चाँदी के सिक्के प्राप्त हुए हैं। परन्तु ताम्बे के सिक्के (२२० ग्रेन) सीमित संख्या में ही मिलते हैं। उसने चाँदी के निसार भी चलाए तथा हिन्दूओं द्वारा जजिया देने के लिए औरङ्गजेब ने दिरहम को तैयार कराया था जिनकी तौल ६० ग्रेन के लगभग निश्चित की गयी थी। इन छोटी तौल के सिक्कों से जजिया जमा करने में सरलता हो गयी थी। औरङ्गजेब के मृत्यु पश्चात् भी शाह आलम प्रथम के चांदी तथा सोने के सिक्के दक्षिण भारत के टकसाल में तैयार होते रहे परन्तु १७१३ ई० के बाद बीजापुर आदि स्थानों में स्वतंत्र राज्य स्थापित हो जाने से मुगल सिक्कों का बनना बंद हो गया। उत्तरी भारत में केवल बरेली टकसाल से पिछले मुगल शासकों ने रुपया तैयार कराया था जिस पर राज्य वर्ष में तिथि मिलती है। १८ वीं सदी के बादवह स्थान अवध के नवाब के हाथ में आ गया।

औरङ्गजेब की राजनीति के कारण मुगल साम्राज्य की अवनति होने लगी। भारत में चारों तरफ राजा स्वतंत्रता की घोषणा करने लगे। इस कारण पिछले मुगल शासकों को विकट परिस्थिति तथा अशांतिमय वातावरण में राज्य करना पड़ा। प्रांतीय सूबेदारों ने स्वतंत्र होकर मुगल टकसाल में अपने सिक्के तैयार कराए। फरुखसियर के शासन से सिक्के उत्तरी भारत के टकसालों में सीमित हो गये जो आगे चलकर केवल दिल्ली और संयुक्त प्रांत के टकसालों में ही बनते रहे। उन्होंने सोने तथा चाँदी का ही प्रयोग किया था। शाह आलम तथा फरुखसियर के तीन प्रकार के चाँदी के सिक्के मिले हैं। पहले रुपया का नाम आता है जो बिहार तथा बंगाल में विशेषतया प्रचलित थे और उनकी तौल भी पहले के रुपयों से अधिक थी। दूसरा सिक्का कम तौल का दिरहम था जिसे केवल मनुष्य पर लगने वाले कर (Poll-Tax) जमा करने के लिए तैयार किया गया था। तीसरा सिक्का निसार था जो उत्सवों पर प्रजा में बाँटा जाता था। ताम्बे के सिक्के सदा के लिए बंद हो गये। मुहर की संख्या तो अत्यन्त कम कर दी गयी थी केवल पुराने तौल (१७८ ग्रेन)

भारत का मानचित्र
मुसलमान तथा कम्पनी के समय के प्रसिद्ध
टकसाल नगर
काबुल
लाहौर
दिल्ली
आगरा
अवध
लहरी बन्दर
पटना
गौड़
मुर्शिदाबाद
अहमदाबाद
कलकत्ता
सूरत
बीजापुर
गोआ
आरकाट
पांडेचेरी

के बराबर रुपये अधिकतर बनते रहे। उन सिक्कों पर एक ओर मुगल राजा का नाम तथा हिजरी सम्वत् में तिथि पायी जाती है। दूसरी ओर सूत्र में राज्यवर्ष का उल्लेख मिलता है। पिछले मुगल बादशाहतों में शाह आलम द्वितीय के चांदी के सिक्के अधिक संख्या में पाए जाते हैं जो वास्तव में उसके द्वारा तैयार नहीं किए गये थे। इसका एक विशेष कारण यह था कि स्वतन्त्र प्रांतीय शासक भी जनता को धोखे में रखने के लिए अथवा मुगल बादशाहो से दिखलावा प्रेम व्यक्त करने के निमित अपने सिक्कों पर शाह आलम का नाम खुदवाया करते थे। बंगाल का दीवानी मिलने पर इस्ट इंडिया कम्पनी ने भी शाह आलम के नाम से असरफियाँ तैयार करायी थीं। अंग्रेजी कम्पनी का प्रभाव बढ़ता ही गया। सन् १८०३ ई० में कम्पनी के विजय के कारण मुगलों का शासन दिल्ली शाहजहानाबाद के महल में सीमित हो गया जहाँ पर १८५७ तक उन्होंने अपने अधिकार का प्रयोग किया और सोने तथा चांदी के सिक्के बनवाए। १८०३ के बाद शाह आलम द्वितीय के सिक्कों में कुछ नवीनता (अंग्रेजी प्रभाव) दिखलाई पड़ता है। उसमें लेख के चारों तरफ गुलाब के माला की बनावट आ गयी है। अंतिम सिक्का बहादुरशाह द्वितीय का मिला है। शाहजहाँनाबाद के सिक्के बनावट में सुन्दर भी हैं और इतने चौड़े हैं कि पूरा लेख आ गया है। पिछले मुगल सिक्कों की श्रेणी में इनकी निजी विशेषता है।

भारत में टकसाल द्वारा सिक्के ढालने की शैली पुरानी है। दिल्ली के सुल्तानों ने राजपूतों के प्रचलित सिक्कों के आधार पर अथवा उसी ढंग से

अपने सिक्के तैयार किए। दिल्ली उनका प्रधान केन्द्र था।

मुगलों के टकसाल उसे 'देहली हजरत' के नाम से सिक्कों पर अंकित किया

जाता था। मुहम्मद तुगलक के देवागिरि जीतने के बाद

वह स्थान भी दौलताबाद टकसाल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मुगल राज्य की स्थापना के बाद बाबर तथा हुमायूं के शासन काल में टकसाल घरों की संख्या बढ़ गयी। आगरा, लाहौर आदि कई नगर इस कार्य के लिये चुने गये और उन प्रधान स्थानों को विशेष उपाधियाँ दी गयी जो सिक्कों पर मिलती हैं। शेरशाह के शासन काल में सिक्कों की धातु, तौल तथा शैली में परिवर्तन कर टकसाल घरों को सारे बंगाल बिहार में फैलाया गया। यहाँ तक कि बीस से अधिक टकसालों के नाम सूरी शासकों पर मिलते हैं। अकबर ने इस योजना को आगे बढ़ाया। ज्यों-ज्यों नए सूबे जीतने लगा, वहाँ पर मुगल टकसाल घर स्थापित किए गये। चितौर तथा अहमदाबाद का नाम उस सिलसिले में लिया जा सकता है। ९८० हिजरी के बाद अकबर ने अहमदाबाद के टकसाल से

ताँबे के सिक्के तैयार कराया था। उस नगर के लिए 'दारुल खिलाफत' की पदवी मिलती है। इसी तरह १६८६ ई० के बाद औरंगजेब ने दक्षिण में विजय कर गुलबर्गा, बीजापुर, अहमदनगर में नए टकसाल घर बनाए गये जहाँ पर फर्रुखसियर तक सिक्के तैयार होते रहे। उस समय के बाद रियासतों के स्वतंत्र हो जाने से वे स्थान मुगल टकसाल के रूप में न रहे वरन स्थानीय सुल्तान ने उसे अपना टकसाल बना लिए। कहने का तात्पर्य यह है कि मुगल बादशाहों ने प्रत्येक प्रांत में टकसाल स्थापित किया था जिनमें किसी न किसी धातु के सिक्के अवश्य बनते रहे। किसी स्थान पर मुगल सिक्कों के बंद हो जाने का एक ही कारण था अथवा वह तभी सम्भव था जब कि वह स्थान मुगलों के अधिकार से निकल जाता था। मुगल टकसालों के इतिहास के अध्ययन से यह पता लगता है कि टकसाल प्रधान नगर या सूबे की राजधानी में स्थित किए जाते थे। सर्व प्रथम विजित प्रदेश में टकसाल स्थापित किए जाते अथवा राज्य सीमा पर भी निर्धारित किए जाते रहे। उदाहरणार्थ नेपाल सीमा पर दोगांव नामक स्थान मुगल टकसाल के लिए उपयोगी समझा गया था। मुगल मुद्रा नीति की विशेषता यही है कि उस में टकसालों की भिन्नता पायी जाती है। अधिक टकसाल खोलना ही युक्ति संगत समझा जाता था। इस तरह अकबर के समय में ७६ टकसाल काम कर रहे थे। चाँदी से ताँबे के सिक्के ढालने वाले टकसाल घरों की संख्या अधिक थी। परन्तु औरंगजेब के शासन काल में ताँबे की मंहगाई के कारण अधिक चाँदी सिक्कों के लिए उनमें प्रयोग की जाती थी। इसी लिए उस के चाँदी सिक्कों के तैयार करने में सत्तर टकसाल फंसे रहते थे। तमाम टकसालों में आगरा, देहली, लाहौर तथा अहमदाबाद प्रधान समझे जाते थे जहाँ पूरे मुगल काल में सिक्के तैयार होते रहे। यों तो प्रत्येक बादशाह अपने सुविधा के लिए नए टकसाल स्थापित करता रहा परन्तु पिछले मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय के समय में टकसालो की संख्या बहुत बढ़ गयी थी। बहादुरशाह ऐसे अधीन राजा ने भी दिल्ली जेल (शाहजहानाबाद) में सिक्के तैयार करने का व्यर्थ प्रयत्न किया था।

मुगल टकसाल जिन नगरों में स्थित किए गये थे उनमें प्रधान स्थानों के लिए उपाधियां सिक्कों पर अंकित मिलती हैं। यद्यपि यह प्रथा दिल्ली के सुल्तानों के समय से ही चली थी परन्तु मुगल काल में यह बहुत आगे बढ़ गयी। दिल्ली के लिए पहले से ही 'देहली हजरत' कहा जाता था। १०४८ हिजरी में शाहजहाँ ने दिल्ली के समीप शाहजहानाबाद नामक नया नगर बसाया था जो सिक्कों पर अंकित किया गया है। उसकी उपाधि 'दारुल खिलाफत' मिलती

फलक सं० १७

है। अंग्रेजों के दिल्ली विजय करने पर भी इसी नगर में मुगल शासक कैद में थे तथा उन्हें सिक्के निर्माण करने की आज्ञा दे दी गयी थी। 'आगरा भी इसी उपाधि से सिक्कों पर मिलता है। शाहजहाँ के समय से इसका नाम अकबराबाद रक्खा गया था। अकबर के समय में सिक्कों पर अहमदाबाद 'दारुस-सलतनत' तथा अजमेर 'दारुल मनसूर' उपाधि के साथ खुदे गये थे। अलाहाबाद 'इलहाबास' के नाम से प्रसिद्ध था। अकबर ने शिविर या पड़ाव के स्थानों पर भी सिक्के तैयार कराया था जो उर्दू टकसाल के नाम से पुकारे जाते हैं। इन उपाधियों के अतिरिक्त टकसालों के पृथक चिन्ह भी थे जो अब अलंकरण के रूप में समझे जाते हैं। वर्तमान परिस्थिति में उन चिन्हों या आभूषणों के बारे में अधिक कहना कठिन है।

यह कहा जा चुका है कि शेरशाह की आर्थिक योजना तथा मुद्रानीति को अकबर ने अपनाया था। उसने मुगल सिक्कों को नियमित बनाने का प्रयत्न किया इसलिए १५७७ ई० के बाद शाही टकसाल की निगरानी के लिए कर्मचारी नियुक्त किए गए। अबुल फजल ने सरकारी खजाने में संचित सिक्कों का वर्णन करते समय मुगल सिक्कों तथा उनके तैयार करने की विधि का वर्णन आइने अकबरी में किया है। उसके कथनानुसार टकसाल

मुगल कालीन टकसाल के पदाधिकारी

के सब से प्रधान कर्मचारी को दारोगा कहते थे जो अपने अधीन सभी नौकरों के कार्यों की निगरानी रखता था। उससे छोटे कर्मचारी को सराफ के नाम से पुकारते थे जो सिक्कों की शुद्धता की जाँच करता था। सोना तथा चाँदी को ऊँचे श्रेणी तक शुद्ध किया जाता था ताकि सिक्कों में मिलावट न रहे। धातु खरीद करनेवाले व्यक्ति को सदा सतर्क रहना पड़ता था। इस कार्य के लिए कोई व्यापारी नियुक्त किया जाता था जो इससे राज्य की सहायता करता और स्वयं अपने लिए कुछ लाभ कर लेता था। वह धातु तौल कर टकसाल में दे दी जाती जहाँ विधि पूर्वक सिक्के तैयार किए जाते थे। मुगल टकसालों में धातु को गलाकर छड़ बनाया जाता था जिसमें से वांछित तौल के बराबर टुकड़े काट लिए जाते थे। उन टुकड़ों को निहाई पर पीट कर एक व्यास के बराबर बनाया जाता था। मिश्रित धातु के सिक्कों के लिए बराबर तौल के चांदी और तांबा को गला कर ठोस बना लेते और तब उनके छड़ों को टुकड़े काटे जाते। इस प्रकार के टुकड़े पीटने पर गोल या चतुर्भुज आकार के बन जाते थे। निहाई से पीटने के बाद वे गरम किये जाते और ठप्पे से उन पर निशान लगाया जाता था। दोहरे ठप्पे की विशेषता यह थी कि एक ठप्पा नीचे स्थिर रहता था और उस पर उस

विभिन्न आकार के टुकड़े को रखकर दूसरे ठप्पे से चोट लगाया जाता था। इस विधि से दोनों तरफ लेख अथवा चिह्न उतर आता था। उस अवस्था में वह सिक्का कहलाता था और टकसाल से खजाने में भेज दिया जाता था। राजकोष में एकत्रित करने के बाद ही सिक्के चलाने के लिए बाहर निकाले जाते थे।

टकसाल के प्रधान व्यक्ति दारोगा की सहायता करने के लिए अमीन नियुक्त किया जाता जो निष्पक्ष भाव से सब कार्य देखता था। उस व्यक्ति पर सभी वर्गों का विश्वास रहता था। मुख्यतः अमीन का काम सभी कर्मचारियों को सुविधा देना था ताकि उचित रीति से कार्य हो सके। धातु खरीदने के बाद तौली जाती थी अतएव तौलने वाले व्यक्ति को पारिश्रमिक दिया जाता था। साधारणतः सौ मुहर वाले सोने को तौलने के लिए उसे पौने दो दाम (पैसा) मिलता था। वह धातु टकसाल में गलाई जाती थी। गलाने वाला व्यक्ति मिट्टी की एक पटिया तैयार कर उसमें गहराई बनाता और उस गहरे जगह में चिकनाई लगा देता ताकि गली धातु के डालने पर मिट्टी में कुछ चिपक न जाय। विभिन्न धातुओं के गलाने के लिए उसे एक सा पैसा न मिलता था वरन् सोना के लिए थोड़ा चाँदी के लिए उससे अधिक तथा ताँबा गलाने के लिए सबसे ज्यादा दाम मिला करता था। गली धातु का चद्दर भी बनाया जाता था। उसके बाद ठप्पे के द्वारा चोट देकर सिक्का बनता जो खजान्ची के पास भेज दिया जाता। दैनिक हिसाब रखने के मुश्रिफ नामक लेखक नियुक्त रहता जो दिन पत्रिका (डायरी) में सभी बातों का सिलसिले वार लेखा रखता था। इन कर्मचारियों के वेतन के विषय में अबुल फजल ने कुछ लिखा नहीं है परन्तु लेखक से अधिक अमीन, सराफ़ तथा दारोगा को क्रमशः अधिक वेतन मिलता था। आइने अकबरी में सोना, चाँदी को शुद्ध करना तथा मिश्रण से पृथक करने का सविस्तृत वर्णन मिलता है जो यहाँ अनावश्यक प्रतीत होता है।

अबुल फजल ने २६ विभिन्न नाम वाले सोने के सिक्कों का उल्लेख किया है जो टकसालों में तैयार किये जाते थे। तौल में सौ तोला से भी अधिक एक सोने के सिक्के का उल्लेख मिलता है जिस पर शेख फैजी रचित रुबाइयाँ खुदी हैं। इलाही, मेहराबी तथा गोल मुहर भी उसीमें सम्मिलित हैं। जिस सिक्के पर "अल्लाह, अकबर" तथा "जल्ल जलालुहु लिखा है उसे लाल जलाली का नाम दिया गया है। इसी तरह चाँदी के नव प्रकार तथा ताम्बे का चार ढंग के सिक्कों का नाम अकबरी में मिलता है। अबुल फजल का कहना है कि साम्राज्य के तमाम टकसालों के चार स्थानों में सोने, चौदह टकसाल घरों में चाँदी तथा

फलक सं० १८

अट्ठाइस जगहों पर ताम्बे के सिक्के तैयार किए जाते थे। इतने प्रकार के सिक्कों का प्रचलन होने पर भी व्यापारी लोग गोल मुहर, रुपया तथा दाम सिक्के का प्रयोग करते थे। उसने लिखा है कि कुछ ऐसे बुरे लोग समाज में थे जो सिक्कों को घिस कर खराब कर डालते थे और इससे देश की हानि होती थी। इस बुराई को समाप्त करने के लिए अकबर ने दरबारियों की सलाह से कड़े नियम बनाया था। अकबर के समय में टोडरमल ने चार प्रकार के मुहर का प्रचार किया था परन्तु उसके हाथ से शासन प्रबन्ध हटने पर शीराज का अमीर फताउल्लाह उस विभाग का प्रधान बनाया गया जिसने टोडर के नियमों में परिवर्तन किया। इसी तरह विभिन्न लोगों के इस विभाग के प्रधान होने पर मुद्रा सम्बन्धी उप-नियम परिवर्तित होते रहे। अन्त में १५९२ ई० में अकबर ने अन्तिम निर्णय देकर उन नियमों को चिरस्थाई बना दिया। पिछले समय में कम वजन हो जाने पर भी मुहर पूरी तौल के बराबर मानकर ले लिए जाते थे परन्तु अकबर के नियमों के बाद यह अभ्यास बन्द हो गया। इस कारण देश को हानि उठानी न पड़ी वरन् कर्मचारियों द्वारा कम तौल के सिक्के बनाने की सदा आशंका बनी रहती।

मुसलमान रियासतों के सिक्के

१२ वीं सदी के बाद जब गुलामवंश का राज्य दिल्ली में स्थापित हुआ अनेक मुसलमान सेनापतियों ने केन्द्र से दूर प्रांतों को जीतकर शासन करना आरम्भ कर दिया था। यद्यपि वे प्रारम्भ में दिल्ली सुल्तान के अधीन थे परन्तु बाद में स्वतंत्र होकर शासन करने लगे। इस कारण उस स्थान की मुद्रानीति में भी परिवर्तन आ गया। सर्व प्रथम उन्होंने दिल्ली के सिक्कों का अनुकरण किया परन्तु बाद मे स्थानीय कारणों के कारण शैली तथा बनावट में अन्तर आ गया। सम्भवतः एक सौ वर्षों के बाद उनके स्वतंत्र रूप से सिक्के चलने लगे। उन प्रांतों की आर्थिक अवनति के कारण ताम्बे के सिक्कों का अधिक प्रचार हुआ। प्रारम्भ के सिक्कों पर दिल्ली के बादशाह तथा टकसाल का नाम, लिखा मिलता है तथा कलमा को मुख्य स्थान दिया गया है। धार्मिक भावना के कारण शासक सिक्कों पर बगदाद के खलीफा का नाम अंकित कराता था और अपने को खलीफा का दाहिना हाथ तथा इस्लाम का मददगार कहता था। कुछ मुसलमान राजाओं ने नयी पदवियाँ धारण की जिसके कारण सिक्कों में भेद आ गया है। मुगल शासन आरंभ होने से पहले यानी १६ वीं सदी से पूर्व भारत में कई मुसलमान रियासतें थीं। बंगाल को जब बखतियार ने ५९९ हिजरी में जीता तो वह वहाँ का गवर्नर हो गया। उसके उत्तराधिकारियों ने स्वतन्त्र रूप से भी शासन किया और राजधानी

लखनौती में सिक्के तैयार करते रहे। १३१० ई० के बाद बंगाल दो भागों में विभक्त हो गया। वहाँ का शासन कोई स्थिर न था। कई विभिन्न वंश के लोग बंगाल में शासन करते रहे तथा स्वतन्त्र रूप से सिक्का भी तैयार कराया था। पन्द्रहवीं सदी के अंत में कुछ समय के लिए इस प्रांत पर शेरशाह का अधिकार हो गया था परन्तु वह थोड़े दिनों के लिए रहा। बीच में कई शासकों ने राज्य किया। अंत में अकबर ने बंगाल को जीतकर अपना सूबा बना लिया।

बंगाल गवर्नरों के सिक्के

बंगाल में सोने के सिक्के अलभ्य हैं। ताम्बे के स्थान पर कौड़िया से काम लिया जाता था। केवल चाँदी के सिक्के उन गवर्नरों ने तैयार कराए थे। जितने शासकों ने राज्य किया था उनमें उनतीस लोगों ने सिक्के तैयार कराए थे। बङ्गाल के सिक्के शुद्ध चांदी के नहीं बनाए जाते थे परन्तु उनमें मिश्रण पाया जाता है। वहाँ के सिक्कों की तौल स्थानीय प्रभाव के कारण १६६ ग्रेन की मिलती है। शमसुद्दीन इलियास नामक गवर्नर तक बंगाल के सिक्कों पर दिल्ली का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। उनकी बनावट तथा लेख मे कुछ समता पायी जाती है। पहले तो कलमा को ऊपर की ओर स्थान दिया गया था परन्तु उसके स्थान पर खलीफा का नाम लिखा जाने लगा। कुछ गवर्नरों ने अपना निजी लेख भी खुदवाया था तथा बड़ी पदवियाँ धारण की थी। इस तरह सिक्कों के ढंग मे शनैः शनैः नवीनता आने लगी और शैली में भेद होने लगा। कभी तो दोनों तरफ टकसाल का नाम तथा तिथि अरबी में लिखा जाता था और कभी अंकों में। इन सब सिक्कों की बनावट मे कला का अभाव है तथा लेखनकला भद्दी है।

उत्तरी भारत में उसी समय काश्मीर में भी थोड़े दिनों तक मुसलमान राजा शासन करता था। शाह मिर्जा ने इस भूभाग को जीतकर स्वतन्त्ररूप से राज्य किया। उसके पश्चात् मुगल बादशाहों के साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। इससे पूर्व सोलह सुल्तानों ने चांदी के सिक्के चलाए थे लेकिन सभी एक ही ढंग के हैं। एक भाग में कलमा लिखा जाता था और दूसरी ओर राजा का नाम, तिथि तथा टकसाल अंकित कराया जाता था। इसमें यह विशेषता थी कि ये सिक्के वर्गाकार बनाए जाते थे। जहाँ तक ताम्बे के सिक्कों का सम्बन्ध है काश्मीर में पहले से प्रचलित हिन्दू सिक्कों का अनुकरण मुसलमान गवर्नरों ने किया। इस के अतिरिक्त कोई अन्य उल्लेखनीय बात नहीं है।

यों तो दक्षिण भारत में बहुत पहले से मुसलमान व्यापार के सिलसिले में

प्रवेश कर गए थे परन्तु राजा न होने के कारण सिक्के न तैयार कर सके। उत्तर से खिलजी तथा तुगलक सुल्तानों की चढ़ाई के पश्चात् मुसलमान गवर्नर ने दिल्ली सिक्कों की नकल पर अपनी मुद्रा-नीति स्थिर की थी तथा उसी प्रकार के सिक्के चलाए।

दक्षिण भारतीय रियासतों के सिक्के

मुहम्मद बिन तुगलक के बाद मदुरा में एक राज्य कायम हो गया था जिस के शासक १३३४ ई० के बाद स्वतन्त्र रूप से राज्य करने लगे थे। कुल आठ राजाओं के सिक्के मिले हैं जिनमें दिल्ली के सिक्कों की पूरी तरह नकल है। लिखने की कला में दक्षिण भारतीय ढंग का समावेश पाया जाता है। कुछ वर्षों के बाद विजय नगर के हिन्दू राजाओं ने इसे अपने सीमा में मिला लिया और मावार राज्य का अस्तित्व ही मिट गया। दक्षिण भारत में सब से शक्तिशाली मुस्लिम राज्य बहमनी नाम से प्रसिद्ध था जिसकी स्थापना चौदहवीं सदी के मध्य में (१३४७ ई०) अलाउद्दीन बहमन शाह ने किया था। उसने अपने जीवन काल में एक बड़ा राज्य विस्तृत कर लिया और शासन के सुप्रबंध के लिए शाह ने चार भागों में बहमनी राज्य को बांट दिया था। सौ वर्षों के बाद यह राज्य बरार से मैसूर तक तथा पूर्व पश्चिम में समुद्र तक फैल गया। बहमनी के सिक्के अलाउद्दीन महमूद (खिलजी) के ढंग पर तैयार किए गए थे। सोने तथा चांदी के सिक्के सुन्दर चौड़े आकार के मिलते हैं जो दिल्ली के टंका के अनुकरण पर बने थे। बहमनी शासकों के सभी सिक्के उत्तरी भारत के सुल्तान सिक्कों की नकल पर बनते रहे परन्तु अहमद शाह द्वितीय ने थोड़ा परिवर्तन किया था। उन सिक्कों पर एक ओर बहमनी राजाओं की अलग अलग पदवी खुदी गयी थीं। इन पदवियों के कुछ भाग शासक के नाम के साथ दूसरी ओर भी अंकित मिलते हैं। उसी तरफ किनारे पर टकसाल का नाम और तिथि खोदी जाती रही। जहाँ तक ताम्बे के सिक्कों का वर्णन मिलता है उनके ढंग में नवीनता कम पायी जाती है। अहमद शाह द्वितीय के समय से तौल में परिवर्तन आ गया था जो क्रमशः बढ़ता ही रहा। सुल्तान महमूद शाह के समय में बहमनी राज्य पाँच भागों में विभक्त हो गया। उनमें अहमद नगर, गोलकुण्डा तथा बीजापुर के शासकों ने अपने सिक्के तैयार कराए। अहमद नगर सुल्तानों के केवल ताम्बे के सिक्के मिले हैं। गोलकुण्डा के अंतिम दो कुतुबशाही सुल्तानों ने एक ही ढंग का ताम्बे का सिक्का तैयार कराया था। आदिल शाही राजाओं ने बीजापुर से सोने तथा चांदी के सिक्के निकाले थे जो भ्रष्ट ढंग से तैयार किए गए थे। सब से आकर्षक चांदी का सिक्का मछली कांटा के नाम से पुकारा

जाता है जो दक्षिण में हिन्द महासागर के व्यापारियों द्वारा नियमित-मुद्रा माना गया था। बीजापुर के सिक्कों का अधिक प्रसार होने के कारण उसका प्रभाव समीप के द्वीपों में भी पड़ा जहाँ इसी ढंग के सिक्के बनते रहे।

१४वीं सदी के आरम्भ में दिल्ली केन्द्र से गुजरात का प्रांत पृथक हो गया। जहाँ सर्व प्रथम जफर खाँ के पौत्र ने सिक्का तैयार कराया। प्रारम्भ में चाँदी तथा ताम्बे के सिक्के दिल्ली सुल्तान के सिक्कों की शैलीपर बनाए गए थे।

गुजरात के सिक्के परन्तु शीघ्र ही गुजरात में एक स्वतंत्र ढंग का समावेश हुआ जिसके सिक्के तौल में गुजराती रत्ती = १·८ ग्रेन से निश्चित किए जाते रहे। महमूद प्रथम (१४५८—१५११) के समय में गुजरात का प्रांत परम शक्ति शाली हो गया था। इस राजा ने कई टकसाल स्थापित कराया तथा मिश्रित धातु को भी सिक्कों के लिए प्रयोग किया था। इसके चांदी के सिक्कों पर षटकोण के घेरे मे लेख खुदा मिलता है। लेख में एक ओर शासक की अनेक पदवियाँ तथा दूसरी तरफ राजा का नाम लिखा जाता था। भारतवर्ष में सर्वप्रथम गुजरात के सिक्के पर ईरानी भाषा में पद्य लिखा मिला है। सब से विचित्र बात यह है कि गुजरात के कई राजाओं ने सिक्कों पर वंशवृक्ष का उल्लेख किया है। इस तरह के चार सिक्के पाए गये हैं। कुल नव सुल्तानों ने सिक्के तैयार कराए थे जो अधिकतर अहमदाबाद के टकसल में ढाले गए थे। १५७२ ई० में यह प्रांत मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया था। थोड़े समय तक शासन वापस लेने पर भी गुजरात के बादशाह अहमदाबाद में तैयार मुगल सिक्कों की शैली का अनुकरण करता रहा।

गुजरात के समीप स्थित मालवा प्रांत भी उस समय स्वतंत्रता की घोषणा कर चुका था पर यह प्रदेश सदा गुजरात से युद्ध में फँसा रहा। मालवा के सिक्के के बारे में कोई उल्लेखनीय बात नहीं है। इतना कहना आवश्यक है कि प्रथम सात सुल्तानों ने सोना, चांदी तथा ताम्बे का सिक्का तैयार कराया था। इसे कहने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती कि उन लोगों ने दिल्ली सिक्कों की शैली का अनुकरण किया था। महमूद द्वितीय (१५१०—१५३० ई०) का अठकोण सिक्का सब से सुन्दर माना जाता है। वहाँ वर्गाकार सिक्के की परिपाटी चल गयी थी जिनपर शासकों के लिए लम्बी पदवियाँ लिखी मिलती हैं।

जौनपुर का राजा दिल्ली के गवर्नर के रूप में ही विस्तृत भूभाग (गोरखपुर तथा तिरहुत) पर शासन करता था। चौदहवी सदी के अंतिम काल में यह प्रांत केन्द्र से स्वतंत्र हो गया इसलिए इब्राहिम (तीसरे राजा) से लेकर चार पीढ़ियों

तक के राजा सिक्के तैयार कराते रहे। अधिकतर उन लोगों ने ताम्बा तथा मिश्रित धातु (चाँदी तथा ताम्बा) को सिक्कों के लिए प्रयोग किया और दिल्ली के सुल्तान सिक्कों की नकलपर अपनी मुद्रा निकालते रहे।

जौनपुर के सिक्के उन सिक्कों पर ऊपरी भाग में खलीफा का नाम तथा दूसरी तरफ बादशाह का नाम लिखा मिलता है। अंतिम तीन राजाओं ने अपने वंश का भी उल्लेख किया है। हुसेन शाह के जौनपुर से हटा देने के बाद भी उसके मिश्रित धातु के सिक्के बहुत समय तक वहाँ प्रचलित रहे। जौनपुर के सिक्कों में वंश का नाम देने के अतिरिक्त कोई नवीनता नहीं पायी जाती है १६वीं सदी के बाद सभी प्रांतों को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। भारतवर्ष में सर्वत्र मुगल सिक्के चलते रहे। उस समय भी जो मुगलों के समकालीन राजा थे सभी ने मुगल शैली को अपनाया। यहाँ तक कि नैपाल के राजा महेंद्रमल्ल ने १७ वीं सदी में मुगल दरबार से सिक्के तैयार करने की आज्ञा माँगी थी। उन लोगों ने मुगल सिक्कों के बनावट तथा अलंकार को अपनाया परन्तु नैपाल में सिक्कों पर पदवी के साथ राजा का नाम तथा देवनागरी में तिथि लिखवाया था। इसके अतिरिक्त दूसरी ओर धार्मिक वाक्य भी खुदवाए थे। मुगल वंश की अवनति होने पर भी स्वतन्त्र होने वाले प्रांत के सूबेदारों तथा राजाओं ने इसी मुगल शैली का अनुकरण किया। १६ वीं सदी से स्थानीय शासकों के नाम सिक्कों पर अंकित होने लगे। मुसलमान राजाओं को छोड़कर हिन्दू शासकों ने उस ढंग को अपनाया। उस समय की सबसे अधिक विचित्रता दक्षिण के टीपू सुल्तान के सिक्कों में दिखलाई पड़ती है। पगोद तथा फनम के अतिरिक्त टीपू ने चाँदी तथा ताम्बे के अनेक पैमाने के सिक्के तैयार कराया था। उन सिक्कों को वह तेरह टकसालों में ढाल कर तैयार कर सका था। उसने सिक्कों पर तारीख लिखने की नयी रीति निकाली थी। यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि टीपू सुल्तान के सिक्के अच्छे ढंग से बनते रहे। सिक्के तैयार करने का रिवाज इतना अधिक हो गया था कि भारत में थोड़े समय तक शासनकरने वाले नादिर शाह तथा अहमद शाह दुर्रानी ने भी मुगल शैली पर अपने सिक्के चलवाए।

अंत में अवध प्रांत के प्रचलित सिक्कों के विषय में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। १७२० ई० में अवध का सूबा बना जिसका संस्थापक सहादत खाँ माना जाता है। १७४८ ई० में उसका

अवध के सिक्के भतीजा सफदर जंग दिल्ली के बादशाह का वजीर बनाया गया जिसका तत्कालीन इतिहास में बड़ा भारी हाथ रहा। सफदर के मृत्यु बाद उसका लड़का शुजाउद्दौला १७५४ ई० में अवध

का मालिक हुआ जिसको दिल्ली के बादशाह की ओर से मुहम्मदाबाद तथा बनारस के टकसाल की निगरानी दी गयी। उसके बाद अवध के नवाबों (जिनको वजीर भी कहते रहे) ने १७८४ से लेकर १८१८ तक लखनऊ से रुपया तैयार कराया जो मछलीदार सिक्के के नाम से विख्यात है। चूँकि उनके सिक्कों की दूसरी ओर अवध के राज्य चिह्न मछली की आकृति मिलती है इसलिए उनका नाम मछलीदार रुपया रक्खा गया था। लार्ड हेस्टिंग के समय में गयासुद्दीन हैदर ने राजा की पदवी धारण की जिस समय से अवध में वास्तविक सिक्के बनने लगे। हैदर तथा उसके वंशजों ने लखनऊ टकसालघर से सिक्के तैयार कराया जिनके अग्रभाग में हथियार के चिह्न मिलते हैं। दूसरी तरफ मुगल शैली की तरह पद्य (लेख) खुदे हैं। ये तौल में मुगल सिक्कों से मिलते हैं। वाजिद अली शाह के अट्ठारहवें वर्ष के मुहर तथा रुपया पाँच ज[illegible] मिलते हैं जो अवध के सिक्कों में सबसे सुन्दर माने गए हैं। इन पर प्रभाव के कारण हथियार बनाए गए थे। अंग्रेजी टकसाल स्थापित हो जाने पर भी अवध से (लखनऊ) सिक्के तैयार करने की आज्ञा बनी रही। सम्भवतः भारत में मुसलमान शासकों द्वारा प्रचारित सिक्कों में अवध के सिक्के सबसे अंतिम स्थान रखते हैं।

पंद्रहवां अध्याय

भारत में कम्पनी के सिक्के

ईस्ट इन्डिया कम्पनी के सिक्के

वर्तमान अंग्रेजी सिक्कों के उत्पादन का श्रेय ईस्ट इंडिया कम्पनी को है जो १७वीं सदी से भारत में व्यापार कर रही थी। योरप के सभी जातियों में अंग्रेजी कम्पनी का पैर यहाँ जम सका। १६११ ई० में जहाँगीर ने सूरत में अंग्रेजी कोठी खोलने (व्यापारिक केन्द्र स्थापित करने) का फरमान जारी कर दिया था। और बंगाल में मुगल सूबेदारों ने भी नियत कर देने के बाद कम्पनी को व्यापार की आज्ञा दे दी थी। १७०७ ई० के बाद (औरंगजेब की मृत्यु पश्चात) मुगलवंश का पतन हो गया। इसलिए राष्ट्र का आर्थिक पतन अवश्यम भावी था। मुगल शासन के दिवालेपन के कारण और अशांति मय वातावरण में कारखाने तथा व्यापार का बुरी तरह नाश हो गया। इन कारणों से भारत के आर्थिक इतिहास में १८वीं सदी का समय अन्धकार युग समझा जाता है।

ऐसी विकट परिस्थिति में ईस्ट इंडिया तथा अन्य योरप की कम्पनियाँ अपना कारोबार कर रही थी। इस बुरे दिन से उन लोगों ने लाभ उठाया। स्थान स्थान पर अपनी शक्ति का परिचय देने लगे। ईस्ट इंडिया कम्पनी के कागजों से पता चलता है कि सूरत की कोठी स्थापित करने पर तथा मद्रास प्रांत में शक्ति संचय कर लेने पर व्यापार के निमित्त कम्पनी के अधिकारी मुगल बादशाहों के सिक्कों की तरह रुपया तैयार करते रहे १६७१ ई० में कम्पनी के मालिकों ने बम्बई में टकसाल घर खोलने की आज्ञा दे दी। इसलिए वहाँ ताम्बे और टीन धातुओं के सिक्के तैयार होने लगे। ये ताम्बे के सिक्के बम्बई के टापू, समीपवर्ती मराठा राज्य तथा पुर्तगाल सीमा में भी चलते रहे। संयोगवश १६७६ ई० में बम्बई की कोठी वालों को सोना चाँदी, ताम्बा, टीन, सीसा आदि धातुओं के सिक्के तैयार करने की आज्ञा मिल गयी। चार्ल्स द्वितीय के नाम से बम्बई में सिक्के बनने लगे जो रुपया के ठप्पे से ही तैयार किए जाते थे। उन पर अंग्रेजी ताज के चिन्ह तथा अंग्रेज बादशाह का नाम अंकित किया जाता था। उस

समय कम्पनी के अधिकारियों को कठिनाई के कारण यह पता लग गया कि अंग्रेज शासक के नाम वाले सिक्के भारत में चलाना सम्भव न था अतएव उन्हें मुगल ढङ्ग को अपनाना पड़ा। यही कारण है कि १८वीं सदी में सोने तथा चाँदी के सिक्के (जिन्हें कम्पनी ने तैयार कराया था) मुगल शैली तथा शाहआलम द्वितीय के नाम से मिलते हैं। मद्रास प्रांत में सर्वप्रथम कम्पनी पगोद, फनम तथा ताम्बे के सिक्के का प्रयोग करती रही। १६७१ ई० तक ये सिक्के फोर्ट सेन्ट जार्ज में बनते रहे परन्तु १६८६ ई० के बाद उन्हें सिक्के तैयार करने की आज्ञा मिल गयी जो दक्षिण भारत के ढङ्ग के थे। १७४२ ई० मुहम्मदशाह ने कम्पनी को इस बात की सनद (आज्ञापत्र) दे दिया कि वे मद्रास प्रांत के आरकाट में भी रुपया स्वयं तैयार करा लें। जहाँ तक बङ्गाल का सम्बन्ध है १७५६ में प्लासी युद्ध के बाद कलकत्ते में कम्पनी का टकसाल घर स्थापित हो गया। इससे पूर्व कम्पनी को यह अधिकार दिया गया था कि धातु ले जाकर नवाब के टकसाल में सिक्के तैयार करा लें जो असरफी तथा रुपये की तरह होगा और बङ्गाल, विहार तथा उड़ीसा प्रांत के समीपवर्ती स्थानों में चलेंगे। १७६४ ई० में मीर कासिम के बक्सर के मैदान में हार जाने पर अवध के नवाब शुजाउद्दौला तथा मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय का संघ विफल हो गया और शाह आलम ने अंग्रेजों से शीघ्र संधि कर ली। इलाहाबाद के सन्धि के अनुसार बङ्गाल विहार तथा उड़ीसा की दीवानी ईस्ट इंडिया कम्पनी को मिल गयी। उस समय (१७६५) से मुगल टकसालों पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया फिर भी शाह आलम द्वितीय के नाम से मुहर तथा रुपया तैयार होते रहे। सभी योरप की कम्पनियों ने मुगल बादशाह के नाम पर सिक्के तैयार कराए।

यह कई बार कहा जा चुका है कि औरंगजेब के मृत्यु पश्चात् प्रायः सभी प्रांत स्वतंत्रता का अनुभव करने लगे। केवल जनता को धोखे में डालने के लिए सूबेदार मुगल बादशाह से नाममात्र का सम्बन्ध बनाए रहे। प्रांत में टकसालों से मुगल शैली के मुहर तथा रुपया तैयार होता रहा परन्तु उन सिक्कों पर अपना नाम अंकित कराने का साहस न था। सूबेदारों के अतिरिक्त ईस्ट इंडिया कम्पनी भी इसी नीति का पालन करती रही। १७६० ई० में आज्ञा मिलने पर कम्पनी ने पहले पहल अली नगर टकसाल से सिक्के तैयार कराया था जो "चौथा सन् अली नगर कलकत्ता का सिक्का" के नाम से विख्यात हुआ। क्योंकि यह मुगल बादशाह आलमगीर द्वितीय के चौथे राज्य वर्ष में ढाला गया था। उनके

अग्रभाग	पृष्ठ भाग
मुबारक आलमगीर बादशाह गाजी सिक्का लिखा मिलता है।	टकसाल का नाम तथा राज्य वर्ष निम्न शब्दों में पाया जाता है। कलकत्ता सन् जुलूस चार जरब अली नगर

इस तरह के सिक्के कलकत्ता के अतिरिक्ति ढाका, मुर्शिदाबाद तथा पटना में कम्पनी द्वारा ढाले जाते थे जो मुगल बादशाहों के नाम से प्रचलित थे। राजपूत रियासतें, निजाम, दुर्रानी तथा ईस्टइंडिया कम्पनी के प्रारम्भिक सिक्के उसी प्रकार के मिले हैं। पुर्तगाली, फ्रांसिसी तथा डच लोगों ने भी इसी नीति से काम लिया था। यही कारण है कि १८ वी सदी में हजारों तरह के मुगल शैली के सिक्के भारत में प्रचलित थे। कुछ तो विभिन्न चिन्हों के द्वारा वास्तविक मुगल सिक्कों से पृथक किये जा सकते हैं। यहां कहना आवश्यक है कि ज्यों ज्यों मुगल प्रांत कम्पनी के हाथ में आते गये मुगल शासकों के वास्तविक टकसाल कम होते गये। कम्पनी को दीवानी मिलने पर बंगाल बिहार तो मुगल अधिकार से अलग हो गया और अंग्रेजों के हाथ में सिक्के तैयार करने का कार्य आ गया। उसी समय से अवध के नवाब को भी बनारस, लखनऊ, बरेली आदि स्थानों पर अधिकार दे दिया गया परन्तु फिर भी पिछले मुगल बादशाहों के नाम वाले सिक्के बनते रहे। बरेली में शाह आलम द्वितीय के समय तक रुपया तैयार होता था परन्तु रूहेला युद्ध (१७७४) के बाद यह भाग अवध के नवाब को सौंपा गया। १८०१ में बरेली अंग्रेजी अधिकार में आगया तथापि कम्पनी शाहआलम के नाम पर सिक्का तैयार करती रही।

इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि ईस्टइन्डिया कम्पनी को राजनैतिक तथा आर्थिक मसलों पर पूर्ण अधिकार था। जनता को प्रसन्न रखने के लिये और दिल्ली के मुगल बादशाह से सम्बन्ध दिखलाने के लिए कम्पनी ने सर्वत्र मुगल शैली तथा पिछले मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय के नाम को सिक्कों के लिए अपनाया। उन सिक्कों पर हिजरी सम्बत् का प्रयोग नहीं मिलता है बरन् तिथि राज्यवर्ष में दी गई है। उन सिक्कों पर विशेष प्रकार के चिन्ह भी मिलते हैं। १८ वी सदी में मुर्शिदाबाद से लेकर बरेली तक समस्त टकसालों में कम्पनी द्वारा रुपया (शाहआलम के नाम के साथ) तैयार होने लगा था। शाहआलम द्वितीय के १६ वे वर्ष में प्रचलित सिक्के को मुर्शिदाबाद के टकसाल में नकल कर तैयार किया जाता था। इसके अतिरिक्त ११वें १२वें तथा १४ वे वर्ष के

सिक्के भी तैयार किए जाते थे जिनकी तौल एक तोला दो माशा थी। वह रुपया सिक्का के नाम से प्रसिद्ध था। फर्रुखाबाद के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। उन सिक्कों पर शाहआलम का नाम पाया जाता है यद्यपि वे कम्पनी के द्वारा तैयार किए जाते थे। वहाँ के सिक्कों पर मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय के ३६ वे अथवा ४५ वे राज्यवर्ष की तिथि उल्लिखित है परन्तु वास्तव में फर्रुखाबाद के सिक्के उन सिक्को के अनुकरण ही थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी वास्तविक अधिकार पाकर शीघ्रता वश अप्रिय नहीं बना चाहती थी। यहाँ तक कि दिल्ली जितने के बाद (१८०३ ई० में) बहादुरशाह तथा अकबर द्वितीय को दिल्ली के कैदखाने (शाहजहानाबाद) में सिक्के तैयार करने की आज्ञा कम्पनी ने दे रक्खी थी। १८५७ तक बहादुरशाह का नाम सिक्कों पर मिलता है।

१८वीं तथा १६वीं सदी में प्रचलित सिक्कों के ऐतिहासिक विवरण से ज्ञात होता है कि प्रायः सम्पूर्ण भारत में पिछले मुगल शैली के सिक्कों का अनुकरण होता रहा। सूबेदार तथा राजपूत राजाओं ने अधिक समय तक इसे अपनाया था। दक्षिण निजाम से लेकर दिल्ली में दुर्रानी वंश ने लाहौर, मुल्तान, काबुल आदि टकसालों में मुगल रुपये की बनावटको स्वीकार कर लिया था। मराठा लोगोंने भी पूरे शासन काल में मुगल सिक्कों के ढंग पर अपना सिक्का तैयार कराया था। १८३५ में अंग्रेजों के विजय के कारण वह तरीका बंद हो गया। पंजाब में गोविन्दशाही नानकशाही अथवा रंजीतसिंह के सिक्के रुपये की तरह बनते रहे परन्तु उनमें सम्बत् प्रयोग की नवीनता दिखलाई पड़ती है। इतना विस्तृत विवेचन का ध्येय यह बतलाता है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के सामने मुगल शैली (रुपया) को अपनाने के सिवाय कोई चारा न था। लाचार वश उन्होंने प्रायः सौ वर्ष तक पिछले मुगलबादशाहों के नाम अंकित कराये अथवा उन्हें सिक्का तैयार करने का वचन दिया। कम्पनी ने मुगल मुहर को असरफी का नाम दिया परन्तु चांदी का सिक्का रुपया ज्यों का त्यों रह गया।

सिक्कों के नाम तथा तौल मे विशेष परिवर्तन न हो सका परन्तु बनावट में कुछ अंग्रेजी ढंग आने लगा। कम्पनी ने शाह आलम के समय से टकसालों पर अधिकार कर सिक्कों की रचना क्रम में परिवर्तन कर दिया। केवल उसके १६ वें वर्ष वाला रुपया "१६ सन् सिक्का" प्रमाणित घोषित किया गया था। मुगल बादशाह के जो सिक्के ४५वें राज्यवर्ष में मुर्शिदाबाद और फर्रुखाबाद से मिले हैं उनमें विदेशीपन आ गया है। १७६० ई० में इङ्गलैंड से कलकत्ते मे सिक्के तैयार करने का यंत्र आया जिसके द्वारा बनाये जाने के कारण उनका किनारा पहले से परिष्कृत होता गया। शाह आलम द्वितीय

के ४७ वें वर्ष के मुहर तथा रुपयों में कम्पनी ने कुछ नवीनता पैदा कर दी। उसमें ऊपरी और निचले दोनों भागों में लेख एक गुलाब की माला से घिरा हुआ है। उस में पुष्पमय लता बनाई गयी है। वही नाम (रुपया) तथा अलंकरण आज तक भारत में चला आ रहा है।

ऊपर के विवरण से ज्ञात होता है कि १८३५ ई० से कम्पनी ने वास्तविक ढंग से अंग्रेजी सिक्कों को तैयार किया जिनपर अग्रभाग की ओर राजा विलियम चौथे का सिर तथा पृष्ठ ओर शेर की आकृति अंकित की गयी। इससे पूर्व १७६३-१८३५ तक के सिक्के १६ वर्ष के रुपये कहे जाते थे जिनपर शाह आलम का नाम खुदा था ये। सिक्के शाह आलम के १६ वें राज्यवर्ष में प्रचलित सिक्कों की नकल पर बनाए गए थे। इसके विभिन्न कारणों का दिग्दर्शन किया जा चुका है परन्तु कम्पनी के पत्रों के अध्ययन से बड़ा ही रोचक इतिहास का पता लगता है कि किस तरह कम्पनी के कर्मचारी भारत में मुद्रा के प्रचलन में सहयोग करते रहे अथवा किस रूप से इस सम्बन्ध (मुद्रानीति) में ईस्ट इंडिया कम्पनी की नीति संचालित करते रहे। इसका इतिहास बड़ा ही उलझा हुआ है। यह तो सत्य है कि कम्पनी के डाइरेक्टों ने १८३५ से पहले भारत में ऐसे सार्वलौकिक सिक्के तैयार करने की आज्ञा न दी थी जिन पर कम्पनी का नाम खुदा हो। भारत में कम्पनी के अधिकारियों ने व्यापार में मुद्रा संकट से छुटकारा पाने के लिए कई मार्ग ढूंढ निकाला था। इस तिथि के बाद कम्पनी के डाईरेक्टरों ने अपनी मुद्रानीति स्थिर कर ली। मुगल बादशाह का नाम हटाकर विलियम चौथे की आकृति सिक्कों पर अंकित होने लगी और पहले से प्रचलित सभी सिक्कों का चलन रोक दिया गया। अंग्रेजी सिक्का तौल में १८० ग्रेन या एक तोला के बराबर था जिसमें १७५ ग्रेन शुद्ध चाँदी थी। एक रुपया सोलह आने तथा ६४ ताम्बे के पैसा के बराबर मूल्य में माना गया। कानून बनाकर १५ रुपया एक ब्रिटिश सिक्के के बराबर घोषित किया गया। १८३५ ई० से भारतीय सिक्कों का प्रचलन सदा के लिए बंद कर दिया गया और भारत में कम्पनी के सिक्के ब्रिटिश मुद्रा की एक शाख हो गये।

सबसे प्रथम भारत में अंग्रेजी उपनिवेश के लिए बम्बई में सिक्का तैयार किया गया जो उनके सीमित क्षेत्र में ही प्रचलित रहा। देश के अन्दर व्यापार के लिए कम्पनी को सिक्कों की आवश्यकता थी। उस समय कम्पनी के सामने दो प्रश्न था। सबसे पहला कार्य यह था कि वे धातु को मुगल सूबेदारों को दे देते थे जिसके बदले उन्हें तैयार सिक्का मिलता था अथवा स्वयं मुगल बादशाहों के नाम से

टकसाल में सिक्के तैयार करते रहे। दूसरे मार्ग का अवलम्बन करने पर स्थानीय भारतीय शासकों (सूबेदार आदि) ने विरोध किया इस पर कम्पनी ने मुगल बादशाह से सिक्के तैयार करने की आज्ञा ले ली जिन सिक्कों में धातु की शुद्धता तथा तौल की बराबरी का शर्त था। बम्बई के टकसाल में वैसे ही रुपये, हथियार आदि काम में लाए गए जिन्हें मुगल टकसाल में प्रयोग किया जाता था। इस अवस्था में मुगल टकसाल के सिक्के तथा कम्पनी द्वारा अनुकरण में कोई अन्तर न था। कम्पनी को इस मार्ग में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता था। वास्तव में देखा जाय तो कम्पनी द्वारा तैयार सिक्के जालसाजी के नमूने थे। जनता उन्हें भूल से मुगल सिक्के समझ लेती थी। १७१७ में मुगल बादशाह फर्रुखसियर ने एक फरमान (आज्ञा पत्र) निकाला जिसमें कम्पनी को सिक्के तैयार करने का पूर्ण अधिकार दिया गया। उसके कुछ ही दिन के बाद (१७४२) कम्पनी को मद्रास में भी सिक्के तैयार करने की आज्ञा मिल गयी। अतएव आरकाट के ढंग पर 'अरकाटी' नाम के सिक्के बनने लगे। आरकाट के रुपये पर त्रिशूल का चिन्ह पाया जाता है। बंगाल में ढाका तथा मुर्शिदाबाद टकसालों में कम्पनी धातु भेज कर प्रचलित मुगल सिक्कों के ढंग पर सिक्के तैयार कराती रही। १७५१ ई० के समीप (प्लासी युद्ध के बाद) बंगाल के नवाब द्वारा कलकत्ता में कम्पनी को टकसाल स्थापित करने की आज्ञा मिल गयी परन्तु बक्सर के युद्ध से स्थिति ही बदल गयी। १७६५ ई० में कम्पनी की दीवानी के कारण बंगाल के टकसालों पर कम्पनी का वास्तविक अधिकार हो गया। इससे पूर्व कम्पनी के कलकत्ता के रुपये मुर्शिदाबाद के चाँदी के सिक्के के समान माना जाता था लेकिन दीवानी के बाद पटना, ढाका तथा मुर्शिदाबाद के टकसाल बंद कर दिए गये और बंगाल के सारे सिक्के कलकत्ते में बनने लगे।

इसका एक विशेष कारण था। मद्रास में तैयार आरकाटी रुपये तथा बंगाल के रुपये के पारस्परिक मूल्य में कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती। कम्पनी को सामान खरीदने के लिए जनता को सिक्के देने पड़ते थे अतएव उनमें सरलता पैदा करने तथा लोगों में संदेह मिटाने के लिए रुपया के मूल्य का निर्धारित करना आवश्यक था। बंगाल में कम्पनी का अधिकार हो जाने पर कठिनाइयाँ स्वाभाविक थीं। व्यापार तथा सिक्के पर कम्पनी का पूरा अधिकार हो गया था अतएव ईस्ट इंडिया कम्पनी सभी प्रकार के सिक्कों को एकत्रित कर (जिसमें कुछ कम मूल्य के भी रहते थे) टकसाल में ले जाकर रुपया के रूप में तैयार करती थी। रुपया सिक्का के नाम से पुकारा जाने लगा जो आरकाटी के मूल्य में बराबर घोषित कर दिया गया। पहले मुर्शिदाबाद फिर कलकत्ता के टकसाल में ही कम्पनी सिक्का

तैयार करने लगी जिसका मूल्य सोलह आना माना गया। दूसरे रुपये बारह फी सदी बट्टे से लिये जाने लगे। उन दिनों ईस्ट इंडिया कम्पनी का कोई प्रमाणिक सिक्का न था अतएव भिन्न भिन्न स्थानों के सिक्कों पर पृथक पृथक बट्टा लिया जाता था। उदाहरणार्थ ६·४ फी सदी ढाका रुपया पर १२ फी सदी बनारस रुपया पर तथा ६·८ से ११ फी सदी फरुखाबाद रुपया पर बट्टा लिया जाता था। शहर तथा देहात में बट्टे में समानता न थी परन्तु देहातों में अधिक बट्टा लिया जाता था। मुर्शिदाबाद के रुपयों पर देहात में ६·१ फी सदी तथा शहर में १·६ फी सदी बट्टा लगता था। इसी तरह ढाका रुपये पर देहात में ६·६ फी सदी और शहर में ३-२ फी सदी बट्टा लिया जाता था। बट्टे का दर तय न होने से शराफ लोगों को बहुत लाभ हुआ परन्तु स्थानीय मालगुजारी वसूल करने वाले कर्मचारियों का बट्टे में कोई हाथ न था। कम्पनी सोने के सिक्का का प्रचार बंद करना चाहती थी। अतएव उसने सोने पर कर (टैक्स) लगा दिया ताकि छोटे या बड़े सोने के सिक्के न बन सकें। कम्पनी के कर्मचारी चाहते थे कि सोने के सिक्के का मूल्य (चाँदी के अनुपात में) निश्चित न किया जावे और सोने का मूल्य जनता तथा व्यापारियों पर छोड़ दिया जावे। परन्तु कम्पनी ने सोने चाँदी का अनुपात १:१३·८७ तय कर दिया और सिक्का (चाँदी का रुपया) ही सरकारी सिक्का घोषित किया गया। यह कई बार कहा जा चुका है कि कम्पनी के सिक्के पटना, ढाका तथा मुर्शिदाबाद टकसालों में शाह आलम के नाम से बनते रहे परन्तु उन पर १६ सन् (राज्यवर्ष) में मुगल बादशाह का राज्यवर्ष (१६ या ३१ आदि) अंकित कराया जाता था और किनारे पर सीधी लकीर (Milled) पड़ी रहती थी। तात्पर्य यह था कि कम्पनी जनता में एक बारगी नए सिक्के नहीं लाना चाहती थी परन्तु धीरे धीरे परिवर्तन करती जा रही थी। जनता को इस सिक्के से अभ्यस्त तथा अधिक परिचित होने के लिए कम्पनी द्वारा एक आज्ञापत्र निकाला गया कि वह सन् १६ का सिक्का (कम्पनी द्वारा मुद्रित) ही प्रत्येक कार्य में प्रयोग करेगी। इसलिए कर आदि देने के लिए जनता को विवश होकर सन् १६ का सिक्का काम में लाना पड़ा। इस प्रकार मुद्रा पर कम्पनी सरकार का पूरा अधिकार हो गया। जनता कम्पनी के सिक्के को अधिक प्रयोग करने लगी। शाह आलम के नाम से कुछ भूली हुई थी तथा वास्तविकता से अनभिज्ञ थी।

बंगाल के पश्चिमी भाग में मुगल काल से बनारस, फरूखाबाद तथा बरेली प्रधान टकसाल थे जो दीवानी के बाद अवध के नवाब के अधीन हो गए। १९वीं सदी के आरम्भ में ये टकसाल अंग्रेजों के अधिकार में आ गये तौभी कुछ वर्षों

तक बनारस से नवाब अवध का रुपया तथा फर्रूखाबाद से ४५ सन का रुपया (शाह आलम के राज्यवर्ष का ४५वाँ वर्ष) तैयार होते रहे। १८३० तक सभी टकसाल बंद कर दिये गये। और कलकत्ता टकसाल का रुपया उन भागों में प्रचलित किया गया। १८०३ तक मुगल बादशाह बहादुर शाह को दिल्ली जेल (शाह जहानाबाद) से सिक्के तैयार करने की आज्ञा थी। परन्तु वास्तव में उन सिक्कों का कोई महत्व न था। कम्पनी द्वारा तैयार सिक्के सर्वत्र चलते रहे।

कम्पनी द्वारा तैयार किए गए सिक्कों में किनारे पर तिरछी लकीर पायी जाती है। १८१६ से १८३२ तक सीधी लकीर तथा १८३५ के बाद चिकना किनारा वाले सिक्के तैयार होते रहे। दूसरी विशेषता यह थी कि बंगाल से १९ सन वाले तथा सूरत से ४६ सन वाले जो सिक्के तैयार होते रहे उनपर ठीक तिथि के अंकित कराने का ध्यान जाता रहा। ये दोनों तिथियाँ शाह आलम के राज्य वर्ष से सम्बन्ध रखतीं थी। इन सब विवेचनों के आधार पर कम्पनी के सिक्के को तीन भागों (कालविभाग) मे बाट सकते हैं।

(१) वे जिन्हें कम्पनी सूबेदारों के पास धातु भेजकर मुगल टकसाल में तैयार कराती थी या नियम विरुद्ध जालसाजी से सिक्के तैयार करती रही।

(२) १७१६ से १७२१ तक—इस समय कम्पनी को बम्बई आरकाट (मद्रास) तथा कलकत्ता में टकसाल स्थापित करने की आज्ञा मिली वहाँ के सिक्के द्वितीय विभाग के हैं।

(३) शासक के रूप में (दीवानी के बाद) मुगल टकसालों पर अधिकार कर कम्पनी ने तीसरे प्रकार का सिक्का बनाया था।

प्रारम्भिक अवस्था में तो कम्पनी के सिक्कों को अलग करना कठिन था। दूसरे विभाग में तीनों सूबे—बम्बई, मद्रास तथा बंगाल में टकसाल काम करने लगे। बम्बई का सिक्का 'बादशाह का सिक्का' पुकारा जाता जिसपर मुम्बई तथा मुहम्मद शाह (मुगल बादशाह जिससे कम्पनी को आज्ञा मिली थी) का राज्य वर्ष अंकित मिलते हैं। कम्पनी के आरकाटी मुगल कालीन आरकाट के रुपये से भिन्न थे। उनपर आलमगीर द्वितीय का नाम तथा राज्यवर्ष मिलता है परंतु कम्पनी के सिक्कों पर त्रिशूल का चिन्ह मिलता है जो १८३५ तक स्थिर रहा। आरकाट के फ्रांसिसी रुपयों पर दूज के चांद का चिन्ह तथा शाह आलम का नाम मिलता है। इस लिए कम्पनी के सिक्के स्थानीय सभी सिक्कों से भिन्न थे। इस काल में कलकत्ता के टकसाल से आरकाट, मुर्शिदाबाद तथा फर्रूखाबाद शैली के सिक्के तैयार होते रहे क्योंकि उसका कोई निजी सिक्का न था।

तीसरे काल में १७६५ से १८३५ तक कम्पनी अपनी मुद्रा नीति के निश्चित करने में लगी थी। बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रांत दिल्ली तथा बम्बई प्रांतों पर पूर्ण अधिकार हो जाने पर उसके सामने भारत में सार्वलौकिक सिक्का प्रचलित करने का प्रश्न था। इस काल में शाह आलम के नाम से सिक्के बनते रहे। १८०३ में दिल्ली जीतने के बाद शाही सिक्कों पर कम्पनी के मुकुट चिह्न तथा शेर की आकृति आ गयी। गुलाब के फूल माला तथा लता को भी सिक्कों पर स्थान दिया गया जो अंग्रेजी सिक्कों के अलंकरण समझे जाते हैं। १८०६ से बनारस टकसाल में भी पुष्प माला को अलंकरण के रूप में स्थान दिया गया। दूसरे शब्दों में वे सिक्के 'कम्पनी का सिक्का' माने जाते हैं। १९ वीं सदी से बम्बई प्रांत में 'सूरत के सिक्का' पर कम्पनी का चिह्न ताज (मुकुट) दिखलाई पड़ता है तथा राज्यवर्ष अथवा हिजरी के स्थान पर १८०२ संख्या अंकित है। मद्रास के आरकाट सिक्कों पर कम्पनी का नाम लिख दिया गया था। एक ओर 'सिक्का अंग्रेज बहादुर' तथा दूसरी ओर 'सूब आरकाट' लिखा मिलता है। बंगाल की स्थिति दीवानी के मिलने के कारण विचित्र थी। नवाब की ओर से मुर्शिदाबाद में तथा कम्पनी की ओर से कलकत्ते में सिक्के बनते रहे। नवाब ने दोनों को समान मूल्य वाला सिक्का घोषित कर दिया था कुछ समय के पश्चात् बंगाल के सभी टकसाल बंद कर दिए गए और एक कलकत्ता ही सरकार टकसाल माना गया जहाँ का १६ सन् वाला सिक्का सारे उत्तरी भारत में प्रचलित किया गया। १८३५ के पश्चात् सिक्कों पर कम्पनी सरकार बहादुर का लेख आ गया और भारत में प्रचलित हजारों सिक्के गला कर नये रूप में कम्पनी सिक्का तैयार किये गये।

ईस्ट इंडिया कम्पनी से पहले ही पुर्तगाली भारत में व्यापार करने आए थे। १५१० में गोआ जीतने के बाद अलबुकर्क ने वहाँ टकसाल घर खोला तथा उसने सोने, चांदी तथा ताम्बे के सिक्के तैयार कराया। नये सिक्के के प्रचलन के लिए अलबुकर्क ने आज्ञा निकाली कि गोआ में कोई व्यक्ति मुसलमान शासकों के सिक्कों को न रख सकता है और न व्यवहार में ला सकता है। जिसके पास सिक्के थे उन्हें आज्ञा दी गयी कि शीघ्र ही टकसाल घर से पुर्तगाली सिक्कों से बदल लें। परन्तु इतना होने पर भी गोआ में प्रचलित हिन्दू सिक्कों के लिए कोई रुकावट न थी। पुर्तगाली सोने के सिक्के तौल में ४३ ग्रेन थे और आकार में हिन्दू सिक्कों से मिलते जुलते थे। चाँदी के सिक्के २५ ग्रेन के बराबर बनते रहे जिन पर अग्रभाग में ईसाई मत का चिह्न क्रास तथा पृष्ठ ओर एक वृत्ताकार मण्डल बनाया गया था। चाँदी सिक्कों की तरह

भारत में पुर्तगाली सिक्के

ताम्बे के सिक्के भी १२६ ग्रेन के बराबर तैयार किये गए थे जो कुछ दिनों के बाद टीन के बनने लगे। पूर्वी द्वीप समूह में पुर्तगालियों का अधिकार हो जाने पर टीन धातु सरलता से मिल जाता था यही कारण है कि सर्वत्र गोआ डामन और ड्यू में टीन के सिक्के बनते रहे। पहले इन सिक्कों में किसी प्रकार का टकसाल चिह्न अंकित नहीं मिलता है परन्तु गोआ में एक चक्र का चिह्न काम में लाया जाता था। भारत में अलबुकर्क ने किसी नयी रीति का समावेश नहीं किया था परन्तु नये सिक्कों के लिए पुर्तगाली नाम प्रचलित किया और गोआ में प्रचलित भारतीय सिक्कों की तौल को अपनाया था। किसी सिक्के पर गोआ के साधु की मूर्ति खोदी गयी थी अथवा उसी का धार्मिक चिह्न क्रास की आकृति भी बनायी गयी थी। १५६६ ई० में पुर्तगाली सरकार ने ३३८ ग्रेन के चाँदी के सिक्के तैयार करने की आज्ञा दी थी परन्तु कई तौल के सिक्के बनते रहे। १५६४ ई० में गोआ के कर्मचारियों ने ७२ ग्रेन के बराबर एक नए प्रकार का चाँदी का सिक्का टंक चलाया जो बीजापुर सिक्के के सदृश था। इस टंक या टंग की तौल घटती गयी। पुर्तगालियों ने पहले चाँदी के सिक्के को पृथक पृथक नाम दिया था परन्तु १७७५ ई० से गोआ के सिक्के पर रुपिया शब्द अंकित मिलता है। पुर्तगालियों ने ड्यू नामक स्थान में भी टकसाल स्थापित किया था जहाँ पर गोआ सिक्कों के ढंग पर सिक्के बनाए जाते थे।

भरतीय फ्रांसिसी सिक्के

योरप की अन्य कम्पनियों की तरह फ्रांसिसी लोगों ने भी दक्षिण भारत में पगोद का अनुकरण किया जिसके अग्रभाग पर विष्णु तथा लक्ष्मी की मूर्ति तथा पृष्ठ ओर दूज के चाँद की आकृति पायी जाती है। १७०० ई० से चाँदी का फनम भी तैयार होने लगा जिसके २६ सिक्के यानी २६ फनम एक सोने के पगोद के बराबर समझे जाते थे। पांडेचेरि में निर्मित फ्रांसिसी फनम सर्वथा दक्षिण भारतीय फनम के समान था यही कारण है कि इन पर "पांडेचेरि १७००" लिखा मिलता है। उस समय चाँदी तथा ताम्बे के सिक्कों की शैली पर कोई प्रतिबंध न था अतएव पांडेचेरि फनम में फ्रांसिसी ढंग का समावेश होने लगा। उनके अग्रभाग में मुर्गा और तिथि मिलती है तथा पृष्ठ ओर लता से घिरे ताज बना रहता है। उन दिनों फ्रांसिसियों ने शुद्ध चाँदी के सिक्के (रुपया) निकाले जो आरकाट रुपया के सदृश था। यह रुपया भी फ्रांसिसी कम्पनी अथवा फ्रांसिसी सरकार के नाम में न निकाल कर मुगल सम्राट के नामों पर निकाले गए जैसा कि ईस्ट इंडिया कम्पनी ने किया था। पांडेचेरि में विभिन्न प्रकार के ऐसे सिक्के तैयार किए जाते जो अलग अलग उपनिवेशों में प्रचलित थे। नकली-

पट्टम में जो रुपया चलता था वह पांडेचेरि में तैयार होता पर उन पर त्रिशूल के चिह्न बने थे। उस स्थान के ताम्बे के सिक्कों पर दिल्ली के बादशाह का नाम तथा पीठ की ओर मछलीपट्टम लिखा रहता था। माही स्थान का रुपया तथा फनम पांडेचेरि में ही तैयार किया जाता रहा परन्तु यहाँ पर वे सिक्के कानूनी नहीं समझे जाते थे। माही के फनम पर स्पष्ट रूप से फारसी में 'फनम कम्पनी' लिखा मिलता है। १७३६ ई० में फ्रांसिसी गवर्नर डुप्ले को बंगाल में सिक्का तैयार करने की आज्ञा मिला गयी थी अतएव उसने हजारों विभिन्न देशीय सिक्कों को मुर्शिदाबाद में भेजकर रुपया में परिवर्तन कराया। वहीं फ्रांसिसी उपनिवेश में चन्द्रनगर में चलाए गए थे। उन पर दिल्ली के मुगल बादशाह का नाम तथा राज्यवर्ष अंकित किया गया था। चन्द्रनगर में आधे रुपया से लेकर रुपया के चौसठवें भाग बराबर सिक्के प्रचलित थे।

अंग्रेज तथा फ्रांसिसी कम्पनियों की तरह डच इस्ट इंडिया कम्पनी ने भी भारतीय सिक्कों का अनुकरण किया। सन् १६६४ ई० से गोलकुण्डा रियासत में स्थित पुलिकत नामक स्थान से डच लोगों ने सोने तथा ताम्बे के सिक्के तैयार किया जिन पर अब्दुल्लाह कुतुब शाह का नाम अंकित कराया गया था। १६६० ई० के बाद डच लोगों ने चोलमण्डल किनारे पर नेगपतम से सिक्के तैयार किया जिनपर अग्रभाग में अंग्रेजी अक्षर एन; वी, ओ, सी लिखा रहता था। पहला अक्षर स्थान नाम के लिए प्रयोग होता रहा तथा अन्य अक्षरों को डच इस्ट इंडिया कम्पनी के नाम का आदि अक्षर समझा जाता था। पृष्ठ ओर तामिल में टकसाल का नाम लिखा रहता था। इन लोगों ने कोचीन में भी फनम तथा ताम्बे का सिक्का तैयार कराया था। १७८८ ई० में डच कम्पनी की ओर से पगोद तथा रुपया भी ढलवाए गए थे जो आज कल अलभ्य हैं। इसी तरह योरप के सभी कम्पनी कर्मचारी सिक्के निकाले परन्तु बनावट तथा सुन्दरता में सभी सिक्के मुगल सिक्कों से घटकर हैं। योरप की कम्पनियों के सिक्कों को देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि ये सिक्के किसी सभ्य जाति द्वारा प्रचलित किए गए थे।

२३ इलियट—क्वाइन आफ साउथ इंडिया

२४ ब्राउन—कैटलाग आफ मुगल क्वायन इन प्राविंशियल म्यूजियम, लखनऊ

२५ राइट—कैटलाग आफ क्वायन इन इंडियन म्यूजियम, भा० २ व ३

२६ वही—कैटलाग आफ मुगल क्वायन इन ब्रिटिश म्यूजियम

२७ लेनपुल—कैटलाग आफ क्वायन इन ब्रिटिश म्यूजियम, सुल्तान आफ देहली

२८ होडीवाला-हिस्ट्री एंड मेटरोलोजी आफ मुगल क्वायन

२९ वही—हिस्टारिकल स्टडी इन मुगल न्यूमिसमेटिकस

३० वाल्स—इंडियन पंचमार्क क्वायन

३१ दुर्गाप्रसाद—क्लासिफिकेशन एंड सिग्नीफिकेन्श आफ सिम्बाल आन पंच मार्क क्वायन

३२ जनरल आफ न्यूमिसमेटिक सोसाइटी आफ इंडिया

३३ न्यूमिसमेटिक सप्लिमेंट

३४ आर्कलाजिकल रिपोर्ट

३५ जनरल आफ विहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी

३६ जनरल आफ एशियाटक सोसाइटी, बंगाल।

३७ जनरल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी

सहायक ग्रंथों की सूची

१ कौटिल्य अर्थ शास्त्र

२ मनुस्मृति

३ भण्डारकर—कारमाइकल लेक्चर १९२१

४ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया

५ चक्रवर्ती—स्टडी आफ एँसेंट इंडियन न्यूमिस्मेटिक्स

६ ब्राउन—दि क्वायन आफ इंडिया

७ मैकडानेल—इभोल्यूशन आफ क्वायन

८ डा० अलतेकर तथा डा० मजूमदार—न्यू हिस्ट्री आफ इंडियन पोपुल जिल्द छठा

९ राखालदास बनेर्जी—प्राचीन मुद्रा

१० वासुदेव उपाध्याय—गुप्त साम्राज्य का इतिहास

११ कुमारस्वामी—हिस्ट्री आफ इंडियन एंड इंडोनेशियन आर्ट

१२ रैपसन—क्वायन आफ एँसेंट इंडिया

१३ वही—सोरसेज आफ इंडियन हिस्ट्री (क्वायन)

१४ वही—कैटलाग आफ इंडियन क्वायन (आंध्र तथा क्षत्रप)

१५ स्मिथ—कैटलाग आफ क्वायन इन इंडियन म्यूजियम जि० १

१६ कनिंघम—क्वायन्स आफ एँसेंट इंडिया

१७ वही—क्वायन आफ मिडिवल इंडिया

१८ वही—क्वायन आफ इंडोसिथियन

१९ वही—लेटर इंडोसिथियन क्वायन

२० गार्डनर—क्वायन आफ ग्रीक एंड सिथियन किंग

२१ ह्वाइटहेड—कैटलाग आफ क्वाइन्स इन पंजाब म्यूजियम, लाहौर

२२ एलन—कैटलाग आफ क्वायन्स आफ गुप्ट डाइनेस्टी

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१९	घटों	घरों
७	५	कर्षायण	कार्षापण
७	२३	Teclinic	Technic
८	३२	सक्का	सिक्का
१०	२९	प्राव्य	प्राप्य
११	१५	तक्षशीला	तक्षशिला
११	१२	भारत	वाह्लीक
१२	१४	कार्षायण	कार्षापण
१२	१	वृषभ	सिंह
१३	१४	कार्षायण	कार्षापण
१४	२	कर्षायण	कार्षापण
१४	७	कार्षाबण	कार्षापण
१५	९,२७	कार्षायण	कार्षापण
१५	२	रूव्य	रूप्य
१६	१२	कार्षायण	कार्षापण
१६	२७	सोने	चांदी
१८	३२	टब्बा	टप्पा
१९	१	टब्बा	टप्पा
२०	३१	स्स्थान	स्थान
२१	४,५,१४,२२	टब्बे	टप्पे
२१	१८	लाया	लायी
२२	१६	टब्बे	टप्पे
२४	१७	पक	एक
२४	२६	O. H. P. O	OHPO.
२५	२	सब लेख	अधिक लेख
२७	२७	कर्षापण	कार्षापण
२८	२	Altic	Attic

पृष्ठ संख्या.	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
२८	२१	कर्षायण	कार्षापण
२९	८	अधिकतर	कुछ
३०	१६	(१०४ ग्रेन)	(१.४ ग्रेन)
३०	१	चांदी	ताम्बे
		ताम्बे	चांदी
३१	३२	वीभ	वीम
३२	१२	सिक्क	सिक्के
३४	७	सोने	सोने
३५	४	सयय	समय
३७	१८	तक्षशीला	तक्षशिला
३८	१८	स्मात्	स्यात्
४१	६	जपतु	जयतु
४२	२६	शातवाहन	सातवाहन
४२	२१	मालवा	नरवर
४३	६	आक्रकण	आक्रमण
४३	२१	कर्षापण	कार्षापण
४८	५	कर्षापण	कार्षापण
४६	१,२१	कर्षापण	कार्षापण
५०	२०	शतमन	शतमान
५२	५	स्यमं	स्वयं
५३	१०	Ligal	Legal
५३	२६	स्यानपना	स्थापना
५३	२८	महत्व	अधिक महत्व
५४	८	मोहन	मोहं
५४	१२	१: १३: ३	१: १३.३
५४	१६	४३.५ या ५४.१	१६० ग्रेन
५४	२६	कर्षायण	कार्षापण
५५	१६	कर्षापण	कार्षापण
५५	१६	Circoration	Circulation
५५	२२	मोहन	मोहं
५५	२७	($\frac{१}{२}$ + १०० रत्ती)	(१०० रत्ती का $\frac{१}{२}$)

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५६	१	मोहन	मोहं
५७	६	सदा	अधिकतर
५६	१०	१००	२००
६०	८	कर्षायण	कार्षापण
६२	८	भी	नहीं
६२	१८	शूंग	शुंग
६४	३०	१३:३	१३.३
७३	५	डिमितस	दिमितस
७३	११	अयलरतस	अपलवतस
७७	४	८६:४	८६.४
७७	११	ग्रेन	ग्रेन तक
७७	१८	२२१:६	२२१.६
८३	×	अर्जुनायन	आर्जुनायन
८४	४	वेराटनी	वेष्टनी
८५	१६	मिल	मित्र
८५		मालवा	मालव
८७	२६,२७,३२	शूंग	शुंग
८८	२६	कनिंघम	कनिंघम
८८	१६	आयोध्या	अयोध्या
६६	१३	आकति	आकृति
१००	१	गौतमीपुत्र के	गौतमीपुत्र तथा उसके
१०२	२३	तौल मे	तौल नें अधिकसेअधिक
१०६	३	उपदिभाग	उपविभाग
१०६	११, १३	कर्षापण	कार्षापण
१०६	२५	तीनसौ	ढाई सौ
११६	२८	रुद्रबिंहस	रुद्रसिंहस
११६	२३	भारनवर्ष	भारतवर्ष
१२६	१२	सेवार	सवार
१२७	२८	वंक्ष	वंक्षु
१३३	२०	चलने	चलाने
१३५	३०	कुपाण	कुषाण

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४०	२२	सभी	अनेक
१४४	२३	सम्राटों	सम्राटों
१४४	२८	संसार	संसार
१४६	१६	विद्वानों	विद्वानस्मिथ
१५०	१५	यह है कि सम्भव फिर	यह सम्भव है कि
१५०	१२	लक्ष्मी	दुर्गा
१५१	२६	ओर	और
१५४	२०	बाए हाथ में गरुड़ध्वज लिए है	दाहिने हाथ के सामने गरुड़ध्वज
१५५	१०	बालक	बौना
१५८	३२	श्री विक्रयः	श्री विक्रमः
१६४	३२	कुप्तोधिराजा	गुप्तोधिराजा
१६८	१६	पिक्के	सिक्के
१६८	२७	विव भुयेते	विवमुपेते
१६८	२७	भूमः	भूयः
१६६	३	×	सम्भवतः
१७४	३०	सभी	अधिकतर
१७५	११	आठवीं	. नवीं
१७७	२१	×	ताम्बे और चांदी
१८०	२५	मिटौरा	भिटौरा
१८२		प्रातहार	प्रतिहार
१८२	२८	व	वे
१८४	२०	उवभाण्डपुर	उदभाण्डपुर
१६७	१	मुसल मशानासक	मुसलमान शासक
१६७	१५	सर्व प्रथ	सर्वप्रथम
१६८	६	स्यापित	स्थापित
१६६	१०	इसके	जिसके
२०२	४	बैदा	पैदा
२०४	७	डे	के
२०८	६	पैसा	मिश्रित पैसा
२१४	७	तक्षण	लक्षण

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१४	२०	(द)	(क)
२२३	१	मध्य	मध्य
२२६	३०	६४ ताम्बे के	१६ मिश्रित धातु के
२२६	८	संयाद	संयद
२२६	२२	बाबर	बराबर
२३३	१६	हर	पर
२३७	१८	काल मुगल से	काल से मुगल
२४२	१६	लिग	लिए
२५२	८	जितने	जीतने
२५२	१६	बतलता	बतलाना
२५६	७	मिला	मिल

नोट—स्थान स्थान पर पूर्ण विराम के चिन्ह आ गए हैं जिनकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। इसी प्रकार दशमलव के चिन्ह दो संख्याओं के बीच में न आकर बाए अंक के सिरे पर छप गए हैं। लोदी वंश के सिक्के बहलोली को दूसरे विद्वानों ने बहलूली भी लिखा है।

वर्णानुक्रमणिका